निर्मल ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

शांता—"क्या लिखा है?"

निर्मल—"कुछ नहीं, कोई विशेष बात नहीं लिखी।"

शांता—"आख़िर क्या लिखा है?"

निर्मल—"लिखा है कि अपनी लाड़िली को लिवा जायँ।"

शांता चुप होकर निर्मल की ओर देखती रही।

शांता—"यह क्यों लिखा है?"

निर्मल—"क्यों?"

शांता—"बहू को क्यों भेज रहे हो?"

निर्मल—"इसलिये कि वह रहना नहीं चाहती।"

शांता—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

निर्मल—"उसी के मुँह से सुना है।"

शांता—"मैंने तो नहीं सुना।"

निर्मल—"तुमने नहीं सुना। मा, तुम झूठ बोलती हो।"

शांता—"ग़ुस्से में कही गई बात कभी दिल की नहीं होती।"

निर्मल—"नहीं, ग़ुस्से में बात ठीक निकलती है। ग़ुस्से में मनुष्य अपना विवेक खो देता है। वे बातें, जिनको वह छिपाकर रखना चाहता था, बुद्धि भ्रष्ट हो जाने पर उन्हें खोल देता है। नदी में जब ज्वार आता है, तब उसके तह तक की चीज़ें ऊपर उतराने लगती हैं। चाहे वे थोड़ी देर बाद फिर तह में बैठ जायँ।"

शांता—"नहीं, यह बात नहीं। क्रोध में मनुष्य विवेक-शून्य हो जाने के कारण अकथ्य बात भी कह डालता है। क्रोध घट जाने पर उसे पश्चात्ताप होता है कि क्यों उसने यह बात कही थी। जब मनुष्य विवेक-शून्य होता है, तब उसकी बात मानने योग्य नहीं होती। पाग़ल की कौन बात मानी जाती है।"

निर्मल—"पहले मनुष्य कोई बात सोचता रहता है, और जहाँ

गंगा-पुस्तकमाला का इक्यासीवाँ पुष्प

बिदा

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

लेखक
श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०
(विजय, विकास, आशीर्वाद और पाप की ओर के रचयिता)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सजिल्द ३)] सं० १९९५ वि० [सादी २॥)


स्मृति-चित्र

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

उसे ग़ुस्सा आया, वह उसे कह डालता है। तुम्हारी बहू ज़रूर सोचती रही होगी कि मैं इस घर में नहीं रहूँगी। कल बात पड़ने पर उसने कह दिया।"

शांता—"तुम्हारी फ़क़ से तो मैं पार नहीं पा सकती। हाँ, इतना मैं कहे जाती हूँ कि वह जायगी नहीं। जाने नहीं पाएगी।"

यह कहकर शांता जाने लगी।

निर्मल ने रोककर कहा—"मा, ठहरो।"

शांता—"मैं अब रुक नहीं सकती। मुझे और भी काम है; यह लो, तुम्हारी चिट्ठी। लड़कपन न करो।"

निर्मल ने उठकर मा का हाथ पकड़कर कहा—"मा, आज सब बातों का फ़ैसला हो जाना चाहिए।"

शांता ने रुककर तीव्र दृष्टि से निर्मल की ओर देखकर कहा—"फ़ैसला! फ़ैसला किस बात का?"

निर्मल—"यही कि यह रोज़-रोज़ के झगड़े से छुट्टी मिले।"

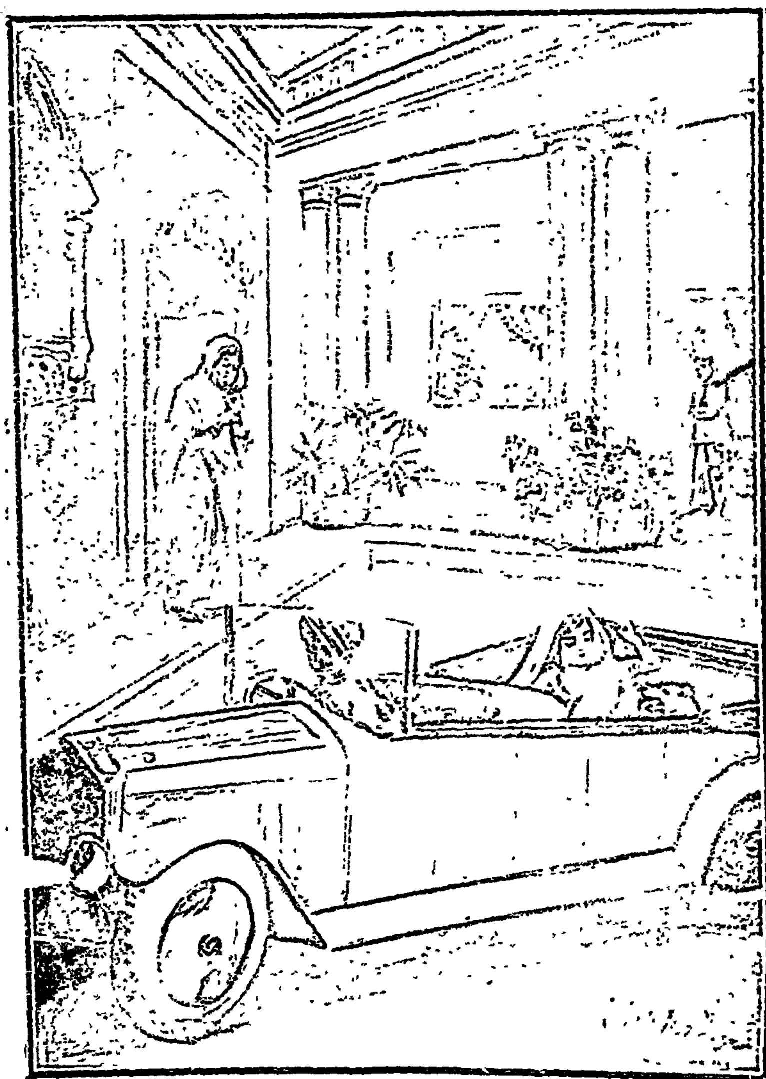
शांता—"तुमसे क्या मतलब! कोई तुम्हारे पास शिकायत तो करने नहीं आता। मैं उसकी सास हूँ, और वह मेरी बहू। हम आपस में निपट लेंगी। तुम्हारे बोलने की क्या ज़रूरत है।"

निर्मल—"है क्यों नहीं। एक दूसरी लड़की द्वारा मेरी मा का अपमान हो, यह मैं नहीं सह सकता।"

शांता—"दूसरी लड़की कौन है। जिस तरह तुम मेरे हो, उसी तरह वह भी मेरी है। यदि तुम दाहने हाथ हो, तो वह बायाँ हाथ है। तुममें और उसमें फ़र्क़ क्या है?"

निर्मल—"मैं यह सब फुसलानेवाली बातें नहीं सुनूँगा। तुम अपना अपमान चाहे भले ही बर्दाश्त कर लो, लेकिन मैं तो नहीं सह सकता। मेरे बोलने की ज़रूरत इसलिये है कि मैं......"

शांता—"घर के मालिक हो।"



किंतु कुमुदिनी उसे पकड़े हुए थी, हीरा जब अपने प्रयास में सफल न हो सका, भूकने लगा।

(पृष्ठ-संख्या ६२)

निर्मल ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—"अच्छा। मैं आपसे एक बात कह देना चाहता हूँ कि आप यहाँ के संबंध में जो कुछ बातें सुनें, उन पर ज़रा सुचित्त मन से विचार कीजिएगा। आप स्वयं सुशिक्षित हैं, विशेष कहने की क्या ज़रूरत।"

मुरारी ने उनसे हाथ मिलाया, और चले गए।

मुरारी ने शांता को प्रणाम करके विदा माँगी। शांता का कंठ अवरुद्ध था। वह कुछ उत्तर न दे सकी। मुरारी आकर मोटर पर बैठ गए।

मोटर का स्टार्टर खोल दिया गया। एंजिन चलने लगा। एंजिन का शब्द सुनकर निर्मल फिर खिड़की के पास आकर खड़े हो गए। कुमुदिनी की गर्दन एकाएक घूम गई। उसकी दोनो आँखें शांता पर से होती हुई, उस खुली हुई खिड़की पर आकर ठहर गईं। थोड़ी देर के लिये उनकी आँखें चार हुईं। कुमुदिनी के दिल में एक हलका दर्द पैदा हुआ। उसने अपनी दृष्टि फेर ली। निर्मल बराबर उसी ओर देखते रहे। कुमुदिनी ने फिर देखा। इस थोड़े काल में उसने अपने मन को वशीभूत कर लिया था। इस बार उसकी आँखों में हँसी थी, उसके मुख पर हँसी थी, वह विजय की भरी मुसकान थी। वह मुसकान उसके गर्व का परिचय देती थी। उस मुसकान में एक संदेश था, जो कह रहा था—"लो, मैं जाती हूँ। जानते हो, मैं किसकी लड़की हूँ?" निर्मल भी मुस्किराए, लेकिन उनकी मुस्कान में मलीनता थी, छिपा हुआ दर्द था। निर्मल की आँखों में जल भर आया। मोटर चल दी। निर्मल रूमाल निकालकर अपनी आँखें पोछने लगे। कुमुदिनी ने देखा। वह फिर मुस्किराई। लेकिन इस मुसकान में गर्व न था, हर्ष न था। यह ज़बरदस्ती की मुस्किराहट थी। उसका हृदय धड़क रहा था, और आँखों की खिड़कियों से आँसू झाँक रहे थे।

मोटर अदृश्य हो गई। पीछे केवल धूल का स्तूप अवशेष रह गया।

स्वर्गीय माता-पिता

की

मधुर स्मृति

में

जिस बात को पुरुष नहीं समझ सकते, उसको स्त्रियाँ सहज ही में समझ जाती हैं।"

मुरारी—"यह मैं मानता हूँ, लेकिन तुम तो ऐसी बातें कर रही हो, मानो निर्मल बाबू के हृदय की बात जानती हो। क्या ज्योतिष भी पढ़ी हो?"

लज्जावती—"जी हाँ, क्या आप भी पढ़िएगा? अच्छा, पहले एल्-एल्० बी० पास कर लीजिए, फिर पढ़िएगा।"

मुरारी—"अब तो तुम बहुत बातें बनाना सीख गई हो।"

लज्जावती—"जी हाँ, क्योंकि एक वकील से पाला पड़ा है न। बग़ैर बहस सीखे काम कैसे चलेगा।"

मुरारी—"तुम किससे बहस करोगी?"

लज्जावती—"क्यों, आपसे? जब आप अभी से क़ानून बघारते हैं, तब आगे की परमात्मा ही जाने। इसीलिये अभी से मैं क़ानून पढ़ रही हूँ।"

मुरारी—"कौन पढ़ाता है?"

लज्जावती—"क्या मेरे यहाँ प्रोफ़ेसर की कमी है। आपकी बहन साहबा ही मेरी प्रोफ़ेसर हैं।"

मुरारी ने हँसते हुए कहा—"क्या रानी?"

लज्जावती—"जी हाँ। वह अपने घर में पहले निर्मल बाबू को पढ़ाना चाहती थीं, लेकिन उन्होंने पढ़ा ही नहीं, क्योंकि वह एक प्रोफ़ेसर स्वयं थे। लेकिन मैं तो प्रोफ़ेसर हूँ नहीं। ज़्यादा पढ़ी भी नहीं, इसीलिये मुझे पढ़ाती हैं।"

मुरारी—"लेकिन तुम तो किसी प्रोफ़ेसर से कम नहीं हो। मेरे ऊपर प्रोफ़ेसरी करते तीन बरस हो गए।"

लज्जावती—"लेकिन कोई जानता तो नहीं। देखो, किसी से कह भी न देना, नहीं तो आपकी हँसी होवेगी ही, साथ ही मेरी भी होगी।"

आठ' तुमसे ज़्यादा मेरे अक़्ल है। तुम्हारी अक़्ल में मेरा काम नहीं चलता। मेरे लड़के होकर तुमने मेरा मुँह काला किया। जाओ।"

माधव बाबू ने दरवाज़े की तरफ़ हाथ उठा दिया। मुरारी जाने लगा।

पर माधव बाबू ने उसे रोककर कहा—"अच्छा, ठहरो।"

मुरारी मंत्र-चालित पुतले की भाँति ठहर गया।

माधव बाबू ने कहा—"मैं अपनी भूल का सुधार करूँगा। मैं इसी महीने में एक नोटिस भेजनेवाला हूँ कि वह 'डाइवोर्समेंट'-फ़ार्म पर दस्तख़त कर दे, नहीं तो 'केस' कोर्ट में ले जाना पड़ेगा, और फिर रानी का दूसरा विवाह वैसाख-मास में कर देना चाहता हूँ।"

मुरारी स्तंभित रह गए। उनकी जिह्वा तालू में चिपक गई। वह अपने पिता की बात सुन रहे थे, और आश्चर्य से पिता की ओर देख रहे थे।

माधव बाबू ने इस तरह देखते देखकर कहा—"मेरे चेहरे की तरफ़ क्या देख रहे हो?"

मुरारी चौंक पड़े, मानो सोते से जगे हों, धीरे-धीरे पूछा—"क्या आप रानी का दूसरा विवाह करेंगे?"

माधव बाबू ने उत्तर दिया—"जी हाँ, इसमें हर्ज ही क्या है।"

मुरारी में चेतनता धीरे-धीरे आने लगी। उसने पूछा—"आप यह क्या ग़ज़ब कर रहे हैं, आज तक किसी ने हिंदू-समाज में ऐसा किया है। यह आप भूले जाते हैं कि हम हिंदू हैं और हिंदू-समाज के हैं।"

माधव बाबू ने उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं यह ब.ख़ूबी जानता हूँ कि हिंदू हैं, और एक महा रद्दी समाज के अंग हैं, लेकिन मैं यह सब कुछ नहीं मानता। हरएक का कर्तव्य है कि वह समाज का सुधार करे। आजकल समाज में बहुत कुरीतियाँ घुस गई हैं, और उनको

दो शब्द

मौलिक साहित्य की वृद्धि देखकर हिंदी का कौन हितैपी है, जिसके हृदय में आनंद की लहरें न उठने लगेंगी। 'विदा' मौलिक उपन्यास है, और मेरे विचार में भापा-सौष्ठव, चरित्र-चित्रण और भाव-व्यंजना में, जो उपन्यास के तीन प्रधान स्तंभ हैं, प्रतापनारायणजी को अपने पहले ही प्रयास में जितनी सफलता मिली है, वह महान् आशाओं से परिपूर्ण है। माता का चित्र तो अद्वितीय है। आशा है, हिंदी के प्रेमी पाठक अपने इस उदीयमान लेखक का उत्साह बढ़ाएँगे।

प्रेमचंद

दूर करना हरएक मनुष्य का कर्तव्य है। मैं हिंदू-समाज का सुधार करूँगा। मैं सबके सामने अपनी मिसाल रक्खूँगा और कहूँगा कि समाज के बंधन इस तरह तोड़ने चाहिए। अगर स्त्रियों के साथ पुरुष—उनके स्वामी—अच्छा बर्ताव नहीं करते, तो उन्हें अधिकार होना चाहिए कि वे अपना दूसरा विवाह कर लें।"

मुरारी—"आप हिंदू-समाज के उच्च आदर्श को भूले जाते हैं। समाज का आदर्श है कि स्त्रियाँ एक ही स्वामी की सेवा में अपना सब कुछ अर्पण कर दें, और इसी तपस्या की बदौलत उनको सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। मनुष्य सती स्त्रियों का नाम पहले लेते हैं। सतीत्व के आदर्श से आप गिरे जाते हैं, जब यह कहते हैं कि मैं रानी का दूसरा विवाह करूँगा। क्या आप रानी को द्विचारिणी करना चाहते हैं?"

माधव बाबू ने कुछ गुस्से में कहा—"मैं इस विषय पर अधिक बहस नहीं करना चाहता। मैंने जो सोच लिया है, वह होगा ही। संसार की कोई शक्ति मेरा विचार नहीं बदल सकती।"

मुरारी—"लेकिन इस काम से आपकी निंदा सर्वत्र होगी।"

माधव बाबू—"किसकी हिम्मत है कि राय माधवचंद्र बहादुर के सामने उनकी निंदा करे। जो करने का दुस्साहस कर सकते हैं, उनको छ महीने चक्की पीसने के लिये तैयार रहना चाहिए।"

मुरारी—"एक मुँह पर न कहे, लेकिन पीठ पीछे सभी कहेंगे।"

माधव बाबू—"पीठ पीछे की गालियों से मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हाथियों के पीछे कुत्ते भूका ही करते हैं।"

मुरारी ने असीम साहस और दृढ़ता के साथ कहा—"नहीं, मैं आपको यह विवाह नहीं करने दूँगा। मेरे रहते और निर्मल बाबू के जीवित रहने तक आप किसी तरह भी रानी का दूसरा विवाह नहीं कर सकते। और, मुझे विश्वास है कि रानी भी इसे स्वीकार न करेगी।"

विज्ञप्ति

(तृतीयावृत्ति पर)

हर्ष की बात है, हिंदी-संसार ने हमारे इस उपन्यास का यथेष्ट आदर किया है, जिससे कुछ ही वर्षों में इसके तीन संस्करण निकालने पड़े ! इस बीच में प्रतिभाशाली लेखक के दो और उपन्यास निकल गए हैं—(१) विजय और (२) विकास । इनकी भी ख़ूब माँग है । अब हम इस प्रयत्न में हैं कि निकट भविष्य में ही लेखक की और सुंदर रचनाएँ प्रकाशित करें । उपन्यास-लेखकों में लेखक ने अपना गौरव-पूर्ण स्थान बना लिया है । भविष्य में तो उनसे जितनी आशाएँ हैं, उतनी शायद ही किसी हिंदी-उपन्यास-लेखक से हो ।

कवि-कुटीर }
१३।११।२८ }

संपादक



इसका सबब क्या है आख़िर? जब से बहू घर में आई, तब से यह ऐसा हो गया है। ठीक है, उसी ने मेरे लड़के को ख़राब कर दिया। असर कहाँ जाय, है तो आख़िर ग़रीब घर की। बाप के घर में पेट-भर खाना तक नसीब न था, यहाँ पर दोनो वक़्त पेट-भर खाती है, आख़िर वह सब कहाँ जायगा। जैसी ख़ुद बरबाद है, वैसे ही मेरे लड़के को भी कर दिया। उसे शीघ्र ही उसके बाप के यहाँ भेजना चाहिए। उसे यहाँ की रोटियाँ लगी हैं। जहाँ तक हो सके, उसको जल्दी ही इस घर से दूर करना चाहिए, नहीं तो यह छूत शायद रानी को भी न लग जाय। जहाँ वह गई, तहाँ मुरारी बाबू ठीक हो गए। लड़की सुंदरी थी, इसलिये ग़रीब घर में शादी की, नहीं तो मैं कभी न करता, चाहे उनके सात पुरखे नाक रगड़कर मर जाते। आज ही मोहनलाल को लिख दूँ कि आकर वह अपनी गुणवती को ले जायँ। आजकल के लड़के ही ऐसे होते हैं कि जहाँ स्त्री का मुँह देखा कि उसके ग़ुलाम हो गए, और अगर कहीं ख़ूबसूरत हुई, तो फिर कहना ही क्या है।"

इसी समय कुमुदिनी ने आकर पूछा—"क्या बाबूजी आपसे, और भैया से कुछ कहा-सुनी हो गई है?"

माधव बाबू के क्रोध का उफान शांत हो गया था। उन्होंने कुमुदिनी को देखकर बड़े प्रेम से कहा—"वह नालायक़ है, मेरी बात नहीं मानता।"

कुमुदिनी ने पूछा—"क्या बात थी बाबूजी?"

माधव बाबू ने उत्तर दिया—"कुछ नहीं। ऐसे ही। क्यों, तुम्हारी भावज का व्यवहार तुम्हारे साथ कैसा है?"

कुमुदिनी—"एक तरह से अच्छा ही है, लेकिन रोज़ मुझे धिक्कारती है।"

माधव बाबू—"क्यों?"

प्रथम खंड



साहस भी नहीं पड़ता कि किसी टूर्नामेंट में भाग लूँ। शायद आपको शौक़ है।"

मिस्टर वर्मा—"है ज़रूर, लेकिन खेलना नहीं आता।"

मिस्टर सिनहा—"यह तो आप बड़े ताज्जुब की बात कह रहे हैं। इतने दिन इँगलैंड रहे, और तब भी आप कहते हैं, खेलना नहीं आया।"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, ठीक है, लेकिन देखिए, अभी मैं मिस माथुर से हार गया। मिस माथुर बहुत अच्छा खेलती हैं। मिस बैनरजी को हरा दिया।"

मिस्टर सिनहा ने चपला की तरफ़ प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से देखा। चपला ने लजाकर अपनी गर्दन नीची कर ली।

मिस्टर सिनहा ने कहा—"अच्छा, चपला यहाँ तक खेलना जान गईं कि यू० पी० की लेडी चैंपियन मिस बैनरजी तक को हरा दिया।"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, इतना खेलना सबको आश्चर्य में डाले हुए है। इन्होंने बड़ी जल्दी उन्नति कर ली।"

मिस चपला ने मिस्टर सिनहा की ओर देख और मुस्किराकर कहा—"यह सब आप ही की कृपा का फल है। आपने मुझे कुछ ऐसे 'मास्टर स्ट्रोक' बताए हैं, जो 'आपोनेंट' (प्रतिद्वंद्वी) से अवश्य 'मिस' हो जाते हैं।"

मिस्टर वर्मा—"क्यों मिस्टर सिनहा ?"

मिस्टर सिनहा—"आप भी किस पगली की बातों में पड़े हैं। मैंने ऐसे ही दो-चार मामूली 'ट्रिक्स' (चुटकुले) बता दिए थे, जिनको हरएक खिलाड़ी जानता है। अच्छा, चपला, इस साल तुमने अपने पेपर कैसे किए ?"

मिस चपला ने उत्तर दिया—"पेपर तो सब अच्छे ही किए हैं।"

"नन्हे !"

नन्हे का पूरा नाम था निर्मलचंद्र सिनहा ।

निर्मल ने गंभीरता-पूर्वक विचारक की भाँति उत्तर में कहा—"कहो, क्या कहती हो ?"

निर्मल की जननी शांता ने कहा—"क्या मेरा कहना न मानोगे ?"

निर्मल ने कुछ उत्तर न दिया, वह मौन खड़े अपनी मा की ओर देखते रहे । शांता कुछ उत्सुकता और कुछ बेचैनी से उनकी ओर देख रही थी । अस्फुट वेदना के चिह्न उसके मुख से भली भाँति प्रकट हो रहे थे ।

शांता—"तुमसे ऐसी आशा न थी कि तुम अपनी मा का कहना टालोगे ।"

शांता के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए ।

निर्मल तनिक भी न पसीजे । वह दृढ़ और गंभीर बने रहे ।

शांता—"तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी ।"

निर्मल—"मैंने कब तुम्हारी बात टाली है मा ?"

शांता—"क्यों, यही टाल रहे हो । अपनी ही ज़िद पर अटल हो ।"

निर्मल—"तुम भी तो ज़िद कर रही हो ।"

शांता—(मलिन हँसी हँसने के बाद) "तुमसे मैं ज़िद करूँगी !"

निर्मल—(अप्रतिभ होकर) "नहीं, मेरा मतलब था कि तुम फ़िज़ूल इस ज़रा-सी बात के लिये ज़िद कर रही हो । फिर तुम ज़िद उस बात की कर रही हो, जिसमें सब तरह से तुम्हारी हानि है । मैं तुम्हारा पुत्र हूँ । अपने हाथों से तुम्हारा अहित नहीं कर

निर्मल—"बात यह है कि तीर्थ चलने में एक पंथ दो काज होंगे। एक तो तुम तीर्थ कर आओगी, दूसरे मैं भी घूम आऊँगा। इसीलिये आओ चलो, हम-तुम दोनों चलें, क्योंकि न तुम मेरे बग़ैर रह सकतीं और न मैं।"

शांता—"और घर किसके आसरे छोड़ा जाय?"

निर्मल—"घर में ताला लगा दो। या किसी को रख जाओ। जब आएँगे, तब रहेंगे।"

शांता—"नहीं, मैं घर सूना छोड़कर नहीं जा सकती। हाँ, अगर......"

निर्मल—"रुक क्यों गईं, कहतीं क्यों नहीं।"

शांता—"क्यों रे, तू बहू को कब लिवा लावेगा?"

निर्मल—"क्यों, क्या बहू के बग़ैर काम नहीं चलता।"

शांता—"अभी तक तेरी ज़िद नहीं गई। छ महीने बहू को गए हो गए, और एक बार भी नाम नहीं लिया। वाह!"

निर्मल—"देखो मा, अब फिर वही पुराना पचड़ा न छेड़ो, नहीं तो मैं उठकर चला जाऊँगा। मैं बहू-बहू की बात नहीं सुनना चाहता। आज शाम से सुन रहा हूँ।"

शांता—"और कौन कहता था?"

निर्मल—"मिस्टर माथुर, चपला और एक तुम्हारी बहू के दोस्त।"

शांता—"मेरी बहू के कौन दोस्त हैं?"

निर्मल—"एक साहब हैं, अभी-अभी इँगलैंड से आए हैं, इलाहाबाद के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं। उनका और ससुरजी का बड़ा गहरा मिलाप है।"

शांता—"उनसे होगा, तो होगा, बहू के दोस्त कैसे हुए।"

निर्मल—"मैं जानता हूँ, तुम्हारी बहू के दोस्त ज़रूर होंगे।"

शांता—(हँसकर) "हाँ, तुम तो अंतर्यामी हो न।"

सकता। अगर तुम्हें कष्ट हुआ, तो क्या मुझे सुख मिलेगा? अगर तुम्हारे पैर में काँटा लग जाय, तो क्या मैं उसे निकालूँगा नहीं?"

शांता—"काँटे और आदमी में भेद है।"

निर्मल—"कैसे? जो आदमी दुख दे, वह काँटा नहीं है, तो क्या है?"

शांता—"काँटे में जान नहीं है; बस, यही भेद है?"

निर्मल—"जान रहने से क्या होता है, दुख देनेवाला मनुष्य काँटा ही है।"

शांता—"मान लिया कि काँटा है; लेकिन काँटों के लिये भी संसार में स्थान है।"

निर्मल—"लेकिन उन्हें रखना कौन पसंद करता है। अगर रास्ते में काँटा पड़ा होता है, तो पथिक उसे रास्ते मे उठाकर दूर फेंक देते हैं।"

शांता—"पथिक दूर कर देते हैं, लेकिन जो उन्हें जन्म देते हैं, वे तो उसे अपनी छाती से लगाए रहते हैं।"

निर्मल—"काँटों को छाती से कौन लगाता है?"

शांता—"क्यों, जो उन्हें जन्म देता है—जिन पेड़ों पर काँटे निकलते हैं, वे पेड़ उन काँटों को गिरा नहीं देते? जब वे गिरते हैं, तभी काँटे भी गिरते हैं। मा को सब लड़के बराबर प्यारे होते हैं। अगर लड़का ख़राब भी निकल जाय, तो क्या मा उसे त्याग देती है?"

निर्मल—"अगर लड़का अपने कर्तव्य से च्युत होता है, मा का अपमान करता है, तो वह अवश्य त्यागने योग्य है।"

शांता—"योग्य होगा, लेकिन सवाल तो यह है कि क्या मा उसे त्याग देती है? कभी नहीं, बल्कि उसके लिये तो वह और चिंतित रहती है।"

निर्मल—"तो तुम उसको मुझसे अधिक चाहती हो?"

शांता—"हाँ, मैं उसे तुमसे अधिक चाहती हूँ।"

मन घुला जाता है। भगवन्! मुझे क्यों नहीं उठा लेते? सब झगड़ा मिट जाय, दोनो मिलकर रहें। सुख भोगें। एक दूसरे को हँसाकर हँसें! आत्महत्या कर लूँ! लेकिन इससे नन्हे को बड़ा दुख होगा, फिर शायद आजन्म बहू का मुँह न देखे। मैं आत्महत्या नहीं कर सकती। भगवान् उठा ले, तो अच्छा है। दीनबंधो, अनाथ-नाथ, मुझे अपने चरणों में स्थान दो। मेरी चिन्ता दूर करो नाथ!"

(४)

पूर्व दिशा से आलोक-स्रोत धीरे-धीरे उमड़ रहा था। निशा का अवसान था, और दिवस का ज्योतिर्मय आगमन। उषा-रानी लाल कमलों की माला लिए अपने प्रियतम का स्वागत करने की प्रतीक्षा में खड़ी मुस्किरा रही थी। आह्लाद, आशा, उत्साह, सौंदर्य, लावण्य, प्रेम, अनुराग, विराग, आसक्ति, इच्छा, लोलुपता, पामरता, ईर्ष्या, नैराश्य, हिंसा, दुःख, संताप, विलाप, उत्थान, पतन, क्षोभ, राग आदि सभी संसार के रंग-मंच पर आकर नृत्य करने लगे। अधखिली कलियों से सौरभ-पराग को चूमती हुई हास्यमयी समीरण मंद-मंद थपेड़ों से मिस्टर वर्मा को सुलाने लगी, या जगाने लगी। मिस्टर वर्मा एक सुखमय स्वप्न देखते हुए उठ बैठे।

सूर्य नित्य की तरह आज भी उदय हो रहा था—लेकिन मिस्टर वर्मा को आज के प्रभात में एक नवीन आकर्षण दिखाई पड़ा। शुष्क हृदय में सरसता का प्रादुर्भाव हुआ। मिस्टर वर्मा स्लीपर पहन-कर बाग़ में घुस गए। गुलाब की कलियाँ अपनी सुगंधि को चारो ओर दानी की भाँति लुटा रही थीं। मिस्टर वर्मा बरबस एक कली के पास चले गए और उसे तोड़ लिया। सूँघा, और दूसरी भी तोड़ ली। उन्होंने एक निष्ठुर, पाषाण-हृदय माली की भाँति कली तोड़ ली। उन्हें यह याद न रहा कि सौंदर्य केवल देखने की वस्तु है, छूने की नहीं!

निर्मल शांता की ओर देखने लगे।

शांता—"मा को लड़के से ज़्यादा लड़की प्यारी होती है।"

निर्मल—"लेकिन जब वह पराए घर की हो।"

शांता—"अपने घर की भी प्यारी होती है।"

निर्मल—"लेकिन जब वह इस लायक़ हो।"

शांता—(हँसकर) "क्या हमारी बहू नालायक़ है ?"

निर्मल—"हाँ, बेशक। मा, तुम्हें उसका पक्ष लेते लज्जा नहीं मालूम होती ? उसने तुम्हारा अपमान किया है, और तुम उसका पक्ष लेती हो ?"

शांता—"अगर उँगली का नाख़ून गल जाता है, तो क्या उँगली काटकर फेंक दी जाती है। माता-पिता अपने बच्चों का अपराध ध्यान में नहीं लाते। मा का कर्तव्य है संतान का अपराध क्षमा करना।"

निर्मल—(हँसकर) "और पुत्र का कर्तव्य है अपराध करना ?"

शांता—"पुत्र का कर्तव्य अपराध करना बेशक नहीं है, लेकिन अगर कदाचित् वह करे, तो क्या मा उसे क्षमा नहीं करेगी ?"

निर्मल—"तो बस, यह मेरा अपराध क्षमा करो। मैं आज तुम्हारी आज्ञा का अवश्य उल्लंघन करूँगा। तुम क्षमा करो।"

शांता—"मैं क्षमा करती हूँ ; लेकिन तुम्हारी भी बात न चलेगी ?"

निर्मल—"क्यों ?"

शांता—"इसलिये कि मैं उसकी रक्षा करूँगी। मा जब संतान को अपने आँचल में छिपा लेती है, तब कोई उसका अनिष्ट नहीं कर सकता।"

निर्मल—"तो मा, क्या इस तरह बार-बार तुम अपमानित और प्रतारित होगी, और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहूँगा। वह तुम्हें बार-बार ठुकरावे और मैं कुछ बोलूँ नहीं ? यह कैसे संभव है।"

शांता—"इस बार तुम उसे क्षमा करो।"

निर्मल—"क्षमा उसका अपराध किया जाता है, जो क्षमा पाने के

निर्मल ने आँखें बंद किए ही कहा—"चपला, क्या मेरे चोट गहरी लगी है ?"

चपला—"हाँ, चोट गहरी है।"

निर्मल—"इसीलिये मैं सिर नहीं घुमा-फिरा सकता, मैं गिरा कैसे, यह नहीं मालूम।"

चपला—"आप उस टीले पर चढ़ तो गए, लेकिन ऊपर से पैर फिसल गया, और आप गिर पड़े।"

निर्मल—"यहाँ तक तो मुझे भी मालूम है। जब तुमने कहा कि आओ, हम-तुम दोनो इस टीले पर चढ़ें। तुम अपने जूतों के सबब न चढ़ सकीं, मैं चढ़ गया। ऊपर जाकर मेरा हृदय काँपने लगा। मेरे दिल में उस वक्त ख़याल आया कि मैं उतरूँगा कैसे ? चट्टान बिलकुल तिरछी खड़ी थी। मैं इसी सोच-विचार में था कि अचानक पैर फिसल गया, और फिर मुझे कुछ नहीं मालूम, क्या हुआ। जब होश हुआ, तो अपने को यहाँ पाया।"

चपला—"ईश्वर की कृपा से उसी समय तीन-चार आदमी जा रहे थे, वे लोग यह दृश्य देखकर फ़ौरन् अपने कंधों पर आपको ले आए। यदि कुछ देर हो जाती,...तो........"

निर्मल ने मुस्किराकर कहा—"मैं मर जाता, क्यों ?"

चपला ने एक आहत-दृष्टि से निर्मल की ओर देखा।

निर्मल—"चपला, मेरा संसार से जी ऊब गया है, संसार में दुःख के अतिरिक्त और कुछ नहीं।"

चपला—"आप इतने निराशावादी हैं, यह आज ही मालूम हुआ।"

निर्मल ने एक निःश्वास लेकर कहा—"चपला, किसी ने उसको ख़बर दी है ?"

चपला—"किसको, कुमुद को ?"

योग्य होता है। रोग उभड़ते ही दवा देनी चाहिए। बहुत दिन हो जाने पर रोग असाध्य हो जाता है।"

शांता—"तो तुम न मानोगे ?"

निर्मल—"नहीं।"

शांता—"तुम उसे क्षमा करो, क्षमा करना ही पड़ेगा।"

निर्मल—"जो बात कभी नहीं होने की, वही तुम कह रही हो। तुम माफ़ कर दो, लेकिन मैं नहीं कर सकता। उसने मेरा अपमान नहीं किया, मेरी मा का किया है। मा के अपमानकारी को मैं कभी नहीं क्षमा कर सकता।"

शांता पुत्र-गौरव से पुलकित हो उठी।

शांता—"बेटा, अच्छा, इस बार उसे क्षमा करो। उसने मेरा अप-राध किया, मैंने क्षमा किया; बीच में तुम्हारे बोलने की कोई ज़रूरत नहीं।"

निर्मल—"है कैसे नहीं, ख़ून के मामलों की सरकार मुद्दई होती है।"

शांता—(हँसकर) "यह क्या ख़ून का मामला है ?"

निर्मल—(अप्रतिभ होकर) "ख़ून ही-जैसा है।"

शांता—"तुम व्यर्थ तिल का ताड़ कर रहे हो।"

निर्मल—"तिल का ताड़ नहीं, यह दंड का विधान है। माना, तुमने क्षमा दे दी, लेकिन यदि दोषी बार-बार अपराध करने पर क्षमा कर दिया जायगा, तो जानती हो, उसकी आदत अपराध करने की पड़ जायगी। इसलिये यह ज़रूरी है कि अपराधी को दंड अवश्य दिया जाय, ताकि भविष्य के लिये उसे शिक्षा मिल जाय। साम, दाम, दंड, भेद, नीति के ये चार लक्षण हैं। साम, दाम तो व्यर्थ हो गए, अब तीसरा और अंतिम उपाय रह गया है दंड! इस अपराध की सज़ा दी ही जायगी!"

एक पत्र लिखकर न पूछा कि मा, कैसी हो ? क्यों बहू, अपनी मा से कोई इस तरह रूठना है ?

आज चार दिन से नन्हे बीमार हैं। जीवन-मरण का प्रश्न रहा है, पर अब तबियत कुछ अच्छी है। लेकिन भय अभी तक दूर नहीं हुआ है। भगवान् ही रक्षा करेंगे ! उन्हीं का सहारा है। दवा बराबर हो रही है। दुनिया के भगवान् ही रक्षक होते हैं।

बहू, तुम शीघ्र आओ। यदि इस समय न आओगी, तो पछताओगी। आदमी अपने धन की रक्षा स्वयं करता है, यदि संदूक में ताला लगा भी रहा, लेकिन अरक्षित स्थान में रहने से उसका धन चोर चोरी कर ही ले जायेंगे। ताला लगाने के बाद भी संदूक की रक्षा की जाती है।

यदि मेरा कुछ अपराध हुआ हो, तो क्षमा करना। एक तो मैं बड़ी, दूसरे तुम्हारी मा, मेरा अपराध क्षमा करो, और आकर अपने धन की रक्षा करो। अब अंत में मैं फिर कहती हूँ कि इस समय तुम अवश्य आओ।

आशीर्वादिका,

तुम्हारी सास

पत्र लिखते-लिखते चपला का मुख लाल हो गया। उसका हृदय धड़कने लगा। न-मालूम क्यों शांता की ओर देखने का साहस न होता था। शांता ने पत्र लेकर पढ़ा, और वापस करके कहा—"इसमें पता भी लिख दो।"

चपला ने पता भी लिख दिया।

फिर पत्र लेकर कहा—"चपला !"

चपला का मुख ऊँचा न हो सका। शांता उसकी ओर देखती रही। चपला अपराधिनी की भाँति खड़ी रही। शांता ने थोड़ी देर बाद प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरकर कहा—"चपला, मुझे माफ़ करना।"

शांता—"नीति छप्पर पर उठा रक्खो, घर में नहीं बरती जाती।"

निर्मल—"नीति सभी जगह बरती जाती है। उसके बरतने के लिये कोई विशेष स्थान नियत नहीं है।"

शांता—"नीति बाहरवालों के लिये होती है।"

निर्मल—"भला यह तो बताओ, उसने तुमसे क्षमा माँगी थी?"

शांता—"क्या अगर कोई माँफ़ी माँगे, तभी उसको देनी चाहिए, और यों नहीं?"

निर्मल—"हाँ, जब कोई माफ़ी माँगे और अपराध क्षमा करने योग्य हो, तभी माफ़ करना चाहिए, नहीं तो......"

शांता—"नहीं तो......"

निर्मल—"नहीं तो दंड देना चाहिए। ईश्वर ने दंड का विधान क्यों रचा है—उसको यथासमय काम में लाने के लिये!"

शांता—"नन्हे, अभी तुम्हारा लड़कपन नहीं गया। मा शब्द के माने क्या हैं, जानते हो?"

निर्मल—"तुम्हीं बतलाओ।"

शांता—"मा शब्द के अर्थ हैं दया, क्षमा और ममता। स्नेह और वात्सल्य का अंतिम रूप है मा!"

निर्मल अवाक् होकर अपनी मा की ओर देखने लगे। शांता की सौम्य मूर्ति देखकर वह चुप हो गए। वात्सल्य और स्नेह की नदियाँ उनकी आँखों से उमड़ रही थीं।

कमरे में नीरवता थी। माता और पुत्र, दोनो चुप थे।

निर्मल—"एक बात जानती हो मा?"

शांता के नयन-कोण में अश्रु भरे हुए थे। उन्हें पोछकर धीमे स्वर में पूछा—"क्या?"

निर्मल—"उसे अभिमान है। वह तुम्हारी रत्ती-भर परवा नहीं करती।"

शांता—"अभिमान—अभिमान उसे किस बात का है? यदि है भी, तो कुछ बेजा नहीं। जिसका देवता-जैसा स्वामी हो, उसे अभिमान न होगा, तो फिर किसे होगा?"

निर्मल—"यह अभिमान नहीं, बल्कि अहंकार है कि वह ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट, रायबहादुर की लाड़ली लड़की है, और हम लोग तो उसकी नज़रों में कुछ हैं ही नहीं। हमारी इज़्ज़त तो उसके घर के नौकरों से कम है। यह अभिमान तोड़ना ही पड़ेगा।"

शांता—"तुम बाल की खाल निकालते हो, ऐसी दुधमुँही बच्ची को क्या भला अभिमान हो सकता है? अभी उसके मुँह से दूध की गंध दूर न हुई होगी, और वह अभिमान करेगी! यह अभिमान नहीं, लड़कों की ज़िद है।"

निर्मल—"ज़िद नहीं, अभिमान है।"

शांता—"अच्छा, इस बार उसे क्षमा करो।"

निर्मल—"अगर मेरा अपमान करती, तो मैं उसे क्षमा करता; लेकिन यह जो तुम्हारा अपमान हुआ है, इसकी क्षमा नहीं है। इसके अतिरिक्त यह पहला अवसर नहीं है। हम ग़रीब हैं; लेकिन उसका निर्वाह अब ग़रीबों के यहाँ ही होगा। तुम्हारा अपमान इसीलिये तो करती है कि हम ग़रीब हैं! यदि आज बाबूजी जीवित रहते, तो क्या उसका साहस पड़ता कि वह तुम्हारा अपमान करे?"

शांता विधवा थी। निर्मल के पिता आज से दो वर्ष पहले काल-कवलित हो चुके थे। स्वामी की स्मृति ने हृदय हिला दिया। शोकोच्छ्वास अब बाँधे न बँधा। चारो ओर से उमड़ पड़ा। धैर्य का बाँध टूट गया और आँखों से आँसू निकलने लगे।

निर्मल—"तुमसे वह दासी का-जैसा व्यवहार करे और मैं चुप रहूँ! मेरे न बोलने से उसका साहस बढ़ता जाता है। वह समझती उसके इस जघन्य कार्य में मेरी सहानुभूति है।"

शांता चुप रही, कुछ बोली नहीं।

निर्मल कहते ही गए—"मैं चुपचाप देखूँ? मैं उसे कल भेज दूँगा। जहाँ का नाज़ है, वहाँ जाकर रहे। यहाँ उसका कुछ काम नहीं। रायबहादुर की लड़की रायबहादुर के घर ख़ुश रहे।"

शांता—"वह जायगी नहीं।"

निर्मल—"वह ख़ुशी-ख़ुशी जायगी।"

शांता—"जायगी! लेकिन उसे भेजता कौन है?"

निर्मल—"क्यों?"

शांता—"मैं उसे नहीं जाने दूँगी। कोई अपने घर की लक्ष्मी को ठुकराता है। जैसी भी हो, वह है हमारे घर की लक्ष्मी!"

निर्मल—"ऐसी लक्ष्मी-सरस्वती को बस दूर ही से प्रणाम!"

शांता—"हैं, कोई ऐसी बात कहता है! बेटा, मैंने बहुत सुख भोगा, उन्होंने (निर्मल के पिता) ने मेरी कोई भी साध अपूर्ण नहीं रक्खी। सभी साध पूरी हो गई हैं। एक साध बस बाक़ी है—वह यह कि तुम दोनो को सुखी देखूँ। क्या इस बुढ़ापे की तुच्छ साध को तुम पूरी नहीं करोगे? राधाकृष्ण की युगल जोड़ी निहारूँ और तुम दोनो को हँसते-खेलते देखकर उनकी सेवा करने के लिये चली जाऊँ। तुम राजा बनकर रहो और वह रानी बनकर। मुझे दासी ही बनकर जीवन के इने-गिने दिन काटने दो।"

शांता के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए। निर्मल के भी नेत्र डबडबा आए।

निर्मल ने रुँधे गले से कहा—"मा, क्यों ऐसी कठोर बात कहकर मुझे दुख देती हो। मैं राजा बनकर और वह रानी बनकर तुम पर अत्याचार करें! अभी मैं अपना कर्तव्य भूला नहीं हूँ। तुम्हारे ऋण से मैं सात जन्म भी उऋण नहीं हो सकता। एक श्रवण थे, जो अपने अंध माता-पिता को कंधों पर बिठाकर उन्हें तीर्थ कराते थे, और एक मैं, जो तुम पर ऐसा अत्याचार होने दूँ! यह कब संभव

है ? मा, हमारे-तुम्हारे पवित्र प्रेम में वह पराई लड़की क्यों बाधा डालती है ? तुम मेरी मा रहो और मैं तुम्हारा पुत्र, बस ।"

शांता रोने लगी । उसका हृदय भर आया । वाक्-शक्ति रुक गई । निर्मल निर्निमेष दृष्टि से मा की ओर देख रहे थे ।

शांता ने अपने को सँभालकर कहा—"बेटा, यह हठ छोड़ दो ।"

निर्मल—"मा, तुम अपना यह बुरा हठ छोड़ दो । मैंने आज तक तुम्हारी कोई आज्ञा टाली नहीं । किंतु आज देखता हूँ, टालनी पड़ेगी । मा, मेरा कहना मानो । अपने नन्हे का कहना मानो । क्या मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ, और एक पराई लड़की सब कुछ है ? मेरी अबोध मा, मेरा कहना मानो । उसे कल जाने दो, नहीं तो......"

शांता ने भीत स्वर में पूछा—"क्या, नहीं तो क्या करोगे ?"

निर्मल—"तुम्हें छोड़कर चला जाऊँगा ।"

शांता ने अपने काँपते हुए हाथों से निर्मल को पकड़ लिया । फिर कहा—"तुम अपनी बूढ़ी मा को छोड़कर चले जाओगे ?"

निर्मल—"हाँ, क्या करूँ, जाना ही पड़ेगा । तुम्हारा अपमान मुझसे न देखा जायगा ।"

शांता—"अपने बुढ़ापे की लकड़ी नहीं खोऊँगी । तुम मेरे ही बने रहो ।"

निर्मल—"तब उसे जाने दो !"

शांता चुप रही । उत्तर में केवल एक ठंडी साँस निकल गई । मा-बेटे, दोनो स्तब्ध रहे ।

निर्मल—"बोलो मा, तुम उसे कल जाने दोगी ?"

शांता ने धीमे स्वर में कहा—"देखा जायगा ।"

इतना कहकर धीरे-धीरे चली गई । निर्मल चुपचाप खड़े देखते रहे ।

निर्मल ने एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"अब मा न रोकेगी । देखूँ, उसे कितना अभिमान है !"

(२)

संध्या के चार बजे के उपरांत शांता ने पुकारा—"बहू, ओ बहू !"

पुत्र-वधू कुमुदिनी ने रूखे स्वर से उत्तर दिया—"क्या है ?"

"अब तो नीचे उतरो। चार बज गया है। नन्हे आता होगा।"

कुमुदिनी ने सरोष उत्तर दिया—"आते होंगे, तो आने दो। मैं क्या करूँ ?"

शांता ने विनम्र स्वर में कहा—"ज़रा नीचे तो आओ !"

कुमुदिनी—"मैं नहीं आऊँगी। मुझे और भी काम है। कुछ बैठी तो हूँ नहीं, आज हीरा के पैर में चोट लग गई है। मेरे सिवा उसकी देख-रेख करनेवाला और कौन है ? मैं उसके पैर में पट्टी बाँध रही हूँ, इस वक्त आने की फ़ुरसत नहीं है।"

हीरा कुमुदिनी का पाला हुआ प्यारा कुत्ता था। कुमुदिनी के पिता राय माधवशंकर बहादुर ने उसे भेंट में दिया था।

शांता चुप हो गई। लेकिन घर की दासी हरखू की मा से न रहा गया, वह कह ही तो बैठी—"हीरा की मरहम-पट्टी फिर करना बहूजी, नीचे आइए। माजी बुला रही हैं। कुछ काम है, तभी तो बुला रही हैं।"

हरखू की मा की बात सुनकर कुमुदिनी का पारा चढ़ गया।

कुमुदिनी ने सक्रोध कहा—"चुप रह कुतिया कहीं की! छोटे मुँह बड़ी बात। अभी मारते-मारते निकाल दूँगी, मिज़ाज दुरुस्त हो जायँगे। जिसके मुँह लगी हो, उसी से ऐसी बातें किया कर। नहीं जानती, मैं तुझसे जेलख़ाने की चक्की तक पिसवा सकती हूँ। ऐसे-वैसे घर की बेटी नहीं हूँ। हज़ार मरतबे मना कर दिया हरामज़ादी से कि मेरे मुँह न लगा कर, नहीं तो किसी दिन ठीक कर दूँगी।"

शांता के हज़ार रोकने पर भी हरखू की मा से न रहा गया। वह कह ही तो बैठी—"बहूजी, मैं ग़रीब हूँ, तो क्या ; मेरी भी इज़्ज़त

है। चक्की पिसवाना और किसी से। मुझे नौकरी की भटक नहीं है। अकेला तो पेट है। जहाँ मेहनत-मजूरी करूँगी, वहीं खाने-भर को, दो पैसे पैदा कर लूंगी। लो बहू, कल से मैं न आऊँगी। ठीक बात सब कोई कहता है। मैंने कौन-सी बुराई की। यही तो कहा कि माजी बुला रही हैं। इसमें कौन-सी बुरी बात कह दी ?"

कुमुदिनी कड़ाही के बैंगन हो रही थी। सरोष उत्तर दिया—"चुप नहीं रहती। बदमाश कहीं की। चल निकल, अभी निकल। तुझे निकालकर आज पानी पिऊँगी। मेरे मुँह लगती है। बदमाश, बदतमीज़!"

हरखू की मा कुछ कहने जा रही थी। बीच ही में शांता ने उसे डपटकर कहा—"चुप रह। कोई मालकिन के मुँह लगना है।"

कुमुदिनी—"तुम्हीं ने तो उसे सिर चढ़ा रक्खा है, नहीं तो उसकी हिम्मत कि वह कुछ कह सके। आप ही इशारा दें और आप ही मना करें। आग लगाकर पानी को दौड़ना इसी को कहते हैं। मैं कुछ भोली नहीं हूँ, सब जानती हूँ। अगर अनुभव नहीं है, किताबों में तो पढ़ा है।"

हरखू की मा से न रहा गया। उसने धीरे से कह ही तो दिया—"हाँ, तोता-मैना में पढ़ा होगा।"

शांता ने सक्रोध हरखू की मा से कहा—"चुप रह। नहीं तो चली जा।"

कुमुदिनी—"क्या कहा, ज़रा फिर तो कह।"

शांता—"कुछ नहीं बहू। आज ही इसका महीना दिए देती हूँ।"

कुमुदिनी—"महीना दो, और चाहे घर की लक्ष्मी बनाकर पूजो। मैं आज ही जाती हूँ। लानत भेजती हूँ ऐसे घर पर और........। मैं कुछ तुम्हारे भरोसे तो हूँ नहीं। जब तक बाबू और भैया हैं, तब तक किसी की रत्ती-भर परवा नहीं करती। ख़ूब मिली भगत। मैं ख़ूब जानती हूँ।"

शांता—"बहू, गुस्सा न हो। अपराध हुआ। क्षमा करो। नन्हे अभी आता ही होगा। उसके आते ही मैं इसका हिसाब कराए देती हूँ। मेरी रानी बहू, जाओ तो।"

कुमुदिनी—"मैं नहीं जाऊँगी। क्या करोगी। आते होंगे, तो क्या लाट साहब हैं। होंगे अपने घर के। यहाँ कोई उनकी सहनेवाला नहीं। मेरे बाप के यहाँ ऐसे-ऐसे पचास नौकर हैं।"

शांता चुप रही। वह जानती थी कि इस समय हर बात का उलटा असर होगा। चुपचाप स्टोव जलाने लगी।

कुमुदिनी धीरे-धीरे उठकर फिर अपने कमरे में आकर एक आराम-कुर्सी पर बैठ गई। उससे चुप भी न बैठा गया। उसके हृदय में गुबार भरा हुआ था। उसके निकले बग़ैर उसे कल न थी। वह कहने लगी—"अमीर बनते हैं साहब, लेकिन घर में कौड़ी नहीं। वाह, क्या शान है! मैं वारी ऐसी शान पर। क्यों न हो। वाह! कैसी मिली भगत है। क्या सिद्ध और साधक हैं। दो कौड़ी की मज़दूरिन मेरे सामने बात करे। उसकी हिम्मत पड़ती। अजी, बछड़ा तभी नाचता है, जब खूँटे का सहारा मिलता है। मुझे प्यार करती हैं, मेरे लिये जान देती हैं। तुमने न कहा, नौकरों से कहलवाया। नौकरों से कहलवाकर मेरी और इज़्ज़त बिगाड़ी। अगर इसका बदला न लूँ, तो रायबहादुर की लड़की नहीं। आज ही बाबूजी को चिट्ठी लिखती हूँ। अब की जाकर इस घर में थूकने भी न आऊँगी। मुझे ऐसे-वैसे घर की समझ रक्खा है। ज़रा कहने-भर की देर है। मारे बेतों के खाल खिंचवा लूँगी हरामज़ादी की। मुझसे ज़बानदराज़ी करती है। क्या बताऊँ, मेरे घर में न हुई, नहीं तो इसी वक़्त ज़मीन में गड़ाकर कुत्तों से नुचवा डालती। क्या कभी मौक़ा हाथ न लगेगा। जब कभी हत्थे चढ़ गई, दस साल से कम न भिजवाऊँगी। समझ क्या रक्खा है। एक साहब वह आते हैं। बड़े मातृभक्त हैं। क्या कहना है! सतजुगी

हैं कि आते। दूसरे श्रवणकुमार हैं। क्या करें, नहीं तो कंधे पर चढ़ाए-चढ़ाए घूमते। उनके लिये मैं तो कोई हूँ नहीं। जो उस हरामज़ादी, बदमाश हरखू की मा की इज़्ज़त है, मेरी वह भी तो नहीं है। पत्नी क्या बनाया, दासी समझकर बिवाहा। नहीं जानते कि लेने के देने पड़ जायँगे। मैं कुछ दिहातिन गँवार तो हूँ नहीं, जो उनकी आँख देखकर डर जाऊँगी। मेरे बाप ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं, रायबहादुर हैं, इनके-ऐसे बावन उनके पैर के जूते खोलने के लिये तैयार रहते हैं। नहीं जानती, क्या देखकर बाबू ने मेरा यहाँ विवाह किया। खाने का भी तो ठिकाना नहीं। लोगों ने मुझे कोई गँवार घर की समझ रक्खा है। ग्रेजुएट नहीं हूँ तो क्या, अंडर ग्रेजुएट तो हूँ। उनसे किस बात में कम हूँ। दो ही चार दर्जों का तो अंतर है। फिर किसी से दबकर क्यों रहूँ। दो कौड़ी की मज़दूरिन मुझसे ज़बान लड़ावे, और वह सुना करें। ऊपर से लल्लो-चप्पो की बात कह दी, तो क्या होता है। साफ़ भुसे पर लीपती हैं। उन्हें अपना तो मैं जब जानती, जब वह इसी वक्त मारते-मारते निकाल देतीं। लेकिन निकाले कौन? यह सब तो उन्हीं के इशारे से हो रहा है। मुँह पर तो डाँटती हैं, लेकिन पीछे पीठ ठोकती हैं। क्या अच्छी 'पालिसी' है। हो तो ऐसा हो। अरे, मैं सब समझती-बूझती हूँ। गँवार नहीं हूँ......"

कुमुदिनी न-मालूम कब तक ऐसी ही कहे जाती, लेकिन नीचे निर्मल का बोल सुनकर चुप हो गई। निर्मल पूछ रहे थे—"मा, क्या बात है?"

कुमुदिनी का साहस न पड़ा कि वह कुछ और कहे। वह चुप होकर अपने कुत्ते को खिलाने लगी। निर्मल ने फिर पूछा—"मा, क्या बात है? आज कुछ रंग-ढंग बुरा दिखाई देता है।"

शांता ने भभकती हुई अग्नि को मन में दबाकर कहा—"तो नहीं बेटा, तुम आ गए। जाओ, कपड़े तो उतार आओ।"

निर्मल—"आज तुमने अब देखा कि मैं आया हूँ, जब दो बार तुम्हें पुकार चुका हूँ। यह तो बतलाओ, बात क्या है। वह क्या बक-बक कर रही है ऊपर।"

शांता ने मलिन हँसी से कहा—"कुछ तो नहीं। मालूम नहीं, वह क्या कह रही हैं। आज किसी ने हीरा के पैर में मार दिया है, उसी को कुछ कह रही होंगी। जाओ, कपड़े तो उतार आओ बेटा। मैं तब तक हलुआ परोसती हूँ।"

निर्मल—"यह बात नहीं है, कुछ बेढब मामला है। पहले बता दो।"

शांता—"क्यों, यहीं खाओगे, या कमरे में ही दे जाऊँ?"

निर्मल ने शांता की ओर देखा। शांता व्यस्तता से जल्दी-जल्दी हलुआ भून रही थी। मुँह सूखा हुआ था। आँखों के कोनों में छिपे हुए आँसू मौन वेदना का संदेश दे रहे थे। निर्मल कुछ न बोले, वह चुपचाप ऊपर चले गए। उनकी पीठ फिरते ही शांता ने अपनी धोती से विश्वासघाती आँसुओं को पोछ डाला। खाँसकर अपने विकृत कंठ-स्वर को ठीक किया। यह दृश्य देखकर हरखू की मा के भी आँसू आ गए। वह अपने अपमान को भूल गई। कुमुदिनी के विष-भरे तिरस्कार को भूल गई। उसके मुँह से समवेदना और सहानुभूति की एक ठंडी साँस निकल गई। सच्ची सहानुभूति समवेदना का एक रूप है।

निर्मल ने ऊपर आकर देखा, कुमुदिनी आराम-कुर्सी पर लेटी हुई है। गोद में छोटा टैरियर-जाति का सफ़ेद कुत्ता हीरा बैठा हुआ अपनी स्वामिनी का हाथ चाट रहा है। मुख गंभीर है। आँखें शर्म से छिपी-सी जा रही हैं। भय और ग्लानि से जो मनुष्य की मूर्ति हो जाती है, वही मूर्ति इस समय कुमुदिनी की है। उन्हें देखकर वह उठी नहीं। उसी तरह बैठी रही। ज़मीन पर लटकता हुआ साड़ी का किनारा भी नहीं उठाया। हठधर्मी और अवज्ञा की मूर्ति बनी

बैठी रही। कभी-कभी भय और आत्मग्लानि हठ और अवज्ञा का जन्म देते हैं। निर्मल ने क्षण-भर तक उसकी ओर देखा भी, लेकिन कुमुदिनी ने नहीं। वह चुपचाप अपने कमरे में चले गए।

कपड़े उतारने के बाद वह फिर आए। फिर कुमुदिनी की ओर देखा, लेकिन इस बार भी कुमुदिनी ने कुछ ध्यान नहीं दिया। वह फिर चुपचाप नीचे चले गए। उनके जाने के बाद कुमुदिनी उठी। मत्त गयंद की भाँति झूमती हुई अपने कमरे में चली गई। एक बार उसके मन में आया कि उनकी बातें सुनूँ। वह उस तरफ़ बढ़ी भी, लेकिन न-जाने क्या सोचकर फिर ठहर गई। धीरे-धीरे कहा—"मुझे क्या करना है उनकी बातें सुनकर। यह तो बनी-बनाई बात है कि एक-एक की चार लगाई जायँगी, लेकिन वही मेरा क्या बिगाड़ लेंगे। मेरा इसमें क्या दोष। वह ज़ात की कहारिन मेरे मुँह क्यों लगी। मैं नौकरों की बात नहीं बरदाश्त कर सकती।"

कुमुदिनी चुप हो गई। उसने किसी तरह अपने दोषी मन को समझा-बुझाकर ठीक कर लेना चाहा। कुमुदिनी नहीं जानती थी कि ऐसी बातों से बिगड़े मन को सुधारना ही अपराधी होने का सबसे उत्कृष्ट प्रमाण है। मन में तभी ग्लानि उत्पन्न होती है, जब वह जानता है कि मैंने कोई अनुचित कार्य किया है।

निर्मल नीचे उतरकर शांता के पास आए। हरखू की मा ने एक आसन बिछा दिया। बैठकर निर्मल ने फिर अपनी मा की ओर देखा। पहले का वह भाव तो न था। लेकिन मुख श्री-हीन था। स्नेह और वात्सल्य का अभाव था। शांता ने हलुए की तश्तरी सामने रखते हुए कहा—"देखो तो, आज कैसा बना है। आज एक नई चीज़ है।"

निर्मल ने फिर अपनी मा की ओर देखा। इस बार वात्सल्य का प्रकाश आँखों में था।

निर्मल—"क्या बनाया है मा ?"

शांता—"सब मेवों का हलुआ है। देख तो, बन पड़ा है कि नहीं।"

निर्मल ने एक कौर मुँह में रखते ही कहा—"बड़ा अच्छा बना है मा। हाँ, यह तो बताओ कि आज बात क्या हुई है ?"

शांता—"कल छुट्टी है क्या ?"

निर्मल—"कल छुट्टी क्यों होगी। मा, तुम दो बार बात टाल चुकी हो। बोलो, मामला क्या है, नहीं तो मैं हलुआ नहीं खाऊँगा।"

शांता—"वाह, बात क्या है। जब कुछ हो, तब तो बताऊँ या अपने मन से गढ़कर सुना दूँ।"

निर्मल—"मन से गढ़कर क्यों। सच्ची बात कहो, छिपाती क्यों हो। जब मैं आया था, तब तुम्हारी आँखों में आँसू भरे हुए थे। तुम लाख छिपाओ, लेकिन अपने लड़के को धोखा नहीं दे सकतीं। आज कोई ज़रूर बड़ी बेढब बात हुई है। अच्छा, हरखू की मा, तुम्हीं बताओ, मा के पेट से बात निकाल लेना कुछ सरल काम नहीं है।"

शांता ने इशारे से हरखू की मा को मना किया।

निर्मल—"तुम मा के इशारे पर मत ध्यान दो। तुमने मुझे गोद खिलाया है, मैं तुम्हें भी मा के बराबर समझता हूँ। तुम सब सच-सच हाल तो कह जाओ।"

हरखू की मा से न रहा गया। वह कहने लगी—"छोटे बाबू, तुम्हारी ही ख़ातिर मैं यहाँ पड़ी हूँ, नहीं तो न-मालूम कब यह घर छोड़कर चली गई होती। आज तक किसी की दो बातें नहीं सुनीं। हाँ, सुनी हैं सिर्फ़ चार आदमियों की—एक माजी की, एक तुम्हारी और बड़े बाबू की और उनकी (अपने स्वामी की)। लेकिन जो आज बहूजी ने कहा वह सब तुम्हारी ख़ातिर सुन लिया है। तुम्हारी बहू तो नवाब साहब की लड़की है। माजी ने बुलाया कि नीचे आओ, नहीं उतरीं। जब दो-तीन बार माजी ने बुलाया, तो मुझसे न रहा गया, मैंने कहा कि

बहूजी, नीचे आओ, कुछ काम है, तभी तो बुला रही हैं। बस, मेरा कहना था कि आप उबल पड़ीं। उलटी सीधी सुनाने लगीं। जेल में चक्की पिसाने को कहा—तब मैंने भी कहा कि आज ही मैं चली जाऊँगी, मेहनत बेची है, कुछ इज़्ज़त नहीं। इस पर और बिगड़ गईं। माजी को, तुमको और मुझको, ख़ैर, मेरी हैसियत ही क्या है, सब-को सुनाने लगीं। बाप के घर जाने को चिट्ठी लिखेंगी, और एक दिन मौक़ा मिलने पर ज़रूर बदला चुकाएँगी। छोटे बाबू, ऐसी-ऐसी बातें कही हैं, जिनको कहने में शरम लगती है, मैं क्या कहूँ...."

शांता—"चुप रह, बहुत बकबक न कर।"

निर्मल से कुछ और न खाया गया। जल पीकर उठ गए। शांता कहती ही रही—"यह क्या, कुछ और खा लो।" निर्मल बाहर चले गए।

(३)

कुमुदिनी के क्रोध की मात्रा किसी तरह कम न हुई। कम न हुई, वरन् और बढ़ गई। क्षोभ, अभिमान, ग्लानि और क्रोध ने उसे बिलकुल पागल बना दिया। अभिमान स्वामी पर था, क्रोध हरगू की मा और शांता पर हुआ। कुमुदिनी बालिका तो न थी, किंतु लड़क-पन अभी तक था। कुमुदिनी की मा जब मरी थी, तब उसकी आयु केवल पाँच वर्ष की थी। मा के मरने के बाद वह हठीली और अभि-मानिनी हो गई। बाप की लाड़ली लड़की हो गई। राय माधवशंकर बहादुर ने द्वितीय पाणिग्रहण नहीं किया। क्यों नहीं किया, यह मालूम नहीं। कुमुदिनी के एक भाई था। नाम था मुरारीशंकर। मुरारी लॉ-कॉलेज में पढ़ता था। एम्० ए० और लॉ दोनो साथ-साथ लिया था। कुमुदिनी अपने पिता की बड़ी लाड़ली थी। बड़े नाज़ से पली थी। उसकी कोई भी इच्छा कभी अपूर्ण नहीं रक्खी गई थी। असंभव-से-असंभव बात उसने कही और तत्क्षण वह पूरी हुई। कुमुदिनी किसी की एक बात भी नहीं सह सकती थी। शुरू से दं

शासन करना सीखा था। उसकी वजह से घर के नौकर-चाकर पत्ते की तरह काँपा करते थे। किसी में इतना साहस न था कि उसकी बात का प्रतिवाद करे।

कुमुदिनी सुशिक्षिता थी। विदुषी थी। 'गर्ल्स क्रास्थवेट'-कॉलेज में वह एफ़० ए० तक पढ़ी थी। उसकी इच्छा थी कि वह आगे पढ़े, लेकिन उसी वर्ष उसका विवाह हुआ। विवाह के बाद पढ़ना असंभव हो गया। इसके अतिरिक्त कुमुदिनी के श्वशुर की इच्छा बिलकुल न थी कि उसकी शिक्षा जारी रक्खी जाय। उनके मत से कुमुदिनी ज़रूरत से ज़्यादा पढ़ चुकी थी। इन्हीं सब कारणों से वह बी० ए० पास न कर सकी।

कुमुदिनी को उपन्यासों से बड़ा प्रेम था। अच्छे नहीं, गंदे। यह आदत उसकी कॉलेज में पड़ी थी। रोज़ एक नया उपन्यास आता था और वह कुछ ही घंटों में उन्हें समाप्त कर देती थी। उपन्यास पढ़नेवालों में एक ख़ास बात उत्पन्न हो जाया करती है, विशेषकर अविवाहितों में। वे किसी-न-किसी प्रेम-घटना के कार्यकर्ता होना चाहते हैं। मन-ही-मन वे अपने को नायक अथवा नायिका समझने लगते हैं। जैसे उपन्यास के नायक और नायिका में प्रेम उत्पन्न होता है, एक दूसरे के लिये जान देने के लिये तैयार रहते हैं, वैसे ही दृश्य और घटना-वैचित्र्य वे सच्चे संसार में भी पाने की इच्छा करते हैं। नहीं जानते कि कल्पना का एक और संसार है, जहाँ लेखक के इच्छानुसार घटनाएँ उत्पन्न होती हैं और अंत भी उसी के इच्छानुसार होता है। उस कल्पना-संसार के कई विधाता हैं और वे लेखक हैं। लेकिन इस वास्तविक संसार-परिचालन की बागडोर मनुष्य के हाथों में नहीं है— वह है एक अदृश्य और सर्वशक्तिमान् के हाथों में। मनुष्य तो उसकी [illegible]रे से बँधा हुआ एक खिलौना-मात्र है। जैसे-जैसे झटके वह देता है, [illegible]से ही मनुष्य भी नाचता है। कुमुदिनी अपने को एक नायिका [illegible]समझती थी और निर्मल को नायक, यद्यपि दोनो में विवाह के

पहले प्रेम का सूत्रपात नहीं हुआ था, लेकिन विवाह के बाद वह प्रेम-अभिनय करना चाहती थी। हज़ारों नायिकाओं द्वारा कही गई बातें उसे कंठस्थ थीं। उन्हीं की तरह रूठना, अभिमान करना, मचलना और क्रोध करना सीखा था। मानिनी नायिका होना चाहती थी। लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। निर्मल एक सरल प्रकृति के मनुष्य थे। उपन्यासों से उन्हें घृणा थी, सो बात नहीं; लेकिन उन्होंने उत्कृष्ट ही उपन्यास पढ़े थे। ह्यूगो के बड़े भक्त थे। उसके नाटक, काव्य और उपन्यासों को उन्होंने पाठ्य पुस्तकों की भाँति कई बार पढ़ा था। मेरीडिथ और ब्राउनिंग के बड़े भक्त थे। टाल्स्टाय के बड़े पक्षपाती। इसके अतिरिक्त उनका मुख्य विषय था फ़िलॉसफ़ी। योरप के प्राचीन और अर्वाचीन दोनो तत्त्व-शास्त्रों के पंडित थे। युनिवर्सिटी-कॉलेज में वह फ़िलॉसफ़ी के ही रीडर थे। प्लेटो, अरस्तू, बार्कले कांट, ह्यूम, बेकन, मिल आदि के लेखों को खूब पढ़ा था। इसीलिये उनकी रुचि कुमुदिनी से भिन्न थी। इसका यह मतलब नहीं कि वह संसारी नहीं थे। बड़े मातृभक्त थे। जीवन में कभी उनकी आज्ञा नहीं टाली। कुमुदिनी को भी वह प्राणों से अधिक प्यार करते थे, लेकिन मति-रुचि न मिलने के कारण वह प्रेम-समुद्र भीतर-ही-भीतर लहरें मार रहा था।

कुमुदिनी उस दिन खाने नहीं गई। शांता ने बहुत देर तक उसकी राह देखी, लेकिन वह गई नहीं। शांता के अतिरिक्त किसी में इतना साहस न था कि कोई उसे बुलाने जाय। अंत में वह उसे बुलाने आई।

कुमुदिनी अपने कमरे के बाहर ही आराम-कुर्सी पर लेटी [illegible] प्रतीक्षा करते-करते थक गई थी। प्रतीक्षा थी स्वामी के मनाने [illegible] उसे आशा थी कि स्वामी उसे मनाने आएँगे, बड़े प्रेम से इस का कारण पूछेंगे, लेकिन वह आए ही नहीं। कुमुदिनी को [illegible]

था कि वह मनाने नहीं आएँगे, लेकिन आशा तब भी थी। जब निर्मल नहीं आए, कुमुदिनी बैठे-बैठे सो गई। संध्या-काल की शीतल समीर ने अपने कोमल थपेड़ों से सुला दिया। क्रोध और अभिमान के बाद क्लांति उत्पन्न होती है और कभी-कभी मनुष्य सो भी जाता है।

फाल्गुन-मास था। शुक्ल पक्ष था। चंद्रमा चाँदनी लुटा रहा था। कुमुदिनी सो रही थी। प्रकृति खिलखिलाकर हँस रही थी, उसका हास्य-रव समग्र संसार में गूँज रहा था, लेकिन कुमुदिनी के कानों में वह स्वर-लहरी नहीं सुनाई पड़ रही थी। अवसाद और क्लांति से वह सो रही थी।

शांता आई। कुमुदिनी की ओर उसने देखा। कुमुदिनी की आँखें बंद थीं। थोड़ी देर तक प्रतीक्षा की, लेकिन कुमुदिनी जागी नहीं। शांता ने मधुर तथा स्नेह-स्वर में कहा—"बहू, बाहर क्यों पड़ी हो?"

कुमुदिनी तब भी नहीं जागी। मृदुल समीरण ने उसे गहरी नींद में सुला दिया था। शांता ने समझा कि वह अभिमान किए लेटी है। पास आकर सप्रेम उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। कुमुदिनी जाग पड़ी। उसने समझा कि यह हाथ निर्मल का है। वह कुछ बोली नहीं।

शांता ने फिर कहा—"बहू, किस पर अभिमान करती हो, मुझ पर?"

कुमुदिनी चौंक पड़ी। अब उसे मालूम हुआ कि मनानेवाले वह नहीं हैं, उनकी मा है। उसने उसका हाथ झटक दिया। शांता ने हाथ हटा लिया।

शांता—"क्यों बहू, गुस्सा हो?"

कुमुदिनी बोली नहीं। क्षोभ से उसका बुरा हाल था।

शांता ने फिर कहा—"बहू, खाने चलो। मैंने हरखू की मा को जवाब दे दिया है। जो इस तरह मेरी बहू का अपमान करेगा, वह कभी भी इस घर में नहीं रह सकता।"

कुमुदिनी फिर चुप रही।

शांता—"देखो, भोजन ठंडा हुआ जा रहा है। तुम्हें गरम-गरम खाना अच्छा लगता है, चलो, खा आओ।"

कुमुदिनी—"मैं इस घर में जल तक नहीं ग्रहण करूँगी। कह दिया।"

शांता—"कोई ऐसी बात कहता है?"

कुमुदिनी—"क्यों नहीं। जहाँ मेरा अपमान इस तरह होता है, मैं वहाँ पल-भर भी रहना पसंद नहीं करती।"

शांता—"मैंने उसे निकाल दिया है। क्या उसकी बातें मुझे अच्छी लगी थीं? जो मेरी बहू का इस तरह अपमान कर सकता है, मैं उसे कभी नहीं क्षमा कर सकती।"

कुमुदिनी—"सब तुम्हीं तो कहवाती हो, और बाद में ऐसी लीपा-पोती करती हो।"

शांता—"बहू, तुम मुझे ऐसा नीच समझती हो।"

शांता के स्वर में तिरस्कार और वेदना का आभास था।

कुमुदिनी—"जो देखती हूँ, वही कहती हूँ। साँच को आँच क्या?"

शांता पर यह दूसरा प्रहार था। उसने अपने को बहुत सँभाल-कर कहा—"बहू, मैं ऐसी नीच नहीं हूँ। नन्हे और तुम दोनो मेरे लिये बराबर हो। वह कम और तुम अधिक। अगर मेरा अपराध समझती हो, तो क्षमा करो, मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ।"

कुमुदिनी—"क्षमा करनेवाली मैं कौन। कुछ इज़्ज़त मेरी घर में रह गई है। ज़ात की कहारिन जब तुम्हारे सामने

ऐसी बातें कह गईं, तब अब इज़्ज़त कहाँ रह ... ई है।"
नहीं तो खड़े-खड़े खाल खिंचवा लेती।"

शांता—"यह तुम्हारा घर नहीं है, तो फिर किसका घर है। इस

कुमुदिनी—"तुम्हारा है, मेरे घर में ऐसी बातें कभी घट हो सकती थीं!"

शांता—"मेरा घर है, सो भी कै दिन का। ज़्यादा-से-ज़्यादा छ महीने और चलती हूँ। क्या मैं सदा जीवित ही रहूँगी। वह तो चले ही गए, अब मेरी भी पारी है। न-मालूम क्यों बुलाने में देरी कर रहे हैं?"

शांता का स्वर विकृत था।

कुमुदिनी—"जब तक भी सही, यह घर आप ही का है, मेरा नहीं।"

शांता—"अच्छा बहू, इस बार तो क्षमा करो। अब अधिक गुस्सा न हो। दो बार सबके अपराध क्षमा किए जाते हैं। फिर यह तो पहला अवसर है।"

कुमुदिनी—"पहला कैसे है। आज हरखू की मा ने कहा, रोज़ ही तो वह कहते हैं।"

शांता—"कौन कहता है, नन्हे। अरे, उसकी बात का ख़याल करती हो। वह तो एक तरह से पागल है।"

कुमुदिनी—"लेकिन पागल के साथ तो जीवन-भर रहना है।"

शांता—"बहू, तुम होशियार हो, सुशील हो, पढ़ी-लिखी हो, समझा-बुझाकर उसे ठीक कर लेना। अपने आदमी को सभी सुधारते हैं।"

शांता ने बिलकुल सरल भाव से कहा था, लेकिन कुमुदिनी ने [illegible] व्यंग्य समझा।

कुमुदिनी—"सिखे-सिखाए बूढ़े तोते भी कहीं सीखा करते हैं।"

शांता—"क्यों नहीं। वह तो और सहज में ही सीख जाते हैं।"

कुमुदिनी—"लेकिन जब एक चतुर शिक्षक बराबर उन्हें सिखा दिया करता है, तब एक नए शिक्षक का प्रभाव पड़ना असंभव है। जो डाल टेढ़ी हो गई, वह पुरानी होने पर भी टेढ़ी ही रहती है।"

शांता—"लेकिन बहू, प्रयास कभी निष्फल नहीं जाता। टेढ़ी डाल भी गरम करके सीधी की जा सकती है।"

कुमुदिनी ने व्यंग्य का उत्तर देना चाहा था, लेकिन शांता ने अपनी सरलता से उसके सब प्रहार व्यर्थ कर दिए। रण-भूमि में जब किसी सैनिक का प्रतिद्वंद्वी उसके सब अस्त्र काट डालता है; तब उसके क्रोध का वारापार नहीं रहता। मनस्कामना न पूर्ण होने से जो क्षोभ और क्रोध होता है, वही हाल कुमुदिनी का भी हुआ। कुमुदिनी चुप हो गई।

शांता ने सप्रेम उसको उठाते हुए कहा—"बहू, चलो खा आओ।"

कुमुदिनी चुप ही रही।

शांता—"चलो बहू, देर होने से सब खाना ख़राब जाएगा!"

कुमुदिनी—"अरे भाई, कह दिया, मेरे भूख नहीं है, मैं न खाऊँगी, फिर क्यों फ़िज़ूल परेशान करती हो।"

शांता—"वाह, भूख कैसे नहीं है। आज शाम को जल-पान भी तो नहीं किया।"

कुमुदिनी—"न मानने का क्या इलाज है।"

शांता—"कैसे मान लूँ कि भूख नहीं है। अच्छा, थोड़ा-बहुत सही, जितनी भूख हो, उतना खा आओ।"

कुमुदिनी—"मैंने कह दिया, मैं नहीं खाऊँगी। चाहे जो कुछ हो। मैं इस घर का अन्न-जल नहीं ग्रहण करूँगी।"

शांता—"फिर वही बात, बहू। यह घर त[illegible] अपने घर में न खाओगी, तो कहाँ खाओगी?"

कुमुदिनी—"क्यों, क्या मेरे बाप का घर नहीं है।"

शांता—"है क्यों नहीं। लेकिन बहू, यह तुम्हारा घर है। इस घर की एक-एक ईंट तुम्हारी है।"

कुमुदिनी—"वहाँ से भी जो चाहूँ मैं ले आ सकती हूँ। किसी में हिम्मत नहीं है कि मेरा हाथ पकड़े।"

शांता—"हाँ, सो बात तो है। अच्छा, मेरे कहने से खा आओ।"

इसी समय पीछे से निर्मल ने कहा—"तुम्हारे घर में मोटा अन्न है। भला रायबहादुर की लड़की कैसे खा सकती है। जानती हो, मोती चुगती है! हैं तुम्हारे यहाँ? कभी आँखों से भी देखा है।"

कुमुदिनी का पारा एकदम से ११० डिगरी पर पहुँच गया। जिस तरह अधबुझी अग्नि घी डालने से फिर सजीव हो जाती है, उसी तरह कुमुदिनी का भी ठंडा होता हुआ क्रोध भभक उठा।

शांता—"तुम चुप रहो नन्हे। तुमने दूसरों की बातों में बोलना कब से सीखा है?"

निर्मल—"मा, मैं तो साधारण बात कह रहा था। तुम्हारे यहाँ गेहूँ की रोटी है, भला नवाबों की लड़कियाँ गेहूँ खाती हैं। वे मोती-मूँगा खाती हैं।"

शांता—"फिर वही बात। तुमसे क्या मतलब। तुम जाओ।"

कुमुदिनी की सहन-सीमा के बाहर की बात थी। वह उठ खड़ी हुई, और तेज़ी से जाते-जाते कहा—"ठीक है, घर में खिलाने को क्या है। जैसा तुम लोग खाते हो, वैसा मेरे यहाँ के जानवर खाते हैं।"

नि[illegible] ने हँसकर कहा—"सुना मा, हम-तुम तो जानवरों का उनका खाते हैं, फिर वह कैसे खाय।"

[illegible]—"नन्हे, क्यों मुझे पद-पद पर लज्जित करते हो। तुम्हारे लिये [illegible] बातें अच्छी नहीं लगतीं। जाओ तो। तुम मेरी जान नही[illegible]नोगे।"

निर्म[illegible]

शांत[illegible]

शांता सवेग चली गई कुमुदिनी के पीछे। निर्मल खड़े-खड़े हँसते रहे।

(४)

कुमुदिनी सीधे अपने कमरे में गई। उसके हृदय में भीषण झंझा-वात मचा हुआ था। उसने लेटकर अपने हृदय की अग्नि को शांत करना चाहा। वह लेट गई कमरे में बिछी हुई दरी पर। उसके नेत्र बंद थे, अभिमान और क्रोध दोनों ही उसके हृदय-प्रांगण को भीषण रणस्थल बना रहे थे, कुमुदिनी मौन होकर सोचने लगी।

एकाएक उसे जान पड़ा, कोई पुकार रहा है—"कुमुद !"

कुमुदिनी ने अपने नेत्र खोले बड़ी आशा से; लेकिन कोई न था। निराशा की एक ठंडी साँस लेकर उसने अपने नेत्र पुनः बंद कर लिए।

धीरे-धीरे निर्मल ने आकर कुमुदिनी को पुकारा—"कुमुद !"

कुमुदिनी ने अभिमान से अपने नेत्र नहीं खोले—मान के अश्रुओं ने उसका गला दबा दिया था।

निर्मल ने पुनः धीर-शांत कंठ से कहा—"कुमुद !"

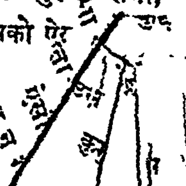
कुमुदिनी ने बग़ैर नेत्र खोले उत्तर दिया—"क्या है ?"

निर्मल ने कहा—"कुछ नहीं।"

निर्मल चुपचाप जाकर अपनी शय्या पर लेट गए। कुमुदिनी के आहत अभिमान पर यह दूसरी चोट थी। कुमुदिनी तलमला गई। दोनों नीरव थे। कमरे में निस्तब्धता का अखंड राज्य था।

कुमुदिनी उठकर बैठ गई। नाख़ूनों से ज़मीन खुरचने लगी, उसके अभिमान की मात्रा क्रमशः बढ़ रही थी, उसको ऐसा हुआ, मानो कोई पुकार रहा है—"कुमुद !"

कुमुदिनी के उफनाते हुए क्रोध पर जल का छींटा शांत हुई। उसने स्वामी की ओर देखा। स्वा



उन्होंने उसे नहीं पुकारा था, यह उसकी केवल भ्रांति थी। आशा की परा काष्ठा ही भ्रांति है।

कुमुदिनी ने अपना मुख नीचे किए हुए निर्मल से कहा—"मुझे अपने घर भेज दो; मैं यहाँ नहीं रहूँगी।"

उसको आशा थी कि यह अचूक बाण ज़रूर निर्मल के हृदय पर आघात करेगा। वह सब कुछ भूलकर उसे मनाने लगेंगे। वह तब और रूठ जायगी। लेकिन हाय री आशा! कुमुदिनी की उमंग मन-की-मन ही में रह गई।

निर्मल ने गंभीर कंठ से उत्तर दिया—"वही सोच रहा हूँ। जब तुम यहाँ सुखी नहीं हो सकतीं, तब वहीं रहो जाकर, जहाँ तुम्हें सुख मिले। कल तुम्हारे पिताजी को चिट्ठी लिख दूँगा, वह आकर लिवा जाएँ, या किसी को भेज देंगे। आज रात-भर और धैर्य धरो।"

[illegible]दिनी अब और क्या कहे। वह चुपचाप बैठी रही। उसे [illegible] हो गया कि वह उससे तनिक भी प्रेम नहीं करते। यह [illegible]थ्या भावना थी कि वह उसे चाहते हैं। अतीत काल की [illegible]-एक करके सभी याद आने लगीं। निराशा की सखी का [illegible] है। कुमुदिनी सोचने लगी—"विवाह के बाद जब मैं पहले-पहल आई थी, तब वह मुझे कितना चाहते थे। प्रेम-कोष के चुने-चुने प्रेम-शब्दों द्वारा अपना प्रेम प्रकट करते थे। प्रेमोच्छ्वास में पागल हो जाते थे। आलिंगन और चुंबन का ताँता बँधा रहा करता था। पहले जब कभी मैं रूठती, तो मनाने ही में सब रात गुज़र जाया करती थी। जब वह मनाते-मनाते हार जाते, तब कहीं मैं हँसकर उनकी ओर देखती थी। उस हँसी के साथ हम दोनो आलिंगन-पाश [illegible] जाते। दोनो के मुख पर विजय-हास्य-श्री नाचती थी। लेकिन [illegible]झे नहीं मनाते। पहले उन्हें कितनी प्यारी थी, और आज [illegible] नहीं हूँ। आज उनकी मा ही सब कुछ है। मा के आगे

मेरी कुछ भी पूछ नहीं है। हाँ, क्यों होगी? मैं उनकी कौन हूँ! कोई नहीं। मैं हूँ एक पराई लड़की, और उनकी मा, उनकी मा हैं। मेरी कुछ भी परवा नहीं करते। परवा करना तो दरकिनार, मेरा अपमान करते हैं। मेरे बाबूजी को भी नहीं छोड़ते। भला बाबू ने क्या बिगाड़ा है, बाबू ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं, इनको क्या। इनको डाह होती है। होने की बात ही है; ख़ुद तो कुछ है ही नहीं। एम० ए० क्या पास कर लिया, मानो जग लूट लिया। सीधे पैर नहीं रखते। मुझे अपने घर की पड़ी हुई समझते हैं। उन्हें विश्वास है कि मैं माफ़ी माँगूँगी। ज़रा मुँह धो रक्खें. माफ़ी कौन माँगता? मैं! मैं माफ़ी माँगकर अपना और बाबूजी का सिर नीचा नहीं कर सकती हूँ। अच्छा, मैंने कौन क़ुसूर किया है? क्या अपने हीरा को न खिलाऊँ? क्या मैं काम-ही-काम करने के लिये आई हूँ? यदि ऐसा था, तो एक मिसराइन से शादी क्यों न की? मुझसे तो यह काम नहीं हो सकता। कौन चूल्हे के आगे बैठकर फू-फू करे। जिसको सौ दफ़े ग़रज़ हो, करे न? मुझे कौन ग़रज़। बुढ़िया ने बागडोर अपने हाथ में लेकर घोड़ा मुझे सौंप दिया है। वही सबकी जड़ है। अगर यह न होती, तो क्या बाबू साहब मेरी इच्छा के विरुद्ध चल सकते थे। जो मैं कहती, वही करते। लेकिन हो कैसे? बुढ़िया के मारे कुछ होने भी तो पावे। ऊपर से कैसी घुल-घुलकर बातें करती है, लेकिन भीतर-ही-भीतर छुरी चलाती है। एक की तीन लगाती है, हरखू की मा उसी के सहारे से बोलती है। नहीं तो एक दासी की इतनी हिम्मत! वह मुझे बुरा-भला कहे! मेरे बाबू के यहाँ होती, तो ज़बान पकड़कर खींच लेती। लेकिन यहाँ है, क्या करूँ! कुछ बस नहीं है। हरखू की मा आग लगाए और ख़ुद पानी को दौड़े बहू-बहू करके बहू की जान खा जाती है। सिहिनी मे ज़िलत नहीं होता। यदि मैं इतनी तनी न र

मेरी जान ही खा जाय। उन्हें क्या कहूँ? सतजुगी हैं। धर्मात्मा हैं। बड़े मातृभक्त हैं। मा ही स्वर्ग है, संसार है, और मोक्ष है। मैं कौन हूँ। स्त्री के प्रति पुरुष का कर्तव्य शायद कुछ भी नहीं है। यदि होता, तो क्या वह न करते? अगर मुझे अपना समझते होते, तो क्या इस तरह बिगड़ जाते? मेरा क़ुसूर कुछ भी नहीं था। लेकिन तब भी मुझसे रुष्ट लेटे हैं। लेटे रहें, मेरी बला से। कल तो चली ही जाऊँगी! मा-पुत्र के मार्ग का कंटक दूर हो जायगा।"

कुमुदिनी सोचते-सोचते थक गई। थककर फिर पृथ्वी पर लेट गई।

निर्मल ने कहा—"ज़मीन पर न लेटिए। ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और रायबहादुर की लड़की की शान के ख़िलाफ़ है। आइए, लेटिए। अगर हम लोगों से इतनी विरक्ति है, तो मैं जाता हूँ।"

यह कहकर निर्मल बाहर चले गए। कुमुदिनी क्रोध और अभिमान से वहीं लेटी रही। निर्मल ने अपनी मा के कमरे में आकर देखा कि मा बैठी हुई है। मुख नीचे है, शायद रो रही है। निर्मल ने अधीरता के साथ पुकारा—"मा!"

शांता ने सचेत होकर निर्मल की ओर देखा। नयन-झरोखे से आँसू झाँक रहे थे।

निर्मल ने पूछा—"तुम बैठी हुई क्या कर रही हो?"

शांता ने आँचल से अपनी आँखें पोंछकर कहा—"यों ही बैठी हूँ। तुम कैसे आए? क्या कुछ काम है?"

निर्मल ने और पास आकर मा का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"मा, तुम रोती हो?"

शांता ने शुष्क हँसी हँसकर कहा—"नहीं तो, मैं रोऊँगी किसलिये।"

निर्मल—"मैं क्या जानूँ? किंतु तुम रो रही हो।"

शांता ने कहा—"पागल हुआ है? मुझे कौन दुःख है।"

निर्मल—"तुम्हें दुःख तो नहीं है, लेकिन दुखी होने के लिये म उतावली रहती हो। उसके पास क्यों जाती हो ? उससे ोलती ही क्यों हो ? तुम तो उससे प्यार करती हो, उसके लिये जान देती हो, और वह तुमसे घृणा करती है। फूटी आँखों नहीं देख सकती। तुम उसके पास सप्रेम जाती हो, लेकिन वापस आती हो अपना मुँह लेकर। जान-बूझकर अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारती हो।"

शांता—"उसकी बात का बुरा मैं नहीं मानती। लड़के तो यों ही कहा करते हैं। फिर वह तो मुझे कुछ कहती भी नहीं, कह भी भला कैसे सकती है ? मैं उसकी भी तो मा हूँ।"

निर्मल ने एक ठंडी साँस लेकर कहा—"अगर वह तुम्हें अपनी मा ही समझती होती, तो फिर यह बवाल क्यों उठता ? इस तरह अपमान ही क्यों करती मा ! मुझे क्षमा करो।"

शांता ने अवाक् होकर निर्मल की ओर देखा। फिर कहा—"तुम्हें क्षमा किसलिये ?"

निर्मल—"इसलिये कि मैंने अपराध किया।"

शांता ने और अधिक विस्मित होकर कहा—"तुमने कौन-सा अपराध किया है ?"

निर्मल—"बड़ा गुरुतर अपराध है।"

शांता—"क्या ?"

निर्मल—"यह मेरे अभाग्य से तुम्हें इतनी अयोग्य बहू मिली।"

शांता—"कौन कहता है, वह अयोग्य है ?"

निर्मल—"तुम्हारा हृदय। और मैं।"

शांता—"मैं तो कभी नहीं कहती, बल्कि यह सदैव कहती हूँ कि बहू लक्ष्मी है, सुशील है।"

निर्मल—"हृदय से कि ऊपर से ?"

शांता—"मा के भीतर-बाहर कुछ नहीं होता, एक ही हृदय होता है। छिः! संतान के प्रति कपटाचार मा करेगी? क्यों, तुम्हें विश्वास होता है?"

निर्मल मौन हो गए।

निर्मल—"क्यों मा! तुम्हारा अपमान करना ही क्या सुशीलता है?"

शांता—"अभी यह अबूझ बालिका है।"

निर्मल—"नहीं, यह तुम्हारा स्नेह है। स्नेह के मारे तुम अंधी हो रही हो।"

शांता—"जा-जा! बहुत हो चुका, सो जा करके।"

निर्मल—"कहाँ जाऊँ? क्या तुम्हारे पास भी स्थान नहीं मिलेगा?"

शांता ने विस्मित मन से कहा—"क्यों, क्या हुआ? अपने कमरे में क्यों नहीं जाते? बहू अकेली होगी।"

निर्मल—"नहीं मा, वहाँ नहीं जाऊँगा। आज मा का अपमान होता है; कल मेरा भी होने लगेगा।"

शांता—"जाओ। फ़िज़ूल बक-बक न करो।"

निर्मल—"मा! क्या तुम्हें वह एक बात याद पड़ती है, जब बाबूजी से प्रतारित हो करके तुमने अपने वक्षःस्थल से लगाकर मुझे सांत्वना दी थी। मा! एक दिन और मैंने हठ किया था कि तुम्हारे पास सोऊँगा, तुमने स्नेह से मेरा मुख चूमकर कहा—'आओ सोओ!' मा! आज मैं उसी स्वर में कहता हूँ। मुझे आज इस कमरे में सोने दो।"

शांता—(हँसकर) "वही लड़कपन की बातें। नन्हे! क्या तू हमेशा लड़का ही बना रहेगा? जाओ, यहाँ जगह नहीं है!"

निर्मल चुपचाप जाने लगे।

शांता ने पूछा—"कहाँ जाते हो?"

निर्मल ने जाते हुए कहा – "जहाँ जगह मिलेगी, वहाँ जाता हूँ।"

शांता—"ठहरो! अपने कमरे में जाओ। अपने कमरे में—क्यों नहीं जाते?"

निर्मल—"वहाँ जगह नहीं है, यहाँ भी जगह नहीं है, तो अब बाहर ही जाकर सोना पड़ेगा।"

शांता—"नन्हे! तुम बड़े ज़िद्दी हो।"

निर्मल—"मा! क्या अपनी बहू के अपराध का दंड मुझे दोगी।"

शांता की आँखों में प्रेम के आँसू छलछला आए। उसने रुँधे स्वर में कहा—"जब मेरा कहना नहीं मानते हो, तो यहीं रहो।"

शांता धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गई।

निर्मल ने गुनगुनाकर कहा—"कुमुद! तुम मेरे बड़े साध की हो। मैं तुम्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करता हूँ। तुम जो पाप करती हो, उसका फल हम दोनो को भोगना पड़ेगा। प्रायश्चित्त करने से पाप का बोझ हलका होता है। मेरी मा तुम्हारे ऊपर प्राण निछावर करे, और तुम उन्हें ठुकराओ, स्नेह का राज्य क्या इतना उलटा है।"

उस दिन कुमुदिनी अकेले ही सोई।

(५)

इलाहाबाद के समीप रामनगर एक बड़ा भारी गाँव है। यहाँ के ज़मींदार का नाम था काशीनाथ, लेकिन वह 'दीवानजी' के नाम ही से प्रसिद्ध थे। दीवानजी की ज़मींदारी और भी कई एक गाँवों में थी। कुछ तो रामनगर के आस-पास थे, और कुछ लखीमपुर के पास थे। लखीमपुर के गाँवों की देख-रेख के लिये कई गुमाश्ते नौकर थे। दीवानजी की गणना इलाहाबाद के नामी-नामी ज़मींदारों में थी। मान-सम्मान और ख्याति भी विशेष थी।

दीवानजी किसी कॉलेज के ग्रेजुएट तो न थे, और न वैसी कोई एक डिगरी ही पास थी, लेकिन विद्वत्ता में वह कम भी न थे। फ़ारसी,

संस्कृत और अँगरेज़ी, तीनो भाषाएँ जानते थे। हिंदी पर आपकी विशेष कृपा थी। भारतेंदु के समकालीन थे। कभी-कभी हिंदी-पत्रों में लिखा भी करते थे। इन्हें कविता से बड़ा प्रेम था। महात्मा तुलसीदास के अनन्य भक्त थे। रामायण पर बड़ी भक्ति थी। रामायण पढ़ते-पढ़ते विह्वल हो जाते। टीका करने में बड़े पटु थे। वह सदैव नए-नए अर्थों के निकालने में तल्लीन रहते। इनके उपास्यदेव श्रीरामचंद्रजी थे। नित्य रामायण का पाठ करने के पश्चात् भोजन करते। हिंदी के अतिरिक्त फ़ारसी और उर्दू-शायरी पर भी आपका प्रेम था। फ़िरदौसी का शाहनामा, सादी की गुलिस्ताँ, हाफ़िज़, ग़ालिब, आतिश, नासिख़ के दीवान भी बड़ी रुचि से पढ़ते थे।

दीवानजी पुरानी चाल के आदमी थे। बड़े सीधे-सादे और सरल स्वभाव के थे। पूरे भोलानाथ थे। स्त्री-शिक्षा के पक्ष-पाती थे, लेकिन उनके कॉलेजों में शिक्षा पाने के घोर विरोधी थे। वह स्त्री-जाति पर विश्वास न करते थे। उनकी स्वतंत्रता के क़ायल न थे। उनका कथन था, 'जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहि नारी'। जैसे विधवा-विवाह के कट्टर विरोधी थे, वैसे ही पुरुषों के पुनर्विवाह के भी। उनका विश्वास था कि पुनर्विवाह व्यभिचार के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। साधू-महात्माओं पर बड़ी भक्ति थी। कोई भी भिक्षुक उनके यहाँ से ख़ाली हाथ वापस न जाता था। दान देने में वह मुक्त-हस्त थे। कई एक कॉलेजों को आपने अपने वित्त से अधिक दान दिया था। दीवानजी नाम के भूखे तो न थे, किंतु उनकी ख्याति सर्वत्र थी।

दीवानजी को बालकों से बड़ा प्रेम था। वह सदैव बालकों के बीच ही में खेला करते थे। बालकों से अधिक प्रेम बालिकाओं पर था। किसी भी सुंदरी बालिका को देखकर वह उसे प्यार अवश्य करते। एक बार आप लाहौर जा रहे थे, इनके साथ एक दूसरे सज्जन अपनी स्त्री के साथ बैठे थे।

उन सज्जन के साथ उनकी कन्या भी थी। उसकी आयु लगभग चार-पाँच वर्ष के थी। बालिका बड़ी सुंदरी थी। बिना किसी संकोच के दीवानजी ने उसे अपनी गोद में बिठा लिया, और थोड़ी ही देर में बालिका उन्हें बिलकुल हिल गई। रास्ते-भर में आप उसे खिलौने खरीदते आए। बालिका के पिता हैरान थे। वह बार-बार उसकी ओर देखकर घुड़कते, लेकिन वह उस समय उनकी कुछ भी परवा न करती थी। हारकर उन्हें दीवानजी से कहना पड़ा—"महाशय, आप क्या कर रहे हैं।" दीवानजी ने उत्तर दिया—"महाशय, आप जानते हैं, बालक और बालिकाएँ ईश्वर की संपत्ति हैं, उन पर सबका समान अधिकार है।" उन सज्जन को चुप हो जाना पड़ा। वह सज्जन दिल्ली में उतरनेवाले थे। बालिका से जुदा होते समय उनकी आँखों में आँसू भर आए। चलते समय दीवानजी ने बालिका के हाथ में दस रुपए रख दिए और कहा—"बेटी, इसके कपड़े बनवाकर पहनना।" उसके पिता ने बड़ी आपत्ति की, लेकिन दीवानजी ने कहा—"मैं आपको नहीं, अपनी कन्या को दे रहा हूँ। आप अच्छा-सा कपड़ा लेकर कुछ सिलवा दीजिएगा।" सज्जन चुप हो रहे, और धीरे-धीरे चले गए। बालिका चली जा रही थी, और दीवानजी उसकी ओर एकटक देख रहे थे। रास्ते में बालिका की मा ने अपने स्वामी से कहा—"कोई बड़ा दुःखी आदमी है।" स्वामी ने उत्तर दिया—"नहीं, कोई पागल है।"

दीवानजी का विवाह बहुत छोटी अवस्था में हुआ था। स्त्री का नाम शांता था। आपके एक पुत्र और एक कन्या थी। पुत्र का नाम था निर्मलचंद और कन्या का नाम करुणा। वह निर्मल से अधिक करुणा को प्यार करते थे। करुणा के विवाह के लिये वह बड़े-बड़े बाँधनू बाँध रहे थे, लेकिन ईश्वर ने उनकी साध पूरी नहीं होने दी। करुणा बारह वर्ष की अवस्था में ही चल बसी। करुणा के मरने

के पश्चात् वह एक बार संसार से उदासीन हो गए। हँसी तो कभी उनके मुख पर देख ही न पड़ी। करुणा के बाद न-जाने क्यों संगीत से उन्हें विशेष प्रेम हो गया था। जब कभी वह उकता जाते, तब गा-बजाकर ही अपना मन बहलाते।

दीवानजी उदासीन तो हो गए थे, लेकिन निर्मल की शिक्षा से नहीं। उन्होंने निर्मल को शिक्षित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। एम्० ए० पास करने के बाद जब वह इँगलैंड जाना चाहते थे, दीवानजी उन्हें सहर्ष भेजने को तैयार थे, लेकिन शांता ने नहीं जाने दिया। जिस साल निर्मल ने एम्० ए० पास किया, उसी वर्ष उनका विवाह रायबहादुर माधवचंद्र ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट, इलाहाबाद की आयुष्मती कन्या श्रीमती कुमुदिनीदेवी से हुआ। रायबहादुर साहब और दीवानजी में घनिष्ट मित्रता थी। रायबहादुर साहब को निर्मल से अच्छा वर न दिखाई पड़ा। उन्होंने सब तरह से अपनी दिल-जमई कर ली, तब विवाह किया, लेकिन कौन जानता था कि इस विवाह से बड़े-बड़े विषम फल फलेंगे।

कुमुदिनी को पाकर दीवानजी अपनी करुणा को भूल गए। कुमुदिनी करुणा से भी अधिक सुंदरी थी। वह नव-वधू थी। सरलता और शिष्टता की चादर ओढ़े हुए थी। जिस वर्ष कुमुदिनी का विवाह हुआ, वह उस समय क्रॉस्थवेट कॉलेज में पढ़ती थी। ससुराल आने के पश्चात् उसका पढ़ना छूट गया। दीवानजी की इच्छा न थी कि वह आगे पढ़े। उसकी शिक्षा ज़रूरत से ज़्यादा हो चुकी थी।

निर्मल का विवाह जिस वर्ष हुआ, उसी साल दीवानजी ने परलोक-यात्रा की। कई लोगों ने कहा कि यह विवाह फला नहीं, लेकिन शांता ने कुछ नहीं कहा। उसने केवल इतना ही कहा—"मेरा अभाग्य।" दीवानजी की बड़ी इच्छा थी कि वह मरते समय अपने बड़े साध की कुमुदिनी को देख लें, किंतु कुमुदिनी अपने पिता के साथ

शिमला में थी। कुमुदिनी को तार दिया गया, लेकिन उसके आने के पहले ही प्रस्थान कर गए। अपने अंतिम समय में वह कह गए थे— "देखो, हमारी बहू को किसी बात का कष्ट न होने पावे। वह दूसरी करुणा है। मैं तो अपनी करुणा के पास जा रहा हूँ, लेकिन दूसरी करुणा तुम्हें सौंपे जा रहा हूँ। क़सम खाओ कि कभी उसे दुखी नहीं करोगी।" शांता ने रोते-रोते क़सम खाई। दीवानजी ने अपनी आँखें बंद कर लीं। नयन-कोण से एक बूँद निकलकर ढुलक गई।

दीवानजी के बाद निर्मल पर ही सब भार आ पड़ा। वह घबराए नहीं। दीवानजी ने जितने आदमी नियुक्त किए थे, वे सब विश्वासी और चतुर थे। इसीलिये कुछ विशेष अड़चन नहीं हुई। यद्यपि उनकी आमदनी हज़ारों रुपए की थी, लेकिन निश्चेष्ट बैठ रहना उन्हें अच्छा न लगा। युनिवर्सिटी कॉलेज में वह प्रोफ़ेसर हो गए। उनके मासिक वेतन का अधिक भाग स्कॉलरशिप में ही ख़र्च होता था।

शांता ने अपने स्वामी की बात गाँठ बाँध ली थी। वह कुमुदिनी को किसी प्रकार रुष्ट न करना चाहती थी। कभी कोई काम करने को न कहती। धीरे-धीरे कुमुदिनी भी खुलने लगी। वह जन्म की ही हठीली, अभिमानिनी थी। शांता का प्रेम दिखावटी समझती थी। उसे विश्वास था कि सास कभी बहू को प्यार कर ही नहीं सकती। निर्मल ने यह धारणा दूर कर देनी चाही, लेकिन उसके मन से दूर नहीं हुई। निर्मल बड़े मातृभक्त थे। उनकी इच्छा थी कि वह और उनकी स्त्री दोनो शांता की सेवा करें। लेकिन कुमुदिनी कुछ और चाहती थी। वह शांता पर शासन करना चाहती, स्वामी पर शासन करना चाहती, वह शासन तो करना चाहती थी, लेकिन उसे गुर न मालूम था। शांता जब कोई बात कहती, कुमुदिनी तुरंत ही झिड़ककर जवाब देती। लेकिन इतना होते हुए भी शांता के दिल पर मैल न आता। वह उसे करुणा ही समझती थी।

: निर्मल सदैव दुखी रहते। कुमुदिनी को वह हज़ार समझाते, लेकिन वह कुछ सुनती ही न थी। कुमुदिनी जानती थी कि मेरी इच्छा के आगे उन्हें झुकना पड़ेगा। लेकिन उसे नहीं मालूम था कि उसके और उनके बीच में एक मोटी रेखा पड़ रही है, जो दोनो को दो तरफ़ अलग कर देगी।

(६)

प्रभात-काल हुआ। निर्मल का मुख अनेक चिंताओं से गंभीर था। कल की घटनाएँ ज्यों-की-त्यों हृदय पर अंकित थीं। अपनी स्त्री का कटु-व्यवहार, मा की मौन व्यथा, सभी उनके हृदय-प्रांगण में द्वंद्व-युद्ध मचा रहे थे। वह अपने कर्तव्य का मार्ग ढूँढ़ते थे, लेकिन उन्हें मिलता न था।

निर्मल अपने पढ़नेवाले कमरे में आकर कुरसी पर बैठ गए, नहीं, गिर पड़े। वह अनेक चिंताओं में फिर लीन हो गए। वह सोचने लगे—"अब मैं क्या करूँ? क्या उसे विदा कर दूँ। इस समय तो यही उचित जान पड़ता है। विदा कर देना ही ठीक है। रोज़-रोज़ का झगड़ा मिटे। उसका अभिमान तो किसी तरह मिटे। प्रेम में अभिमान नहीं होता। प्रेमिका अपने प्रेमिक के लिये सब कुछ सह सकती है। कठिन-से-कठिन कार्य कर सकती है। मान-अपमान भूलकर उसी में लीन हो जाती है—यही तो है प्रेम! प्रेम-राज्य में अपनी इच्छा, अपना मान, अपना अहंकार कुछ नहीं होता। प्रेमिका की इच्छा ही अपनी इच्छा है—प्रेमिक का मान ही अपना मान है—यही तो है प्रेम! प्रेम-योग सब योगों से कठिन है। प्रेम भगवान् का सबसे बड़ा अंश है। तब क्या कुमुद मुझसे प्रेम करती है। यदि वह मुझसे प्रेम करती होती, तो क्या मेरी मा को अपनी मा न समझती। जिस तरह मैं मा का अनुगत हूँ, उसी तरह क्या वह उनकी अनुगत न होती। वह क्यों उन्हें इस तरह सताती है। बात-बात में उनका अपमान करती है। यह क्या अपना होने के लक्षण हैं?

"अच्छा, क्या मैं कुमुद को प्यार करता हूँ? हाँ, अपने से भी बढ़कर! फिर मैं क्यों नहीं उसके इच्छानुसार चलता। यदि वह मेरी मा से घृणा करती है, तो मैं क्यों नहीं करता? मेरी इच्छा उसकी इच्छा क्यों नहीं हो जाती! यही तो एक कठिन प्रश्न है? मातृ-स्नेह और पुत्र-स्नेह स्वाभाविक है। संसार में जो मनुष्य जितना जिसको चाहता है, उतना वह भी उससे प्यार किया जाता है। मैं अपनी मा का नयन-तारा हूँ, तब फिर क्यों न मैं उन्हें अपने प्राणों से भी बढ़कर चाहूँ। संसार में मा का ही प्रेम निःस्वार्थ होता है। जो लोग मातृप्रेम से वंचित हैं, वे सचमुच ही अभागे हैं। स्त्री का प्रेम वासना-पूर्ण होता है, लेकिन मातृप्रेम शुद्ध, सात्त्विक और निःस्वार्थ होता है। पुत्र चाहे जितना मा को सताए, मा तब भी उसे प्यार करेगी, समय पर उसके लिये अपनी जान भी दे देगी।

"तब कुमुद मुझसे प्रेम नहीं करती। जब दंपति में प्रेम नहीं है, तब गार्हस्थ्य जीवन का सुख कहाँ? उसे अहंकार है कि मैं ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट की लड़की हूँ। मुझसे सब कोई डरे। जहाँ बड़प्पन का भाव है, वहाँ प्रेम नहीं है। ठीक है। कुमुद मुझसे प्रेम नहीं करती। तब उसे भेज देना ही ठीक है।"

निर्मल पत्र लिखने बैठे। क्या लिखें, उनकी समझ में कुछ नहीं आया। कई पत्र लिखे, और फाड़ डाले। अंत में एक पत्र लिखा, और एक नौकर को देते हुए कहा—"इसे रामसिंह के पास ले जाओ, बोलो कि अभी-अभी इसको रायबहादुर साहब के बँगले में दे आवे। देखो, देरी न होने पावे।"

पत्र लेकर नौकर चला गया।

ठीक उसी समय शांता ने निर्मल के कमरे में प्रवेश किया। उसके एक हाथ में जल-पान का सामान था और दूसरे हाथ में वही पत्र! शांता ने आते ही कहा—"क्या बहू के मायके को चिट्ठी लिखी है?"

निर्मल—"नहीं, तुम्हारे रहते मैं घर का मालिक नहीं।"

शांता—"तो बस फिर मेरी इच्छा नहीं है कि वह यहाँ से जाय। फ़ैसला हो गया।"

निर्मल—"हाँ, फ़ैसला हो गया। अच्छा, तो मैं फिर अब जाता हूँ।"

शांता—"कहाँ?"

निर्मल—"जहाँ मेरी इच्छा होगी।"

शांता—"यह क्या बात है?"

निर्मल—"कुछ नहीं।"

शांता—"आख़िर फिर जाते कहाँ हो?"

निर्मल—"जहाँ इच्छा होगी।"

शांता—"क्या मुझे छोड़कर जाओगे!"

निर्मल चुप रहे।

शांता—"बोलो, क्यों मुझे छोड़कर जाना चाहते हो?"

निर्मल—"मैं तो नहीं चाहता, लेकिन तुम्हीं भगा रही हो।"

शांता—"मैं भगा रही हूँ?"

निर्मल—"हाँ, तुम।"

शांता—"कैसे, मैंने कब तुम्हें जाने के लिये कहा है।"

निर्मल—"बात यह है कि अब हम दोनो एक साथ नहीं रह सकते। उसको अपने पास रख लो, या मुझको। मैं अपनी आँखों से तुम्हारा अपमान नहीं देख सकता, और तुम उसको विदा नहीं करोगी। फिर दोनो बातें एक साथ कैसे संभव हैं।"

शांता—"तब इसका उपाय क्या सोचा है?"

निर्मल—"यही कि मैं रहूँ अथवा वह! तुम उसे रखने पर कटिबद्ध हो, तब फिर मैं क्यों न चला जाऊँ?"

शांता—"यही तुम्हारा धर्म है?"

निर्मल—"मेरा धर्म है कि मैं अपनी मा को हर तरह से प्रसन्न रक्खूँ।"

शांता—"फिर मेरी बहू को क्यों मेरे पास से छीने लेते हो?"

निर्मल—"इसलिये कि वह तुम्हारी सेवा-योग्य नहीं है।"

शांता—"जैसी भी हो, उसे रहने दो।"

निर्मल—"मैं तुम्हारी सेवा के लिये दूसरी बहू लाऊँगा।"

शांता—"विवाह करोगे?"

निर्मल—"हाँ, करूँगा। इसमें कुछ दोष है क्या?"

शांता—"तुम इतना बड़ा पाप करोगे?"

निर्मल—"क्या दूसरा विवाह करना पाप है?"

शांता—"हाँ, ज़रूर। स्त्री रहते दूसरा विवाह करना बड़ा भारी पाप है। ज़रा-से अपराध का इतना कठिन दंड पाप नहीं है, तो क्या है? भगवान् रामचंद्रजी ने भी सीता को त्यागकर जो महापाप किया था, उसका फल उन्हें भोगना पड़ा था।"

निर्मल—"उन्हें कौन-सा दंड मिला था?"

शांता—"क्यों वह छोटे-छोटे बालकों से परास्त नहीं हो गए। पाप ने उनके शौर्य को नष्ट कर दिया।"

निर्मल—"बस यही। मैं भी किसी बालक से हार जाऊँगा।"

शांता—"यही नहीं, उन्हें महाप्रस्थान करना पड़ा। सीता की आह ने उन्हें सदैव दुखी रक्खा। निरपराध की हाय बड़ी घातक होती है।"

निर्मल—"लेकिन मैं निरपराध को दंड नहीं दे रहा हूँ। दंड उसे दे रहा हूँ, जो हर तरह से अपराधी है।"

शांता—"तुम्हारी नज़रों में?"

निर्मल—"नहीं, संसार की नज़रों में। जो बहू सास की प्रतारणा करे, वह अपराधी नहीं है क्या?"

शांता—"बालक तो मा को भी मार दिया करते हैं, क्या वह भी अपराध है? वह अभी बालिका है।"

निर्मल—"बालिका नहीं है। उसे अहंकार है। अहंकार तो अर्जुन का नहीं रहा, तब फिर किसका रहेगा?"

इसी समय बड़े शब्द से झनझनाहट का शब्द हुआ। शांता ने तेज़ी से जाते हुए कहा—"देखूँ, हरखू की मा ने क्या गिरा दिया। कहे देती हूँ, बहू को भेजने नहीं पाओगे।"

(७)

आहत अभिमान वृश्चिक-दंशन से भी अधिक दुःखदायी होता है। अभिमान के बाद क्रोध आता है, क्योंकि अभिमान की अंतिम सीमा क्रोध है। दूध पहले शांत रहता है। उत्ताप से वह फूल उठता है। यदि अग्नि कम न की जाय, तो वह खौलने लगता और बहुत जल्द उफलाने लगता है। आँधी आने के पहले आकाश में धूल का वायु-मंडप-सा छा जाता है। प्रकृति शांत हो जाती है। किंतु थोड़ी ही देर बाद वह प्रचंड झंझावात आता है, जिससे संसार काँप उठता है। अभिमान भावी क्रोध की सूचना-मात्र है।

कुमुदिनी को मनाने कोई नहीं आया। उसके अभिमान में बड़ा भारी धक्का लगा। वह क्रुद्ध हो उठी। ठोकर मारी हुई नागिन की भाँति काटने के लिये तड़पने लगी। भूख से क्रोध की मात्रा द्विगुणित हो जाती है। कुमुदिनी ने रात में कुछ भी नहीं खाया था। सुबह भूख से कुमुदिनी का बुरा हाल था।

हरखू की मा ही इस झगड़े की जड़ थी। वह अब भी मौजूद थी। वही सुबह कुमुदिनी का जलपान लेकर आई। कुमुदिनी की भूख भाग गई। क्रोध ने उसे बल-हीन पाकर अपना दास बना लिया। संसार में देखा गया है कि जो बल-हीन होते हैं, वे ही अधिक क्रोधी होते हैं। शैतान निर्बलों को ही अपना शिकार बनाता है।

हरखू की मा ने बड़े प्रेम से कहा—"बहूजी, मेरा क़ुसूर माफ़ हो। कल रात को कुछ खाया नहीं, लो, मैं खाने को ले आई हूँ। आओ, खा लो आकर।"

हरखू की मा ने बड़ी नम्रता और विनय से कहा था। किंतु उनका असर कुमुदिनी पर उलटा हुआ। भूखी सिंहिनी के सामने शिकार हो, सिंहिनी ठहर नहीं सकती। कुमुदिनी ने तश्तरी छीन ली, और उठाकर दूर फेंक दी। शीशे की तश्तरी पत्थर पर गिरी, और टुकड़े-टुकड़े हो गई। साथ ही हरखू की मा को भी धक्का देकर कमरे के बाहर कर दिया।

बिजली क्षण-भर ही में गिरती है। पल-भर में ही सत्यानास हो जाती है, फिर दूसरे पल सब शांत हो जाता। क्षण-भर में ही सब हो गया। हरखू की मा हतबुद्धि-सी खड़ी रही। कुमुदिनी ने कब उसे धक्का देकर निकाल दिया, उसे यह भी ज्ञात न हुआ। जब शांता ने आकर पूछा—"क्या हुआ?" तब उसकी चेतना जागी। उसने कुमुदिनी की ओर देखा, फिर टूटे हुए तश्तरी के टुकड़ों की ओर और फिर शांता की ओर। उसका कंठ निर्वाक् था।

शांता ने सब दृश्य देखकर ही समझ लिया। हरखू की मा को डाँटकर कहा—"क्यों, किसने तुझसे कहा था कि नाश्ता ले जाओ। तू आजकल बहुत मनमानी करती है। जा हमारे यहाँ से। तेरा कुछ काम नहीं है।"

हरखू की मा—"मैंने क्या किया। बहूजी ने कल से कुछ खाया नहीं था, इसलिये जल्दी ही नाश्ता देने आई थी।"

कुमुदिनी—"बहू से बड़ी मुहब्बत है न? नाश्ता लेकर आई थी। मानो इन्हीं के देने से तो मैं खाऊँगी। नहीं जानती कि तुझे देखकर मेरा एक आउंस ख़ून जल जाता है। मुझे तेरी छाया से नफ़रत है, फिर तुझको कौन कहे।"



शीशे की तश्तरी पत्थर पर गिरी और टुकड़े-टुकड़े हो गई। सा
ही हरखू की मा को भी धक्का देकर कमरे के बाहर कर दिया।

(पृष्ठ-संख्या ९

शांता—"हरखू की मा, तुम्हारा मेरे यहाँ कुछ काम नहीं है। बस, जाओ।"

हरखू की मा चुपचाप चली गई। उसकी चेतना अभी तक पूर्णतया वापस नहीं आई थी। कोई अति भीषण दृश्य देखने के पश्चात् मनुष्य कई क्षण के लिये तो बिलकुल निरचेत हो जाता है, किंतु उसके बाद भी कुछ काल तक अर्ध-मोहित-सा रहता है। कोई अचानक भीषण घटना या दृश्य से मस्तिष्क में एक तूफ़ान पैदा होता है। शिरा-तंतुओं में रक्त का संचार इतने वेग से होने लगता है कि मनुष्य की ज्ञानेंद्रिय निश्चेष्ट हो जाती है। जिस प्रकार जल की भँवर में कोई वस्तु पड़ जाने से वह अपनी सब क्रिया छोड़कर केवल जल के साथ नाचने लगती है, उसी प्रकार शिरा-तंतुओं के भँवर में पड़कर मनुष्य का ज्ञान भी अपना धर्म छोड़कर उसका खिलौना हो जाता है। हरखू की मा अर्धसुप्त अवस्था में चली गई। उसे इतना मालूम हुआ कि शांता उसे जाने को कहती हैं।

शांता—"बहू, क्या तुम स्नानादि से निवृत्त हो गईं ?"

शांता के स्वर में ममता थी, और घबराहट थी।

कुमुदिनी ने कहा—"आपसे मतलब।"

शांता यह उत्तर सुनकर तलफ उठी, लेकिन अपनी वेदना अपने ही मन में दबाकर कहा—"यह कैसी बात तुम कहती हो बहू ! तुमको हमसे मतलब न होगा, और हमको तुमसे मतलब न होगा, तो क्या कोई तीसरे से मतलब होगा ?"

कुमुदिनी ने अपने कमरे के दरवाज़े बंद करते हुए कहा—"जाओ-जाओ, सुबह-सुबह लड़ने के लिये तैयार हो आईं। आज-भर की और देरी है, देखूँगी, कल से किससे लड़ोगी।"

कुमुदिनी ने सशब्द अपने कमरे के किंवाड़े बंद कर लिए। शांता बाहर खड़ी रही। कुछ देर तक सोचती रही, और फिर धीरे-धीरे चली गई।

थोड़ी देर बाद कुमुदिनी ने किवाड़ खोले, और एक पत्र लिखने बैठ गई। पत्र अपने पिता को लिखा। कुमुदिनी पत्र लिख ही रही थी कि किसी कार्य-वश निर्मल उस कमरे में आए। कुमुदिनी ने उनकी तरफ़ कुछ ध्यान नहीं दिया। उसे विश्वास था कि शायद वह अब उसे मनाने आए हैं। उपन्यास की एक नायिका का चित्र उसके सामने आ गया। वह अपना सिर ज़रा टेढ़ा करके गर्व से बैठ गई। उसने कनखियों से देखा कि निर्मल उसकी ओर देख रहे हैं। उसका हृदय धड़कने लगा। श्वास वेग से प्रवाहित होने लगी। वह और अकड़कर बैठ गई।

निर्मल उसकी ओर बढ़े। आशा मुस्किराई और बोली—"लो, तुम्हारी कामना पूरी होनेवाली है। तैयार हो जाओ।" कुमुदिनी बड़े वेग से पत्र लिखने लगी।

धीरे-धीरे निर्मल कुमुदिनी की कुरसी के पास आकर खड़े हो गए, कुमुदिनी लिखने में ऐसी संलग्न रही, मानो वह जानती नहीं कि कोई उसके पीछे खड़ा हुआ उसका पत्र पढ़ रहा है।

कुमुदिनी लिख रही थी—"बाबूजी, मैं आपको क्या लिखूँ, लिखते हुए कलेजा काँपता है। क़लम चलती ही नहीं। यह समझिएगा कि मेरे ऊपर आफ़त आई है, हाँ, आफ़त तो आई है, लेकिन वह आपसे बहुत संबंध रखती है। बाबूजी, यहाँ पर आपकी शान के ख़िलाफ़ कई लोग बहुत अनुचित-अनुचित बातें कहा करते हैं। मैं कहाँ तक सहूँ, बाबूजी, मुझसे अब नहीं सहा जाता। आप मुझे......"

निर्मल ने टोंककर कहा—"क्यों, यहाँ पर कौन उनकी शान के ख़िलाफ़ बातें कहता है?"

कुमुदिनी चौंक पड़ी। उसने मुँह फिराकर पीछे देखा, और घृणा-मिश्रित स्वर में कहा—"आप अपने को शिक्षित कहते हैं। दूसरे का पत्र यों छिपकर पढ़ना, शिक्षित होने का अवश्य सर्वोत्कृष्ट प्रमाण है।"

निर्मल—"मुझे यह न मालूम था कि आप पत्र लिख रही हैं, नहीं तो मैं आपका पत्र कभी नहीं पढ़ता। इसके अतिरिक्त आप झूठी बातें लिख रही हैं।"

कुमुदिनी ने तड़पकर कहा—"झूठी बातें लिख रही हूँ। आप उनका अपमान नहीं करते। आपकी मा उनका अपमान नहीं करतीं। यहीं तक बस नहीं, आपके नौकर भी कहने से बाज़ नहीं आते।"

निर्मल—"ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट, रायबहादुर को, ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट और रायबहादुर कहना अगर गाली है, तो बेशक हम लोग उनका अपमान करते हैं!"

कुमुदिनी—"व्यंग्य और प्रशंसा का भेद मैं समझ सकती हूँ। इतनी बेवक़ूफ़ नहीं हूँ।"

निर्मल—"ख़ैर, आप लिख सकती हैं। क्षमा कीजिएगा। आप पत्र पूरा कर लीजिए। मैं जाता हूँ। हाँ, तुमने तश्तरी क्यों तोड़ डाली? जानती हो, वह कितनी क़ीमती थी।"

कुमुदिनी—"हाँ, कल ही आपके यहाँ वैसी बीस तश्तरियाँ भिजवा दूँगी। आज बाबूजी को लिख रही हूँ, कल वे लोग लिवाने के लिये आ जायँगे।"

निर्मल बग़ैर कुछ उत्तर दिए कमरे से बाहर हो गए।

आशा रो पड़ी और बोली—"हाय कमबख़्त! तूने फिर सब बिगाड़ दिया। अवसर हाथ में आया था, लेकिन उसका दुरुपयोग करके नष्ट कर दिया।"

कुमुदिनी कुछ देर तक सोचती रही। फिर पत्र लिखने लगी।

(८)

"ल ल तू!"

ललतू ने आकर कहा—"क्या है बाबूजी।"

रायबहादुर बाबू माधवचंद्र ने कहा—"छोटे बाबू को यहाँ भेज दे।"

रायबहादुर बाबू माधवचंद्र इलाहाबाद के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं। आज उनकी विशेष रूप से भ्रुकुटियाँ चढ़ी हुई थीं। वह बार-बार एक ख़त की ओर देखते और बार-बार द्वार की ओर देखते थे। ज्यों-ज्यों वह पत्र देखते, त्यों-त्यों उनके मुख का रंग विवर्ण हो जाता था। वह अधीरता से अपने पुत्र के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। पुत्र का नाम था मुरारीशंकर।

द्वार पर एक सौम्य मूर्ति दिखाई दी, युवक के मुख पर एक अनुपम गंभीरता और सौम्य था। बाबू माधवचंद्र फिर से पत्र पढ़ रहे थे। उन्होंने युवक का आगमन नहीं जाना।

युवक ने धीमे-शांत स्वर में पूछा—"बाबूजी, आपने बुलाया था?"

बाबू माधवचंद्र ने सिर उठाकर युवक की ओर देखा और कहा—"हाँ, देखो, जिनकी तुम बड़ी तारीफ़ किया करते थे, उन्हीं का अपनी बहन के साथ, और मेरे साथ क्या व्यवहार है, ज़रा पढ़ो तो। आज अभी-अभी 'रानी' का यह पत्र आया है।"

मुरारीशंकर ने अपने पिता की ओर देखा और कहा—"क्या निर्मल बाबू के संबंध में आप कहते हैं।"

बाबू माधवचंद्र ने मेज़ पर अधीरता से हाथ पटककर कहा—"हाँ, मैं उन्हीं की बात कह रहा हूँ। मैंने बड़ी भूल नहीं, बड़ा भारी पाप किया, जो उस गँवार के हाथ अपना बहुमूल्य रत्न दिया। यह सब आपके ही परामर्श का फल है।"

कहते-कहते राय माधवचंद्र ने कुमुदिनी का पत्र मुरारी के सामने फेंक दिया। मुरारी ने शांति-पूर्वक पत्र उठाकर पढ़ना आरंभ किया। पत्र इस प्रकार था—

पूजनीय पिताजी के चरणों में

आपकी प्यारी रानी का सादर प्रणाम

बाबूजी, मैं आपको क्या लिखूँ। लिखते हुए कलेजा काँपता है।

क़लम चलती ही नहीं। यह समझिए कि मेरे ऊपर आफ़त आई है। हाँ, आफ़त तो आई है, लेकिन वह आपसे बहुत संबंध रखती है। बाबूजी, यहाँ पर आपकी शान के ख़िलाफ़ सब लोग बड़ी-बड़ी अनुचित बातें कहा करते हैं, मैं कहाँ तक सहूँ। बाबूजी, मुझसे अब नहीं सहा जाता। आप मुझे बुलवा लीजिए। जैसे भी हो, और जितनी जल्दी हो।

बाबूजी, क्या यहाँ का कुछ हाल लिखना पड़ेगा, क्या मैं उन शब्दों को दुहराऊँ, जिनसे आपका अपमान होता है। पुत्री के मुख से वह शोभा नहीं देते, और वह लिख भी नहीं सकती। किंतु बग़ैर लिखे आप जानेंगे भी कैसे। बाबूजी, मैं उन शब्दों को लिखती हूँ, लेकिन मजबूरी के साथ। आप क्षमा करें।

बाबूजी, यहाँ पर सभी आपका अपमान करते हैं, नौकर से लेकर मालिक तक। सासजी और उनके पुत्र तो, आपके संबंध में, ऐसी-ऐसी गंदी बातें कहते हैं, जो कही नहीं जा सकतीं। मेरी क़लम लिखते वक़्त रुक जाती है। बाबूजी, मैं आपसे एक प्रश्न करती हूँ। वह यह है कि आप रायबहादुर क्यों हुए, आप ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट क्यों हुए। यही आपका मूल दोष है। यही आपका सबसे बड़ा भारी अपराध है। इस घर में इसके लिये क्षमा नहीं है। ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट होना एक साधारण पाप है, लेकिन रायबहादुर होना शायद गुरुतम पाप है। मुझे अपने अपमान की, भोजन न मिलने की, रात-दिन भूखे रहने की तनिक भी परवा नहीं है, तनिक भी चिंता नहीं है। मैं ख़ुशी से पेट की यंत्रणा बरदाश्त कर लेती हूँ, हँसते हुए मुख से उनकी गालियाँ और मार बरदाश्त कर लेती हूँ, लेकिन बाबूजी, मैं आपका अपमान नहीं बरदाश्त करती। बस, यही मेरा अपराध है, और जो दंड इस अपराध पर दिया जाता है, वह अकथनीय है। उन्हें लिखकर मैं आपकी आत्मा को कष्ट देना नहीं चाहती।

बाबूजी, मैं तो धीरे-धीरे मृत्यु की ओर जा रही हूँ। निरंतर की भूख ने, रात-दिन की मार ने और गालियों की बौछार ने मुझे कहीं का नहीं रक्खा है। शरीर अत्यंत दुर्बल और कृश हो गया। न-मालूम किस वक्त प्राण निकल जायँ, लेकिन मरने के पहले आपसे एक प्रार्थना है, और मेरी उत्कट अभिलाषा है कि मैं आपको देखकर मरूँ। मरने से पहले कम-से-कम एक बार तो आपको देख लूँ। क्या यह तुच्छ अभिलाषा अपनी 'रानी' की अपूर्ण रक्खेंगे। आपसे यह आशा तो नहीं है। और अधिक क्या लिखूँ। हाथ काँपता है और अब लिखा नहीं जाता। क्षमा कीजिए।

आपकी प्यारी

रानी

पत्र मुरारी के हाथों से गिर गया। वह चुपचाप भूमि की ओर देखने लगे।

राय माधवचंद्र ने कहा—"देखा तुमने अपने आदरणीय, प्रशंस-नीय का व्यवहार। उस मूर्ख गँवार को बड़ा अभिमान है। मैं उसका घमंड चूर करूँगा। उसकी सारी शान धूल में मिला दूँगा। बचाजी समझते हैं कि मैं बड़ा विद्वान् हूँ, मेरा भी बड़ा यश-मान है, लेकिन नहीं जानते कि मेरे एक ही इशारे से वह अपना मुँह दिखाने के क़ाबिल न रहेंगे। और मैं उसी दिन कहूँगा, मैं रायबहादुर इसलिये हूँ, आनरेरी मैजिस्ट्रेट यह कर सकता है। मुरारी, इस अपमान का बदला लेना ही पड़ेगा। जाओ, अभी जाकर रानी को लिवा लाओ। अगर न भेजे, तो मैं उस गधे के नाम वारंट निकालूँगा, उसे पकड़कर हवालात में बंद करवाऊँगा। मेरी रानी को मारना, भूखी रखना, मेरा अपमान करना, सब निकल जायगा। मैं समझता था कि युवक होनहार है, मेरे मित्र का लड़का है, रानी का उपयुक्त स्वामी होने के लायक़ है, लेकिन उसका चरित्र न देखकर जो बड़ी भारी भूल की है, उसका

प्रतिकार केवल एक है, दूसरा नहीं। वही करना पड़ेगा। मुरारी, जाओ, तुम क्या सुन रहे हो। रानी का पत्र पढ़कर भी तुम्हारी रगों में ख़ून का दौरान नहीं हुआ। तुम्हारा ख़ून उबल नहीं उठा। तुम्हारे हृदय में बदले की आग भभक नहीं उठी। धिक्कार है तुम्हारी आत्मा को, धिक्कार है तुम्हारे जन्म को। जिस मनुष्य को आत्माभिमान प्यारा नहीं, वह संसार में रहने के लिये उपयुक्त नहीं है। बेहतर होगा कि अपने गले में पत्थर बाँधकर डूब मरे। उसका मुख देखना पाप है। तुममें बुज़दिली कब से आई। याद रहे, तुम मेरे लड़के हो।"

माधव बाबू ज्यों-ज्यों कह रहे थे, त्यों-त्यों उनका टैंपरेचर बढ़ रहा था। मुख लाल था। बात करते थूक के फुहारे उड़ते थे। मेज़ पर बार-बार हाथ पटकते थे, और सक्रोध मुरारी की ओर देखते थे। मुरारी धीरे-धीरे वहाँ से चले गए।

माधव बाबू कमरे में टहलने लगे। क्रोध से उनकी बुरी दशा थी। सबसे अधिक क्रोध उनका निर्मल पर था। कुमुदिनी को वह प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। कुमुदिनी के पैदा होते ही उनके घर में लक्ष्मी ने कृपा आरंभ की थी। इसके अतिरिक्त कुमुदिनी के विचार उनसे बहुत मिलते थे। कुमुदिनी अपने पिता के स्वभाव की ठीक दूसरी प्रतिमूर्ति थी। वही दंभ, वही अभिमान, वही प्रखरता, सब कुछ उसके स्वभाव में वर्तमान थी। इसीलिये माधव बाबू कुमुदिनी को और अधिक चाहते थे। इसके विपरीत मुरारी में बहुत कुछ अंतर था। गांभीर्य और सौम्य, ये उनके दो बड़े भारी गुण थे। निर्मल बाबू पर उनकी विशेष रूप से भक्ति थी। उनके सौजन्य, उनके स्वभाव, उनके गुणों पर अनुरक्त थे। मुरारी की शांति और सरलता माधव बाबू को पसंद न थी।

शांति को वह बुज़दिली समझते थे और सरलता को बेवक़ूफ़ी। इतना होते हुए भी पिता के स्वभाव का असर उन पर कुछ पड़ा था।

तर्क करने में वह कभी बाज़ न आते थे। सत्य के लिये वह अपनी आवाज़ कभी नीची न करते थे।

माधव बाबू टहलने लगे। लेकिन शांति और धैर्य तो उनसे कोसों दूर था।

कुमुदिनी के शब्दों ने माधव बाबू के उस मर्मस्थल पर आघात किया था, जो हृदय का सबसे कोमल स्थान है और जिसे संसार कहता है अभिमान अथवा सम्मान। कुमुदिनी के शब्द बार-बार उनके हृदय में विप्लव करने की चेष्टा करते थे। उनकी दशा पींजड़े में बंद साँप की-सी थी, जो काटने के लिये यत्न करता था, लेकिन काट नहीं सकता था। माधव बाबू ठहर गए। कुरसी पर आकर बैठ गए। द्वार की ओर देखा। फिर सोचने लगे। थोड़ी देर बाद द्वार की ओर फिर देखा और पुकारा—"ललतू।"

ललतू को मालूम था कि उसके मालिक आज गुस्सा हैं। मुरारी के साथ जो बातें हुई थीं, ललतू ने सब सुना था। अधीरता में कमरे में घूमना भी उससे छिपा नहीं था। ललतू उनका सबसे पुराना नौकर था। यों तो रोज़ ही उनके यहाँ नौकर बदले जाते थे, लेकिन अगर कोई ठहर सका था, तो वह ललतू था। ललतू ने बड़े साहस से रायबहादुर साहब के आघात-प्रतिघात सहे थे, और अभी तक अपनी नौकरी पर डटा हुआ था। इसका कारण यह था कि एक तो ख़ास अर्दली होने के सबब से उसे बहुत आमदनी थी, और उसका रोआब भी सर्वत्र था। ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट के अर्दली होने के कारण वह सब चीज़ों का दाम आधा दिया करता था। सब लोग उसका आदर करते थे, और उससे डरते भी थे। नगर-भर माधव बाबू के स्वभाव से परिचित था।

ललतू काँपता हुआ हाथ जोड़कर खड़ा हो गया।

माधव बाबू ललतू को पुकार फिर अपने विचारों में तल्लीन हो गए

थे। ललतू की ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। बेचारे ललतू में भी इतना साहस न था कि वह उन्हें अपना आगमन जना दे।

वह हाथ जोड़े आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था।

माधव बाबू ने फिर सिर उठाया। सामने ललतू खड़ा था।

उन्होंने ललतू से पूछा—"क्यों खड़ा है तू?"

ललतू ने बड़ी आजिज़ी से कहा—"हुज़ूर आपने ही तो बुलाया था।"

माधव बाबू को याद न आया कि क्यों उन्होंने उसे बुलाया था। वह कुछ सोचने लगे।

ललतू में अब हिम्मत आ गई। उसने धीमे स्वर में विनय-पूर्वक पूछा—"हुज़ूर का क्या हुक्म है?"

माधव बाबू गरजकर बोले—"हुज़ूर तुम्हारे बाप के नौकर हैं, जो जल्दी बतावें। नालायक़, गधा कहीं का। मारे बेंतों के खाल निकलवा लूँगा। सुअर कहीं का।"

ललतू की उठती हुई हिम्मत फिर पस्त हो गई। साहस ने जवाब दे दिया। बेचारा हाथ बाँधे खड़ा रहा।

माधव बाबू ने कहा—"जा, एक गिलास पानी ले आ।"

ललतू अपनी ख़ैर मनाता हुआ चला गया।

थोड़ी देर बाद ललतू ने लेमनेट की एक बोतल और गिलास लाकर रख दिया।

ललतू ने पूछा—"हुज़ूर, लेमनेट खोल दूँ। पेस्टनजी ने आज के पानी की बड़ी तारीफ़ की है। हुक्म हो, तो खोल दूँ।"

माधव बाबू ने गुस्से से कहा—"अबे हुक्म के बच्चे, मैंने पानी माँगा था कि लेमनेट। अगर मेरी तबियत होती, तो क्या मैं लेमनेट न माँग लेता। बदतमीज़, शोख़, बेअदब, बदमाश।"

हवन करते ललतू का हाथ जल गया। वह उलटे पैर पानी लेने चला गया।

शीशे के गिलास में पानी लाकर मेज़ पर रख दिया। माधव बाबू ने शीतल जल पीकर अपने उबलते हुए क्रोध को शांत करना चाहा, किंतु ललतू के अभाग्य से पानी में एक चींटी अथाह जल-राशि को तैरकर पार करने का यत्न कर रही थी। माधव बाबू का क्रोध ठंडा होना तो दूर रहा, वरन् और बढ़ गया। ग़ुस्से से गिलास उठाकर ललतू के मुँह पर फ़ोंक दिया।

ललतू के मुँह से एक आह तक न निकली। ओठ कट गया, और नाक से ख़ून गिरने लगा। लेकिन उसने तनिक भी परवा नहीं की। बड़ी शांति से, जैसे कुछ हुआ ही नहीं, बिखरे हुए काँच के टुकड़े बीनने लगा।

बीनकर उलटे पैर चला गया, और थोड़ी देर में दूसरे गिलास में पानी लाकर रख दिया। ख़ून अब भी नाक से एक-एक बूँद करके टपक रहा था। ललतू को असह्य पीड़ा हो रही थी, लेकिन मन-ही-मन वह उसे बरदाश्त कर रहा था।

माधव बाबू को तनिक भी पश्चात्ताप न हुआ। ज़रा भी सहानुभूति प्रकट नहीं की। चुपचाप पानी पी लिया। पानी पीते ही उनकी आत्मा कुछ शांत हुई। उन्होंने जेब से एक रुपया निकालकर ललतू की ओर फेंकते हुए कहा—"जा, अस्पताल से दवा लाकर अपनी नाक में लगा। अगर फिर कभी पानी देखकर न लाया, तो बदमाश, तेरी खाल ही निकाल लूँगा। इस मरतबे तो माफ़ करता हूँ।"

ललतू ने रुपया उठाया। सलाम किया, और मुस्किराता हुआ चला गया। रौप्य देवता को देखते ही उसका सारा दर्द काफ़ूर हो गया।

(६)

कुमुदिनी अपने पिता के घर चली आई। मुरारी उसी दिन आकर उसे लिवा ले गए। शांता ने बहुत आपत्ति की, लेकिन निर्मल ने कुछ नहीं सुना। जिस समय कुमुदिनी जा रही थी, शांता ने मलीन

हँसी हँसकर कहा—"जाती तो हो बेटी ! लेकिन अपनी बूढ़ी मा को न भूल जाना । तुम्हें भेजने में वही दुःख हो रहा है, जो अपने गर्भ की पुत्री के भेजने में होता है। मुझे दुःख इसी बात का रहेगा कि तुम मेरे ही कारण जा रही हो । बहू, जो कुछ भी मुझसे अपराध बन पड़ा हो, जाने या बेजाने, उन्हें माफ़ करना ।"

कहते-कहते शांता का गला रुँध गया । आँसू छलछला आए, लेकिन कुमुदिनी के दिल पर ज़रा भी मैल न आया । उसने मुस्किराती हुई नज़रों से अपनी सास की ओर देखा, और अपना मुख फेर लिया ।

जाते समय उसने अपनी सास को प्रणाम भी नहीं किया । गर्व से मस्तक ऊँचा किए वह चली गई । निर्मल से भी साक्षात् करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी । वह बल खाती हुई मोटर पर जाकर बैठ गई ।

निर्मल बाहर के कमरे में बैठे थे । मुख गंभीर था । मन उद्विग्न था । बार-बार सिर उठाकर खिड़की से बाहर देखते थे । वह बार-बार कमरे के द्वार की ओर भी देखते, लेकिन उनसे मिलने कोई नहीं आया । उन्हें आशा थी कि कोई उनसे मिलने आवेगा । परंतु कुमुदिनी नहीं आई । कुमुदिनी मोटर पर आकर बैठ गई । निर्मल खिड़की से उसे देखने लगे, लेकिन उसने अपना मुख दूसरी ओर घुमा लिया । कुमुदिनी की बग़ल में हीरा बैठा था । वह उत्सुकता से मोटर के बाहर सिर निकालकर देख रहा था । निर्मल को देखकर उनके पास जाने के लिये छटपटाने लगा, किंतु कुमुदिनी उसे पकड़े हुए थी, हीरा जब अपने प्रयास में सफल न हो सका, वह भूकने लगा । कुमुदिनी ने ज़ोर से उसके एक चपत जमाई । बेचारा चुप हो गया, और दुखित दृष्टि से उनकी ओर देखता रहा ।

कमरे के अंदर मुरारी ने आकर कहा—"भाई साहब, तो मैं अब जाता हूँ ।"

कुमुदिनी ने अपने मन से पूछा—"यह जो कुछ मैंने अभी देखा, क्या वह ठीक है। क्या वह सचमुच आँखें पोछ रहे थे?"

मन ने उत्तर दिया—"तुम्हें वह प्राणों से भी अधिक चाहते हैं।"

कुमुदिनी—"अगर चाहते होते, तो क्या इस तरह भेज देते?"

मन—"तुम तो स्वयं चली आईं। उन्होंने क्या कहा था?"

कुमुदिनी का हृदय चिंतित था। उसका सारा अभिमान, सब हर्ष न-मालूम कहाँ छिप गया। मुरारी भी चुप थे। वह भी विचारों में निमग्न थे। कुमुदिनी की सारी कथा उनके लिये एक पहेली थी। वह क्या निर्धारित करें, कुछ जान न सके। संसार में कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं, जो स्वयं कुछ नहीं सोचते-विचारते, जैसी घटना होती है, वैसा ही सोचने लगते हैं। वे अपनी राय घटनाओं पर बनाया करते हैं। मुरारी भी उन्हीं में से एक थे। पहले उन्होंने कुमुदिनी के पत्र पर अपनी धारणा बनाई, और फिर यहाँ आकर जो कुछ देखा, उस पर वह अब विचार कर रहे थे। कुमुदिनी पीछे की ओर देख रही थी। उत्सुक दृष्टि से निर्मल की उच्च अट्टालिका की ओर देखती रही। वह तब तक देखती रही, जब तक दिखाई देती रही। जब दृष्टि बहिर्भूत हो गई, वह अपने विचारों में मग्न हो गई।

निर्मल धीरे-धीरे खिड़की के पास से लौटे। वह अपने हृदय में किसी का अभाव मालूम करने लगे। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा, मानो कोई चीज़ खो गई है। वह अपनी कुरसी पर बैठ गए। सामने एक मासिक पत्र पड़ा हुआ था। उसे पढ़ने लगे। एक लाइन पढ़ी; दो लाइन पढ़ी, लेकिन उसी बीच में उन्हें कुमुदिनी की याद आ गई। वह सोचने लगे—"देखो, किस तरह चली गई। ज़रा मुझसे मिलने भी नहीं आई? अच्छा, वह क्यों आवे, मैं ही क्यों नहीं गया। मुझे भी तो जाना उचित था। मैं ही जाकर उससे मिल आता। अगर मैं जाता, तो क्या उसमें मेरा अपमान था? फिर मैं गया क्यों

नहीं? अच्छा, उसको भी तो आना उचित था। वह क्यों नहीं आई। वह आने में सकुचाती होगी। मैं दो रोज़ उससे बोला नहीं, फिर वह कैसे आती? इसमें तो मेरा ही दोष है? कम-से-कम अंतिम बार मुझे मिल ही आना था।

"क्या वह मुझे प्यार करती है? यह प्रश्न क्यों उठता है? कौन स्त्री अपने पति को प्यार नहीं करती? हाँ, आजकल के समय में जब से पश्चिमीय हवा यहाँ भी बहने लगी, तब से यहाँ की स्त्रियाँ भी वैसी ही होने लगीं। वे बराबरी का दावा करती हैं। बराबर हैं भी तो, बल्कि वे श्रेष्ठ हैं। हमारे भारत में तो स्त्री को ही सर्वोच्च आसन दिया है। स्त्री के बिना तो कोई भी धर्म-कर्म नहीं हो सकता। फिर मेरी कुमुदिनी मुझसे श्रेष्ठ है? हाँ, अवश्य है। किंतु वह स्त्री होने से श्रेष्ठ है, लेकिन कुमुद होकर नहीं। कुमुद क्या वैसी स्त्री है, जैसी होनी चाहिए? जिनके लिये भारत सर्वोच्च आसन देता है। कहना पड़ेगा, नहीं है। कुमुद में कौन-कौन-से दोष हैं? सबसे बड़ा दोष है कि वह अपना कर्तव्य नहीं जानती। उसमें रूप है, गुण है, सौंदर्य है, महानता है, लेकिन है क्या नहीं? शील और सौजन्य, भक्ति और प्रेम, सेवा और सत्कार। ये ही गुण तो स्त्री को उस ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करते हैं, जिसके समक्ष सभी मनुष्यों को झुकना पड़ता है। जिनके कारण हम उन्हें अपने से ऊँचा मानते हैं। इनमें से क्या एक भी गुण उसमें है? नहीं। उसमें अभिमान है, अहंकार है, और गर्व है। मैं मानता हूँ कि इनका भी मनुष्य में होना आवश्यक है, लेकिन यदि ये एक ही सीमा के अंदर रहें। एक हद तक तो ये अमृत हैं, लेकिन जहाँ सीमा उल्लंघन की, फिर ज़हर हो जाते हैं॥ कुमुद में ये तीनों सीमा के बाहर हो गए हैं।

"मैं क्या उसे नहीं चाहता? कौन कहता है? वह आकर देखे कि मेरे हृदय में उसके ही प्रेम की लहरें उठ रही हैं। मैं उसकी

पूजा करता हूँ। उसे अपने प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ। मेरी पूजा, मेरा पाठ, मेरा ध्यान, सब वही है। किंतु भेद यही है कि मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ और वह नहीं समझती। मेरा कुछ कर्तव्य तो अपनी मा के प्रति भी है, उसका भी कुछ कर्तव्य है, लेकिन वह करती नहीं। वह न करे, लेकिन वह तो उनका अपमान करती है। इसका पाप किसके सिर जाता है? मेरे सिर। मेरी मा का जो आपमान करे, उसका मैं आदर करूँ। यह असंभव है।

"कुमुद को मैंने बहुत समझाया, लेकिन उसने कभी मेरे कहने पर ध्यान नहीं दिया। हारकर तब यह उपाय अवलंबन करना पड़ा। क्या अब भी वह न सुधरेगी? और यदि न सुधरी, तब? तब मैं भी इसी तरह जीवन व्यतीत कर दूँगा। मा की सेवा करते-करते अपना जीवन सफल करूँगा। श्रवण ने सारा जीवन माता-पिता की सेवा में व्यतीत कर दिया। तब मैं क्यों नहीं कर सकता।

"क्या कुमुद मुझे प्यार करती है? शायद नहीं। यदि उसका प्रेम है, तो आत्मिक नहीं है। उसकी आत्मा मेरी आत्मा से प्रेम नहीं करती। यदि करती होती, तो यह मतभेद न होता। यदि कुमुद का मुझसे प्रेम होता, तो वह वही करती, जो मैं कहता। उसे वही वस्तु प्रिय होती, जो मुझे होती। उसे वे ही मनुष्य प्यारे होते, जो मुझे प्यारे होते। उन्हीं को शत्रु-भाव से, घृणा से, तिरस्कार से, द्वेष से देखती, जिनको मैं देखता। यदि वह अहं छोड़कर मुझमें लीन हो गई होती, तो हममें और उसमें भेद कैसा रहता। किंतु यह मतभेद है, फिर कुमुदिनी मुझसे प्रेम नहीं करती।"

निर्मल ने अपना सिर उठाया। सामने ही कुमुदिनी का चित्र टँगा हुआ था। चित्र में कुमुद विवाह-वेष में थी। चित्र रँगा हुआ था। सुंदरता की आभा चारो ओर फूट-फूटकर निकल रही थी। मुख पर एक अद्भुत लज्जा, हर्ष, प्रसन्नता, संकोच और सरलता का भाव था। आँखें

कुछ झुकी हुईं थीं और मुख पर भुवन-मोहिनी मुस्कान थी। मस्तक पर केसरिया तिलक था और सिर पर मौरी बँधी हुई थी। घूँघट की ओट से सिंदूर भी झाँक रहा था। ज़री की बसंती साड़ी का एक सिरा उसके पैर चूम रहा था। गले में पड़े हुए हीरे के हार की आभा बाहर निकल रही थी और वक्ष-भाग कुछ उन्नत देख पड़ता था। एक हाथ कुरसी पर था, और दूसरा कुछ उठा हुआ वक्ष पर था। भुजा-मूल पर गुलाबी ब्लाउज़ था और मणिबंध पर पीला सूत बँधा हुआ था। पैरों में स्लीपर होने के कारण उसकी उँगलियाँ न दिखाई देती थीं। कुमुदिनी एक भुवन-मोहन वेष में खड़ी थी और वास्तव में एक अद्भुत सुंदरी जान पड़ती थी।

निर्मल उस चित्र के पास आकर खड़े हो गए। आज चित्र में एक नूतनता थी। एक अद्भुत सौंदर्य था, जो उन्होंने कभी नहीं देखा था। वह सोचने लगे कि वास्तव में क्या कुमुदिनी ऐसी ही सुंदरी थी। ठीक है, वस्तु खो जाने पर ही उसका मूल्य मालूम होता है।

निर्मल चित्र देख रहे थे। वह देखने में तल्लीन थे। उन्हें न मालूम हुआ कि शांता द्वार पर खड़ी है। शांता ने देखा और मन-ही-मन मुस्किराई। निर्मल ने तब भी न जाना कि उनकी मा खड़ी है। शांता भी चुप होकर निर्मल को, और फिर कुमुदिनी का चित्र देखने लगी।

अंत में शांता ने द्वार ज़रा हिला दिया। शब्द से निर्मल की तल्लीनता दूर हो गई। वह चौंके और अपराधी की दृष्टि से द्वार की ओर देखा। द्वार पर मा खड़ी थी। वह भकपका गए। वह धीरे-धीरे अपनी कुरसी के पास आकर खड़े हो गए।

शांता ने कहा—"क्यों, अब तो तुम प्रसन्न हो?"

निर्मल अपने मन-ही-मन कहे जा रहे थे। वह सोच रहे थे कि मा ने उसका चित्र देखते देख लिया। वह क्या कहेंगी। अपने मन में क्या

समझेंगी। मुझे वगुला-भगत ही तो समझेंगी। वह चुप रहे। शब्द ही मुँह से न निकला।

शांता ने फिर कहा—"वहू को भेजकर अब तो प्रसन्न हो। भला यह कहो, तुमने उसको क्यों मुझसे छीन लिया।"

निर्मल ने साहस एकत्र करके अपनी दृष्टि नीचे किए कहा—"मैंने छीन लिया! वह तो अपनी ख़ुशी से गई है। उसी ने अपने पिता को लिखा था कि हमें बुलवा लो। मेरा क्या दोष है।"

शांता—"अच्छा, लेकिन एक बात है, वहू को जल्दी लाना पड़ेगा। दो-ही-तीन महीने बाद लिवा लाना।"

निर्मल—"अच्छा, देखा जायगा। यह तो कहो, खाने को कुछ बना है। भूख लगी है।"

शांता—"उसी के लिये बुलाने आई थी। चलो।"

निर्मल—"तुम चलो, मैं आता हूँ। ज़रा एक-आध तसवीरें ख़राब हो गई हैं, उन्हें ठीक करना होगा।"

शांता मन-ही-मन हँसी और चली गई। निर्मल की जान में जान आई। निर्मल ने फिर चित्र की ओर देखा और वह भी चले गए।

(१०)

माधव बाबू ने प्रेम से पुकारा—"रानी!"

रानी आज्ञाकारिणी बालिका की भाँति सिर झुकाए आकर खड़ी हो गई।

माधव बाबू ने, रानी को ऊपर से नीचे तक देखने के बाद, कहा—"तू ठीक कहती थी, तू बहुत दुबली हो गई है। क्यों, क्या उन लोगों ने तुझे बहुत दुख दिया है?"

स्नेहमय पिता की आँखों में रानी अवश्य दुबली देख पड़ती थी।

रानी ने सिर उठाकर मर्माहत दृष्टि से अपने पिता की ओर देखा और फिर सिर झुका लिया।

माधव बाबू ने फिर कहा—"तू बोलती क्यों नहीं। वे लोग मेरा भी अपमान करते थे?"

कुमुदिनी ने अब की बार कहा—"हाँ।"

माधव बाबू—"क्या कहते थे?"

कुमुदिनी क्या उत्तर दे। उसका हृदय उसे धिक्कारने लगा।

माधव बाबू—"बोलो, क्या कहते थे?"

रानी का मुख लाल हो गया। उसने धीमे स्वर में कहा—"वे बातें आपके सामने नहीं कह सकती।"

माधव बाबू—"क्या गालियाँ देते थे?"

रानी ने हृदय के कंपन को दबाकर कहा—"गालियाँ तो अच्छी होती हैं।"

माधव बाबू ने केवल कहा—"हूँ!" और फिर सोचने लगे। धीरे-धीरे उनकी भौंहों पर बल पड़ रहे थे। आँखें छोटी हुई जा रही थीं।

थोड़ी देर बाद कहा—"मैं सब समझ गया। अच्छा, वे क्या मेरी रायबहादुरी और मेरे उच्च पद के लिये भी कुछ कहते थे?"

रानी ने पिता की ओर देखा और कहा—"मैं अभी समझी नहीं।"

माधव बाबू—"मैं कहता हूँ कि क्या वे सदैव मेरे संबंध में व्यंग्य बोलते थे?"

रानी ने पिता की ओर देखते हुए कहा—"जी हाँ, हमेशा।"

माधव बाबू—"तुमने अपने पत्र में लिखा था कि 'बाबूजी, तुम रायबहादुर क्यों हुए?' इसका क्या मतलब था रानी?"

रानी ने उत्तर दिया—"वे लोग बराबर यही कहते थे कि राय-बहादुर की लड़की है, ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट की लाड़ली है। दूसरा कहता—होगी, यहाँ पर तो मज़दूरिन है।"

माधव बाबू ने बात काटकर कहा—"क्या कहा, मज़दूरिन है?"

कुमुदिनी—"यह तो मैं बहुत ही सभ्य भाषा में कह रही हूँ।"

माधव बाबू—"अच्छा, यहाँ तक बातें बढ़ गई थीं ?"

कुमुदिनी—"जी हाँ। ऐसा कोई दिन न जाता होगा, जिस दिन गालियाँ या मार से सामना न पड़ता हो। वहाँ तो मेरी नाकों में प्राण आ गए थे। अब तो ऐसा मालूम होता है कि मानो नरक से एकदम स्वर्ग आ गई।"

क्यों कुमुदिनी, जब तुम ये बातें अपने पिता से कह रही थीं, तब कितने बार तुम्हारे हृदय ने तुम्हें धिक्कारा था, और तुमने कितने बार उसको दबाया था।

माधव बाबू—"अच्छा, इसके पहले तूने क्यों नहीं लिखा ?"

कुमुदिनी की जिह्वा खुल गई थी। अब उसे किसी बात के कहने में संकोच न था।

कुमुदिनी—"जब तक वे लोग कहते रहे, तब तक तो मैंने कुछ ध्यान नहीं दिया, किंतु जब नौकरों ने भी कहना शुरू कर दिया, तब बात मेरी सहन-सीमा के बाहर हो गई। अंत में विवश होकर आपको पत्र लिखा।"

माधव बाबू—"टके के नौकर भी तेरा अपमान करते थे ? मेरा अपमान करते थे ?"

कुमुदिनी—"जी हाँ। जितने नौकर थे, सभी की ज़बानें खुली हुई थीं। उन लोगों के सामने ही वे लोग कहते थे और वे हँसते थे।"

माधव बाबू की भ्रू कुंचित हो गई।

माधव बाबू—"तेरे साथ ऐसा व्यवहार कितने दिनों से होता है ?"

कुमुदिनी—"जब से यहाँ से गई, लगभग उसी समय से।"

माधव बाबू—"तूने बहुत सहा रानी !"

कुमुदिनी—"क्या करती, इसके अतिरिक्त और उपाय ही क्या था?"

माधव बाबू—"क्या तु नहीं जानती थी कि उपाय तेरे पिता के पास था?"

कुमुदिनी—"जानती थी, लेकिन......"

माधव बाबू—"लेकिन क्या?"

कुमुदिनी—"उपाय तो तभी ग्रहण किया जाता है, जब मनुष्य हार जाता है।"

माधव बाबू—"रोग आते ही उसका इलाज करना चाहिए, नहीं तो भयंकर हो जाने पर फिर कुछ आशा नहीं रहती। अगर पहले ही सब हाल लिखती, तो यह क्यों होता?"

कुमुदिनी—"शायद आप विश्वास न करते।"

यह कहकर कुमुदिनी ने अपने पिता की ओर देखा।

माधव बाबू ने स्नेह से कुमुदिनी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"रानी, मैं तेरी बात का विश्वास न करता? यह कैसी बात है?"

रानी ने अपने पिता की ओर देखकर, फिर सिर झुका लिया। माधव बाबू का चित्त स्नेह से आर्द्र हो गया। वह चुपचाप रानी की पीठ पर हाथ फेरते रहे।

थोड़ी देर बाद माधव बाबू ने कहा—"क्यों, इसका दंड तो उन्हें देना चाहिए?"

कुमुदिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

माधव बाबू—"रानी, आज तक मैंने कभी उस मनुष्य को क्षमा नहीं किया, जिसने मेरा या मेरे घर में से किसी का भी अपमान किया हो। मैं क्षमा भी नहीं कर सकता। इसका प्रतिशोध तो लेना ही होगा।"

रानी चुप रही।

माधव बाबू—"अब यह देखना चाहिए कि बदला किस तरह लूँ?"

रानी फिर भी चुप रही।

रानी को चुप देखकर माधव बाबू ने फिर कहा—"देखो, तुम सुशिक्षित हो। आत्मसम्मान सिखलाने के लिये ही मैंने तुम्हें शिक्षा दी है। मैं जानता हूँ कि तुममें आत्मसम्मान है। आत्म-अभिमान है। तुम मेरी उपयुक्त कन्या हो। तुम मेरे अपमान का प्रतिशोध उसी तरह लोगी, जिस तरह मैं लूँगा।"

कुमुदिनी ने पिता की ओर देखा, उसकी दृष्टि में बड़ी पीड़ा थी, बड़ी वेदना थी।

फिर धीरे-धीरे कहा—"बाबूजी, उसी के लिये तो मैं आपकी शरण आई हूँ। मैं सब कुछ सहन कर सकती थी, लेकिन पिता की अवमानना, उनके प्रति अपमानकारी शब्द, उनको गालियाँ नहीं सहन कर सकती थी। यही तो निरंतर कलह का कारण था।"

माधव बाबू ने गर्व-पूर्ण नेत्रों से अपनी रानी की ओर देखा। उस दृष्टि में कितना अभिमान था, कौन कह सकता है।

माधव बाबू ने कहा—"रानी, मुझे जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि तुम अपने पिता का आदर करना जानती हो।"

कुमुदिनी—"मुझे अपने पिता पर अभिमान है।"

माधव बाबू प्रसन्न हो गए। वह सप्रेम रानी की पीठ पर हाथ फेरने लगे।

इसी समय नौकर ने आकर कहा—"सब-इंस्पेक्टर साहब आपसे मिलना चाहते हैं। बाहर के कमरे में बैठे हैं।"

माधव बाबू ने उठते हुए कहा—"रानी, अब तुम जाओ, निश्चिंत रहो, मैं इसका बदला अवश्य लूँगा।"

यह कहकर माधव बाबू चले गए।

उनके चले जाने के बाद कुमुदिनी उसी कमरे में बैठी रही। वह सोचने लगी—"मैंने जो कुछ कहा है, वह ठीक है कि नहीं।"

मन ने उत्तर दिया—"तुमने जो कुछ किया है, उसके लिये तुम्हें लज्जित होना चाहिए।"

कुमुदिनी—"लज्जित होने की क्या बात है। क्या वे मेरे पिता का अपमान न करते थे?"

हृदय—"तुम्हारे पिता का अपमान तो न करते थे।"

कुमुदिनी—"फिर क्यों कहते थे, रायबहादुर की लड़की है। ऐसी है, वैसी है?"

हृदय—"यह व्यंग्य-मात्र था।"

कुमुदिनी—"व्यंग्य ही में तो अपमान किया जाता है।"

कुमुदिनी ने हर तरह मन को समझाया, लेकिन उसका मन उसे बारंबार धिक्कार दे रहा था।

कुमुदिनी अपने तर्क-वितर्क में लगी थी। कमरे के भीतर किसी ने झाँका, और धीरे-धीरे आकर कुमुदिनी की आँखें बंद कर लीं। कुमुदिनी चौंकी और हँसकर कहा—"भाभी, छोड़ो। भला इतने मुलायम और नाज़ुक हाथ किसके होंगे?"

कुमुदिनी की भाभी लज्जावती ने कहा—"क्या सोच रही थीं?"

कुमुदिनी ने लज्जावती को बिठाकर कहा—"सोच क्या रही थी, कुछ भी तो नहीं।"

लज्जावती—"यह तो कहो, बाबूजी से क्या-क्या शिकायत की।"

कुमुदिनी—"शिकायत तो कुछ नहीं की।"

लज्जावती—(हँसकर) "हमसे न छिपाओ। मैं सब जानती हूँ।"

कुमुदिनी—"क्या जानती हो? अगर जानती हो, तो कहने की क्या आवश्यकता है?"

लज्जावती—"तुम्हारे मुँह से सुनने में और बात है।"

कुमुदिनी—"यह तुमने एक ही कही। क्या मेरे मुँह में शक्कर घुली है, जिससे तुम्हारा मुँह मीठा हो जायगा।"

लज्जावती—"शक्कर न हो, लेकिन मज़ा और ही आएगा।"

कुमुदिनी—"मैं तो न कहूँगी।"

लज्जावती—"न कहो, कुछ ज़ोर है, बाबूजी शायद आ रहे हैं, मैं जाती हूँ।"

कुमुदिनी—"अच्छा, बैठो, कहती हूँ।"

लज्जावती—"बाबूजी हैं, मैं अब नहीं ठहर सकती। चलो, तुम भी चलो।"

इतने ही में माधव बाबू ने कमरे में प्रवेश किया।

लज्जावती और कुमुदिनी दोनो चली गईं।



द्वितीय खंड

(१)

"बहन, आज मुँह क्यों लटका हुआ है। इस उदासी का कारण क्या है।"

कुमुदिनी ने सूखी हँसी से प्रत्युत्तर दिया !

लज्जावती—"अजी, बोलिए तो, इतनी नाराज़ी का सबब क्या है।"

कुमुदिनी—"कुछ नहीं, यों ही बैठी हूँ।"

लज्जावती—"वाह रे आपका बैठना ! अगर बैठना है, तो तुम बैठो, मुँह क्यों बैठे, मुँह को चलने दो।"

कुमुदिनी—"मुँह को कैसे चलने दें।"

लज्जावती—"यानी बात करो। हँसो और ख़ुशी मनाओ।"

कुमुदिनी—"इस अचानक हर्षावेग का कारण ?"

लज्जावती—"वह इसलिये कि अब तो आपकी पाँचो घी में हैं ?"

कुमुदिनी—"मैं समझी नहीं, कृपा करके सीधी बात कहिए।"

लज्जावती—"हाँ, अब क्यों समझोगी ? ऐसे-ऐसे मौक़ों पर लोग अपने सगों तक को भूल जाया करते हैं। यह तो मानव-प्रकृति है !"

कुमुदिनी—"क्या मानव-प्रकृति है भाभी ?"

लज्जावती—"कुछ विशेष-अवसरों पर अपने सगे मित्रों को भूल जाना।"

कुमुदिनी—"यह तो ठीक है, लेकिन यहाँ पर कौन विशेष अवसर है ?"

लज्जावती—"आप.........."

लज्जावती हँसने लगी।

कुमुदिनी—"वाह ! हँस ही लो पहले। आप तो हँसी के मारे फुलझड़ी हुई जा रही हैं ?"

लज्जावती—"अभी। छोटी फुलझड़ी हूँ, लेकिन जब..........."

लज्जावती फिर हँसने लगी।

कुमुदिनी—"अरे भई, कहती क्यों नहीं, आप ही अकेले खुश हो लेंगी।"

लज्जावती—(हँसते हुए) "आपका दूसरा विवाह होगा, तब बड़ी फुलझड़ी बन जाऊँगी।"

कुमुदिनी ने एक हलकी मुसकान से कहा—"दुर पगली ! कहीं स्त्रियों की दूसरी शादी हुआ करती है।"

लज्जावती ने हँसकर कहा—"क्यों नहीं। तुम लोग सब कुछ कर सकती हो। किसी मेम से कम थोड़े ही हो।"

कुमुदिनी ने लज्जावती के गाल में एक हलकी चपत लगाकर कहा—"कौन कहता है कि मैं मेम हूँ।"

लज्जावती ने कुमुदिनी का हाथ पकड़कर कहा—"कोई कहे या न कहे। क्या किसी के कहने से होता है। अच्छा, मैं ही कहती हूँ कि तुम किसी मेम से कम नहीं हो। लो, अब तो कोई कहता है।"

कुमुदिनी ने हँसकर उत्तर दिया—"क्या खूब, आपके कहने से क्या होता है, भैया साहब हैं, और तुम मेम। मैं तो एक देहाती हिंदू-घर की स्त्री हूँ।"

लज्जावती ने कहा—"नहीं-नहीं, भैया तुम्हारे भले ही साहब हों, लेकिन मैं तो मेम नहीं हूँ, और न कभी हो सकती हूँ। अगर तुममें मेमपने की बू न होती, तो क्या ऐसे ही ससुराल में लात मारकर चली आती। तुम मेम, और वे हिंदू। नहीं पटी, इसलिये अब 'डाइवोर्स' की तैयारी है। हाँ, यह तो बताओ, कब मुक़दमा दायर होगा ?"

कुमुदिनी ने रूठे स्वर से कहा—"भाभी, अगर ऐसी हँसी करोगी, तो मैं उठकर चली जाऊँगी। भाड़ में जाय तुम्हारा 'डाइवोर्स' और..."

कुमुदिनी कहते-कहते रुक गई। लज्जावती ने हँसते हुए कहा—"और तुम। रुकती क्यों हो, कहे न जाओ, वाक्य पूरा कर दो। अगर मैं भाड़ में चली जाऊँगी, तो तुम्हें इस तरह जलाने कौन आएगा। और तुम्हारे भाई साहब कहीं आत्महत्या न कर बैठें। इसी डर से तो मैं भाड़ में नहीं जाती, नहीं तो न-जाने कब चली गई होती। आया आपके ख़याल शरीफ़ में।"

कुमुदिनी ने अब की बार हँसकर कहा—"भैया को क्या पड़ी है। तुम जाओगी, दूसरी आ जायगी। भैया के लिये कुछ कमी थोड़े ही है।"

लज्जावती ने किंचित् मलिन स्वर में कहा—"कमी बेशक नहीं है, लेकिन मुझे विश्वास है कि तुम्हारी तरह वह दूसरा ब्याह करने नहीं दौड़े जायँगे। और अगर शायद करें भी, तो मैं भूत बनकर उन दोनों को नाकों चने चबवाऊँगी।"

कुमुदिनी ने लजाकर कहा—"यह कौन कहता है कि मैं विवाह करने जा रही हूँ। कहीं भाँग तो नहीं खाई आज।"

लज़्जावती ने बड़े गर्व से कहा—"यह तो आप जानती ही हैं कि मैं नशीली चीज़ों का व्यवहार नहीं करती। हाँ, शायद आपने कुछ खाया हो, तो हो। क्या निर्मल बाबू ने आपको भंग खाना भी सिखला दिया है?"

कुमुदिनी ने झेंपे स्वर में कहा—"हाँ, जिस तरह भैया ने तुम्हें यों बातें बनाना और मुफ़्त में सबको जलाना सिखला दिया है।"

लज्जावती ने अपनी भृकुटियों को चढ़ाकर पूछा—"क्या मैं जलाती हूँ?"

कुमुदिनी ने शुष्क स्वर में कहा—"और नहीं तो क्या सुख देती हो।"

लज्जावती ने पूछा—"ज़रा कहिए तो, कब मैंने आपको सताया है, दुखाया है, जलाया है और दुख पहुँचाया है। कब आपके नन्हे, छोटे, नाज़ुक, नाज़ोअंदाज़वाले दिल को तकलीफ़ पहुँचाया है?"

कुमुदिनी ने हँसकर कहा—"ओहो! आजकल शायद आप कविता करना सीखती हैं। तुकों की भरमार है।"

लज्जावती ने मुस्किराते हुए फ़ौरन् कहा—"हाँ, और तुम्हारा दिल बेज़ार है। भाई, मैं कविता तो नहीं करती, लेकिन कलामयी बातों को समझती ज़रूर हूँ।"

कुमुदिनी ने पूछा—"कैसे और कौन कविता में बातें करता है। क्या भैया?"

लज्जावती ने उत्तर दिया—"नहीं, आप।"

कुमुदिनी ने साश्चर्य पूछा—"क्या मैं कविता में बातें करती हूँ?"

लज्जावती—"आप नहीं, तो क्या मैं गँवारिन।"

कुमुदिनी ने पूछा—"आख़िर वह कैसे?"

लज्जावती—"अगर न बताऊँ, तो।"

कुमुदिनी—"तो मैं यहाँ से चली जाऊँगी, और फिर कभी तुमसे नहीं बोलूँगी।"

लज्जावती ने कहा—"यहाँ से अब कहाँ जाओगी? क्या निर्मल बाबू की तरह मुझसे भी नाराज़ हो जाओगी। अरे हाँ, याद आया! देखो तो, कैसा ग़ज़ब हुआ था, मैं बिलकुल भूल गई थी। ठीक है, आप तो दूसरा विवाह करने जा रही हैं। अपने दूसरे घर में चली जाओगी। तभी यह धमकी। शायद विवाह वग़ैरह सब ठीक हो गया। (ताली बजाकर) तब ठीक है, अभी से जुलाब का बंदोबस्त करना चाहिए। मिठाइयाँ खाने को मिलेंगी।"

कुमुदिनी जल गई। उसने अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा—"अहा! कैसी फूटी तक़दीर है। जहाँ जाओ, वहीं कोई-न-कोई जलाता है।"

लज्जावती ने हँसी छिपाते हुए कहा—"वहाँ पर सास और निर्मल बाबू जलाते थे, और यहाँ पर मैं। भाई, मैंने क्या कहा है। यह ठीक होगा। जहाँ तुम कल विवाह करती, वहाँ आज ही कर डालो। सब झंझट मिट जाय। मैं तुम्हारे नए वर के यहाँ तो जलाने जाऊँगी नहीं, और दूसरे, वह भी तुमको अपने गले का हार बना......"

कुमुदिनी ने दोनो हाथों से लज्जा का मुख बंद कर दिया। कुमुदिनी ने गिड़गिड़ाते हुए कहा—"भाभी, मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ, अब और न जलाओ। बहुत हो चुका। तुम्हें क्या मुझ पर दया नहीं आती। भाभी, मैं पैर पड़ती हूँ, अब और न जलाओ।"

गर्विणी कुमुदिनी सचमुच लज्जा के पैर पकड़ने को झुकी। लज्जा ने कुमुदिनी को पकड़कर कहा—"क्यों मुझे नरक में डालती हो बहन। इसी तरह अपनी सास के पैर पकड़ लेतीं, निर्मल बाबू के भी, तो......"

कुमुदिनी ने बात काटकर कहा—"उनकी बात मुझसे न कहो। मैं नहीं सुनना चाहती। उनको गरज होगी, तो सौ बार आकर मेरे पैर पड़ेंगे। वह क्या मेरे हैं।"

लज्जावती ने गंभीरता से कहा—"तो मैं क्या तुम्हारी हूँ।"

कुमुदिनी इस प्रश्न से चौंकी, लेकिन फिर अपने को सँभालकर धीमे स्वर में कहा—"हाँ, तुम अपनी हो।"

लज्जावती—"यही तो तुम भूल करती हो। वे दोनो आदमी ही तुम्हारे सब कुछ हैं। स्त्रियों का पति ही सब कुछ होता है। क्या मुझे फिर से सती की कथा कहनी पड़ेगी। सावित्री का चरित्र सुनाना पड़ेगा। सती अपने स्वामी की निंदा-मात्र सुनने के कारण जल मरी थीं। उसके स्वामी कौन थे—एक गँजेड़ी, भँगेड़ी और अलमस्त तपस्वी। वह चाहे महादेव हों, और चाहे संसार के मालिक, लेकिन उनमें ये तीनो बातें थीं। मैं उनको एक साधारण मनुष्य की दृष्टि

से देखती हूँ। लेकिन अगर उनमें से देवत्व निकाल दिया जाता है, तब भी एक निष्कलंक मूर्ति सामने नज़र आती है। सती एक आदर्श पतिभक्त नारी दिखलाई देती है। और बहन, एक तुम हो, जो देवोपम स्वामी को भी पाकर प्रसन्न नहीं होती हो। उनकी निंदा करती हो और सुनती हो। बहन, यह तुम्हारा क़सूर नहीं है। उस पश्चिमीय शिक्षा और आदर्श का है, जो तुम्हें दी जा रही है और तुम्हारे सामने रक्खा जा रहा है। पुरुषों के सहवास में तुम्हें युनिवर्सिटी में शिक्षा दी जाती है, और पेरिस की वारांगनाओं का आदर्श रक्खा जाता है। तब यह विषम फल क्यों न फले। बहन, सती की तरह आदर्श नारी बनने का यत्न करो।"

कुमुदिनी ने लज्जित स्वर में कहा—"महादेव सती को प्यार करते थे; वह सुहागिन थी। लेकिन मैं तो उनको फूटी आँख न सुहाती थी।"

लज्जावती—"क्या निर्मल बाबू तुमको प्यार नहीं करते?"

कुमुदिनी ने कहा—"नहीं, उनकी ममता मेरे ऊपर कुछ भी नहीं है।"

लज्जावती—"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

कुमुदिनी—"आदमी व्यवहार से मालूम किया जाता है, और मैंने उनके व्यवहार से यह धारणा की है। उनके लिये तो उनकी मा ही सब कुछ है। वही स्वर्ग है। जब देखो, अम्मा-अम्मा लगाए रहते हैं। मुझे तो अपना समझते ही नहीं। जितनी एक ज़रख़रीद लौंडी की क़द्र होती है, उतनी भी मेरी नहीं होती। बात-बात में ताना मिलता है, और बाबू का तो ऐसा अपमान होता है कि मैं कुछ कह नहीं सकती। भाभी, ये क्या अपने होने के प्रमाण हैं?"

लज्जावती ने हँसकर कहा—"ठीक है। लेकिन बहन, इससे बढ़कर अपना होने का दूसरा प्रमाण नहीं है।"

कुमुदिनी आश्चर्य से लज्जावती की ओर देखने लगी।

लज्जावती ने फिर कहना शुरू किया—"मैं अभी तक तुम्हें चिढ़ा रही थी, क्या तुझे विश्वास है कि मैं तुम्हें वास्तव में दुख देने का या किसी तरह का कष्ट पहुँचाने का विचार करूँगी।"

कुमुदिनी—"मैं कभी स्वप्न में भी अनुमान नहीं कर सकती कि तुम मुझे दुख पहुँचाने का विचार तक कर सकती हो।"

लज्जावती ने कुमुदिनी का सप्रेम हाथ पकड़कर कहा—"उसी तरह वह भी तुम्हें चिढ़ाते थे, ताकि शरमाकर तुम उनकी मा की सेवा करो, कुछ शर्माओ और कुछ ग्लानि खाओ। भला यह बताओ, क्या उनकी मा भी तुम्हें चिढ़ाती थी, या तुम्हारा विद्रूप करती थी।"

कुमुदिनी ने अपना सिर नीचे किए कहा—"नहीं, वह चिढ़ाती तो न थी, लेकिन 'बहू-बहू' करके मेरी जान खा जाती थी। और यह मुझे फूटी आँखों नहीं सुहाता था। दिन-भर मेरे पीछे पड़ी रहती। चाहे जितना खा लो, वह बार-बार यही कहती, 'बहू, अभी और खा लो।' 'आज यह खा लो, आज वह खा लो।' 'बहू, आज थोड़ा-सा हलुआ बना दो आ करके, अभी आते होंगे।' ये ही बातें मेरा दिल जलाती थीं, और उनके झूठे प्रेम के मारे नाकों दम आ गया था।"

लज्जावती ने एक लंबी साँस खींचकर कहा—"बहन, तुमने देखते हुए भी नहीं देखा। वह तुम्हें कितना चाहती थीं, और तुम उन्हें झिड़क देती थी। तुम्हारे लिये जान देती थीं, और तुम उन्हें ठुकराती थीं। हाय बहन, तुम आँखें रहती भी अंधी हो। इसी से तो वह तुम्हें इतना तंग करते थे। वह देखते थे कि उनकी मा तुम्हारे लिये जान देने को तैयार हैं, और तुम उन्हें जली-कटी सुनाती हो, तब भला वह क्यों न बिगड़ें। बहन, तुम्हारी-ऐसी सास बड़े भाग से मिलती है। तुम अभी उनका मूल्य नहीं समझती, अभी न समझोगी, जब उन्हें खो दोगी, तब समझोगी और पछताओगी। शायद रोओ

भी। जीते-जी आदमी की क़द्र नहीं होती, मरने पर ही होती है। हाय, मेरे सास तो है ही नहीं बहन, नहीं तो मैं दिखला देती कि सास की सेवा यों की जाती है।"

कुमुदिनी—"क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे सास होती, मेरी तो ईश्वर से प्रार्थना है कि ईश्वर की कृपा से सब कुछ हो, लेकिन भगवान्, सास किसी के न हो।"

लज्जावती—"तुम्हारी यह इच्छा बहन, बिलकुल ग़लत है। अगर सास के बहू को क़ायदा करना नहीं आता। मैं यह चाहती थी और अब भी चाहती हूँ कि मेरे सास होती, तुम्हारी मा जीवित रहती, तब मैं दिखा देती कि देखो, यों सास की सेवा की जाती है। बहन, स्त्री-जाति का जन्म सेवा करने के लिये हुआ है, 'सेवा का फल सेवा' यह चरितार्थ है। तुम सेवा का मज़ा क्या जानो। तुम एक अमीर घर की लड़की हो, कभी कोई काम करने तो पाया नहीं, किसी की सेवा भी करने को नहीं मिली, तब तुम कैसे जान सकती हो। मैं एक ग़रीब घर की लड़की हूँ। बचपन से ही घर का काम-काज करना, पढ़ना-लिखना, सीना-पिरोना करती थी, और फिर ऊपर से छोटे-छोटे भाइयों की देख-रेख करनी पड़ती थी। अगर मैं कभी निश्चिन्त बैठती, तो मेरी मा अरई लगाए रहती, कभी बग़ैर काम के बैठने नहीं देती थी। मुझे काम करने का मज़ा मालूम है। मुझे नौकरों के हाथ का अधूरा काम बिलकुल पसंद नहीं, इसीलिये मैं बाबूजी का और उनका काम अपने हाथों से करती हूँ। अपने से बड़ों की सेवा करके जो तृप्ति मिलती है, वह नौकरों के हाथ से करवाकर कभी मुअस्सर नहीं होती। सेवा में वास्तविक सुख है, और निश्चेष्ट पड़े रहना काहिली है। पहले में स्वर्गीय सुख है, और दूसरे में नारकीय यंत्रणा। एक मृग-तृष्णा है। तुम सुख ढूँढ़ती हो बहन, खोखली चीज़ों में, लेकिन वहाँ सुख नहीं है।"

कुमुदिनी का मस्तक लज्जा से, ग्लानि से नत हो गया। एक-एक बात ज़ख़्म पर नमक का काम कर रही थी।

लज्जावती ने उसको मौन देखकर कहा—"बहन, बुरा न मानना। मैं कोई बात तुम्हें दुख पहुँचाने की ग़रज़ से नहीं कह रही हूँ।"

कुमुदिनी ने एक सूखी हँसी-सहित कहा—"नहीं, मैं यह सोच रही थी कि मैं किसी अभिनेत्री की बात सुन रही हूँ। अभी रिहियर्सल में तो यह ग़ज़ब है, जब स्टेज पर आओगी, तो न-मालूम क्या करोगी? 'जूलियस सीज़र' की अंटोनियो की स्पीच से भी ज़बरदस्त स्पीच तुम्हारी होती है।"

लज्जावती ने एक मंद मुस्कान-सहित कहा—"बहन, वास्तव में तुम बड़ी अभागिन हो।"

कुमुदिनी ने फ़ौरन् उत्तर दिया—"अभागिन न होतीं, तो तुम्हारी-ऐसी खरी भावज क्यों मिलती।"

लज्जावती ने उत्तर दिया—"इसलिये नहीं, बल्कि इसलिये कि तुमने अपनी सास का मूल्य नहीं समझा। अन्नपूर्णा-रूप-सी सास को पैरों से ठुकरा दिया। मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर बहुत कम आते हैं। अवसर एक ही बार आते हैं और फिर वे नहीं आते।"

कुमुदिनी ने व्यंग्य-स्वर में उत्तर दिया—"क्या अन्नपूर्णा तुम हो और क्या मेरी सासजी हैं। मैं भी ख़ूब समझती हूँ अपना कर्तव्य, अगर आप मेरे स्थान में होतीं, तो आपकी ये लंबी-लंबी बातें सब निकल जातीं। सारी शेख़ी फिस हो जाती। आपको अभी सास से पाला तो पड़ा नहीं, इसीलिये यह उपदेश दिए जाते हैं। जब पड़ता, तो यह उपदेश कोने में तहाए रक्खे रह जाते।"

लज्जावती ने आवेश के साथ कहा—"अगर मैं आपकी जगह पर होती, तो दिखला देती कि मैं तुम्हारी सास की आँखों की पुतली होती।"

कुमुदिनी ने हँसते हुए कहा—"तो क्यों नहीं जाकर तुम उनसे विवाह कर लेती, जाकर अपने मन की साध पूरी कर लो।"

लज्जावती ने भी हँसते हुए कहा—"मैं तुम्हारी तरह मेम थोड़े ही हूँ, जो बार-बार ब्याह करती फिरूँ, और पहले तुम्हारे भाई साहब ही छोड़ने पर न राज़ी होंगे।"

कुमुदिनी मन-ही-मन उस पति-गर्विता पर जल गई। उसने उठकर कहा—"अच्छा, तो मैं अब ज़रा टहलने जाती हूँ।" यह कहकर वह लज्जावती की प्रतीक्षा किए बग़ैर चली गई।

लज्जावती एक ठंडी साँस खींचकर धीरे-धीरे उठकर चली गई।

(२)

लज्जावती धीरे-धीरे उठकर अपने कमरे में आई। और रोज़ वह इस समय बाग़ में टहला करती थी। लेकिन आज कहीं भी जाने को उसका मन न हुआ। वह कुमुदिनी से कुछ विरक्त हो गई थी। उसने अपने कानों से उसको पति-निंदा करते सुना था। उसका हृदय क्षोभ से ग्लान हो रहा था।

संध्या हो गई थी। निशादेवी अपने काले आँचल से विश्व को छिपाती हुई, मंथर गति से चली आ रही थी। सभी पथिक अपने घर की ओर धीरे-धीरे आ रहे थे। लज्जा अपनी चिंता में ही विभोर थी। एकाएक कमरे की बिजली जल उठी। वह चौंकी, और उठकर खड़ी हो गई।

लज्जा को चौंकते देख मुरारीशंकर ने हँसकर कहा—"आज किस भाग्यवान् पर भगवान् प्रसन्न हुआ है। किसके नसीब का सितारा उरूज पर आया?"

लज्जावती ने एक छोटा-सा घूँघट काढ़ते हुए कहा—"मैं श्रीमान् का मतलब नहीं समझी।"

मुरारीशंकर ने मुस्किराते हुए कहा—"अरे, किस भाग्यवान् की चिंता में इतनी तन्मय हो रही थी।"

लज्जावती ने एक वंकिम कटाक्ष निक्षेप करके कहा—"कोई भी हो, आपसे मतलब।"

मुरारी ने मुग्ध स्वर में उत्तर दिया—"जी हाँ, मतलब नहीं है, तो पूछता क्यों हूँ।"

लज्जावती ने एक और कटाक्ष करके कहा—"जाइए, मैं नहीं बतलाती। कुछ ज़बरदस्ती है। अब आप मुझ पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाल सकते, क्योंकि स्त्रियों के अधिकार बराबर हैं। मैं अपनी प्राइवेट बातें क्यों बतलाऊँ।"

मुरारी ने सप्रेम लज्जावती का हाथ पकड़कर कहा—"ख़ैर, न बतलाइए आप अपनी प्राइवेट बातें। कौन कहता है कि स्त्रियों के अधिकार बराबर नहीं हैं। अच्छा, यह तो कहो, तुम उदास क्यों हो, आज सूरत मुहर्रमी क्यों हो रही है।"

लज्जा ने हँसकर कहा—"मैं तो उदास नहीं हूँ। मैं तो हँस रही हूँ। उदास आप ही हैं, आप ही की आँखों से आँसू गिरे पड़ते हैं। ज़रा आँसू पोंछ डालिए।"

मुरारी का हाथ सचमुच अपनी आँखों पर चला गया। लज्जावती ने ज़ोर से हँसकर कहा—"वाह, पकड़ गए न। आप मुझसे चालाकी करेंगे। हाँ, अब जाकर ज़रा मुँह धो डालो।"

मुरारी ने लज्जित कंठ से कहा—"चालाकी करके मैं कहाँ जाऊँगा। अगर हुज़ूर का हुक्म हो, तो बंदा मुँह भी धो डाले, कोई इनकार नहीं है।"

लज्जावती ने कहा—"अच्छा, जाने दीजिए। मुँह न धोइए। हाँ, मैं एक बात सोच रही थी।"

मुरारी ने पूछा—"वह क्या?"

लज्जावती—"तुम अपनी बहन को क्यों लिवा लाए?" प्री. है।

मुरारी—"यह तुमने एक ही कही। वे लोग रखना नहीं

थे, और वे लोग उसको कष्ट देते थे। रानी का भी पत्र आया था, और निर्मल का भी।"

लज्जावती—"यह आपने कैसे जाना कि वे लोग रानी को दुख देते थे।"

मुरारी—"अरे, रानी ने लिखा था, और कैसे जाना।"

लज्जावती—"आपने कुछ सच-झूठ का पता भी लगाया था, या जो उन्होंने कहा, उसे ही वेद-वाक्य मान लिया।"

मुरारी—"वे लोग उसे बहुत दुःख देते थे। खाने-पीने का भी तकलीफ़ थी। क्या रानी झूठ लिखेगी, या झूठी शिकायत करेगी। क्या कोई अपने घर की सेंत-मेंत बुराई करता है।"

लज्जावती ने बड़ी गंभीरता से कहा—"कुछ लोग दुनिया में ऐसे हैं, और वे ऐसा करते हैं। उनमें से आपकी रानी भी हैं।"

मुरारी ने अपनी भृकुटियों को सिकोड़ते हुए कहा—"यह तुमने कैसे जाना?"

लज्जावती—"रानी को अपनी ससुराल में स्वर्ग का सुख था, अगर वह भोगना जानतीं और चाहतीं। रानी वहाँ पर अपनी सास की आँखों की पुतली थीं। उनके आगे खाने का ढेर लगा रहता था।"

मुरारी ने आश्चर्य से लज्जावती की ओर देखते हुए कहा—"यह तुमने कैसे जाना?"

लज्जावती—"यह रानी ने ख़ुद कहा।"

मुरारी—"रानी ने!"

लज्जावती—"हाँ, रानी ने।"

मुरारी—"झूठ।"

लज्जावती—"क्या मैं तुमसे कभी झूठ बोली हूँ। भगवान् कभी दिन न दे कि आपसे भी झूठ बोलना पड़े।"

मुरारी—"तो फिर रानी ने ऐसा पत्र क्यों लिखा था?"

लज्जावती—"वह मैं क्या जानूँ। इसका जवाब तो वही दे सकेंगी। आदमी पहले सच-झूठ का पता लगा लेता है। शायद उनका जी वहाँ से ऊब गया हो।"

मुरारी—"उसने फिर ऐसा क्यों लिखा। ठहरो, मैं उसका पत्र तुम्हें दिखाता हूँ। उसके लिखने से ऐसा मालूम होता था कि जो कुछ वह लिख रही है, बिलकुल ठीक है।"

यह कहकर वह रानी का पत्र लेने चले गए। पत्र लाकर लज्जावती के हाथ में देते हुए कहा—"लो, तुम्हीं पढ़ लो।"

लज्जावती पत्र पढ़ने लगी। घृणा और क्षोभ से उसका चेहरा लाल हो उठा। उसने पत्र फेक दिया, और कहा—"यह सब झूठ है। अच्छा मैं तुमसे एक बात पूछती हूँ।"

मुरारी—"पूछो।"

लज्जावती—"अगर तुम्हारे मा होतीं, और तुम उन्हें बहुत चाहते, यहाँ तक कि वह तुमको प्राणों से भी प्रिय होतीं, तो तुम मुझसे क्या करवाते?"

मुरारी—"क्यों, उनकी सेवा।"

लज्जावती—"बस, यही बात रानी के स्वामी भी चाहते हैं। अच्छा, मा मेरे लिये जान देतीं, और मैं उन्हें ठुकराती, तब क्या करते?"

मुरारी—"मैं बाध्य करता उनकी सेवा करने के लिये।"

लज्जावती—"और अगर मैं न करती, तब?"

मुरारी—"पहले कोशिश करता, और जब न करती, तो......"

लज्जावती—"मुझे मेरे बाप के यहाँ भेज देते?"

मुरारी—"हाँ, बस यही उपाय था।"

लज्जावती—"वही निर्मल बाबू ने भी किया है।"

मुरारी—"यह तुमने कैसे जाना?"

लज्जावती—"स्त्रियों की बुद्धि पुरुषों से अधिक तीव्र होती है।

इसी समय कुमुदिनी ने नीचे से पुकारा—"भाभी, ओ भाभी, कहाँ हो।"

लज्जावती ने मुरारी से कहा—"लो, अब वह आ गई। अब मुझे दूसरा लेक्चर अटेंड करना है। मैं जाती हूँ।"

मुरारी ने कहा—"कहाँ जाती हो, ज़रा ठहरो।"

लज्जावती ने जाते हुए कहा—"अब मुझे फ़ुरसत नहीं है। आप पढ़ें, और मैं भी अब पढ़ने जाती हूँ। आज 'स्त्रियों के अधिकार' पर लेक्चर है। मैं किसी तरह 'मिस' नहीं कर सकती।"

लज्जावती यह कहकर चली गई।

(२)

माधव बाबू ने मुरारी से कहा—"मुरारी, कुछ सोचा है?"

मुरारी की गंभीर मूर्ति ने उत्तर दिया—"किसके बारे में, मैं समझा नहीं।"

माधव बाबू मुरारी से भी अधिक गंभीर थे। उन्होंने बड़ी गंभीरता से कहा—"निर्मल छोकरे को क्या दंड देना चाहिए?"

मुरारी यह सुनकर चौंक गए। परंतु पिता की ओर देखने का साहस नहीं हुआ। अपना मुख धीरे-धीरे नीचे की ओर कर लिया। माधव बाबू ने फिर पूछा, लेकिन अब की उनके स्वर में कुछ तीव्रता थी और कुछ व्यंग्य।

माधव बाबू ने कहा—"क्यों मुरारी, सिर क्यों नीचा कर लिया! क्या बाप के अपमान का बदला ऐसे ही लिया जायगा। क्या इसी तरह तुम पितृऋण से मुक्त होगे। अब वह बदमाश मेरा रिश्तेदार नहीं, बल्कि मेरा घोर शत्रु है।"

मुरारी ने सिर झुकाए सब सुन लिया। कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर बन ही न पड़ा, उत्तर क्या देते।

माधव बाबू ने थोड़ी देर उत्तर की प्रतीक्षा करके कहा—"तुम

मेरे लड़के हो, मेरे लड़के होकर तुममें ज़रा भी आत्माभिमान नहीं आया। बड़े आश्चर्य की बात है! तुम्हारी इस हालत को देखकर मुझे तरस आता है।"

मुरारी ने अब की बार उत्तर दिया—"पहले आप सच-झूठ की जाँच कर लें। एकाएक कोई काम कर बैठना उचित न होगा। कम-से-कम मुझे तो रानी की बातों में विश्वास नहीं होता, इसके अतिरिक्त निर्मल बाबू भी एक सुशिक्षित, संभ्रांत व्यक्ति हैं। मुझे यह आशा नहीं है कि वह रानी के साथ ऐसा व्यवहार करेंगे। उनकी मा भी बड़ी सीधी हैं, उनसे भी मुझे उम्मेद नहीं है कि वह रानी को परेशान करेंगी। आप अगर इस मामले की जाँच कर लें, तो बहुत अच्छा हो। और, फिर अब तो रानी पर आपका कुछ अधिकार है ही नहीं, वे लोग जिस तरह चाहेंगे, रक्खेंगे। और, रानी को भी उचित है कि वह हर तरह से उनके ख़ुश करने का यत्न करे।"

न-मालूम किस तरह माधव बाबू ने इतने धैर्य के साथ ये बातें सुनीं। मुरारी की बातें समाप्त हो रही थीं और उनका चेहरा तमतमा रहा था। वह उठकर खड़े हो गए। शेर की तरह बुलंद आवाज़ में कहा—"मैं रानी की बात का अविश्वास नहीं कर सकता। बग़ैर कष्ट के कोई अपना घर सहज में नहीं छोड़ सकता। मेरा रानी के ऊपर पूर्ण अधिकार है। विवाह किया है, कुछ उसे बेच नहीं दिया। मैं उसका पिता हूँ, और पिता का यह कर्तव्य है कि वह हर तरह से अपनी संतान को सुखी करे। मैंने एक ग़लती की थी, और वह एक बड़ी भारी ग़लती थी, जो पुरानी मित्रता निबाहने के लिये रानी को ऐसे गँवार के हाथ में सौंप दिया था। एक मणि-माला बंदर के खेलने को दिया था, बंदर क्या जान सकता है कि यह कितनी अमूल्य वस्तु है। नालायक़, पाजी, मुझे उपदेश देने चला। मुझी से पैदा हुए, और अब पढ़ाते हैं—पढ़ो आपज्ञान, 'सोलह दूनी

माधव बाबू ने गरजकर कहा—"तुम विवाह में बाधा डालोगे ?"

मुरारी ने दृढ़ता से कहा—"हाँ, मैं यथाशक्ति अड़चनें डालूँगा। विधवा-विवाह शास्त्र-निषिद्ध नहीं है, लेकिन ऐसा विवाह सब जगह वर्जित है। रानी द्विचारिणी नहीं बन सकती।"

माधव बाबू ने गरजकर कहा—"भाड़ में जाय तुम्हारा शास्त्र और तुम।"

मुरारी ने दृढ़ता से कहा—"आप मेरे रहते यह दुष्कर्म नहीं कर सकते, क्योंकि हम मुँह दिखाने के लायक़ न रहेंगे।"

माधव बाबू अपने आपे से बाहर हो गए। मुरारी के अतिरिक्त आज तक किसी को यह साहस न पड़ा था कि वह माधव बाबू से इस तरह सवाल-जवाब करता। उन्होंने गला फाड़कर कहा—"जाओ, हमारे घर से निकल जाओ। आज से मैं तुम्हारा मुँह देखना भी पाप समझता हूँ। नालायक़, पाजी कहीं का।"

मुरारी चुपचाप चले गए।

माधव बाबू लगे गालियाँ बकने। उनका मुख लाल हो रहा था। आँखों से अंगार बरस रहे थे। मुख से थूक के फुहारे निकल रहे थे। मस्तक पसीने से सराबोर था। इस समय एक विक्षिप्त और उनमें बहुत थोड़ा अंतर था। उन्होंने मारे ग़ुस्से से अपना हाथ मेज़ पर पटक दिया। फूलदानी गिर पड़ी और चूर-चूर हो गई। ग़ुस्से से अपना होंठ चबाने लगे। होंठों पर इतना ज़ोर आज़माया कि उनसे रक्त बहने लगा। इससे उनके क्रोध की मात्रा द्विगुणित हो गई। वह आप-ही-आप कहने लगे—"सब एक ही थाली के बैंगन हैं। इस कल के लड़के की इतनी हिम्मत कि कहे कि मैं शादी में रुकावट डालूँगा। अपना लड़का है, तो क्या हुआ, मैं क्षमा नहीं कर सकता। न-मालूम क्या बात है कि मुरारी में इतना अंतर हो गया। अब वह पहला-सा नहीं रहा और यह फ़र्क़ इसी साल-भर में हुआ है।

कुमुदिनी—"इसलिये कि मैंने आपको लिवा ले जाने के लिये ख़त लिखा था। इसलिये रोज़ मुझे धिक्कारती हैं।"

माधव बाबू ने सिर हिलाकर कहा—"ठीक है। मेरा ख़याल ग़लत नहीं था। वही सबकी जड़ है। उसको बहुत जल्द अब यहाँ से दूर करना चाहिए। बड़ी छूत की बीमारी है।"

फिर टहलते-टहलते शीशे के सामने जाकर अपनी मूछों पर ताव देते हुए कहा—"यह बाल धूप में सफ़ेद नहीं हुए हैं, ज़माना देख-कर हुए हैं।"

(४)

कुमुदिनी अपने पिता के पास से लौटकर अपनी भाभी की खोज में चली। वह सब हाल जानने के लिये बड़ी उत्कंठित थी। माधव बाबू ने तो कोई उत्तर दिया नहीं, वह साफ़ टाल गए, मुरारी से कुछ जानने की आशा थी ही नहीं। यदि वह कुछ जान सकती थी, तो लज्जा के द्वारा। इसीलिये वह अपनी भाभी की खोज में उसके कमरे की ओर गई। कमरा बंद था। कुमुदिनी सूराख़ से देखने लगी। मुरारी और लज्जा दोनो बातें कर रहे थे। कुमुदिनी अपनी उत्सुकता न रोक सकी। वह भी दरवाज़े के समीप खड़ी हो गई। उसने देखा कि उसके भैया और भाभी दोनो बातें कर रहे हैं, लेकिन उसके लाख यत्न करने पर भी कुछ सुनाई नहीं दिया।

लज्जा ने धीरे से पूछा—"कहते क्यों नहीं, क्या हुआ? बड़े बाबू क्यों नाराज़ हो रहे थे, आख़िर कुछ तो कहो।"

मुरारी ने थोड़ी देर बाद उत्तर दिया—"हुआ क्या, कुछ नहीं। उनका स्वभाव तो जानती ही हो। ज़रा-सी बात पर भी आप बेतरह बिगड़ जाते हैं। अगर उनकी हाँ-में-हाँ न मिलाया जाय, तो वह आपे से बाहर हो जाते हैं। गा [illegible] ती रहती हैं।"

लज्जा ने व्यस्तता से पूछा—"ख़ैर, लंबी भूमिका न बाँधिए, कृपया सब मामला साफ़-साफ़ कहिए।"

मुरारी ने एक बार लज्जा की ओर देखकर कहा—"कह तो रहा हूँ। बात बड़ी गंभीर है।"

लज्जा ने और व्यस्तता से कहा—"आख़िर कहिए भी तो।"

मुरारी ने लज्जा की ओर देखते हुए कहा—"बात यह है कि बाबू रानी का दूसरा विवाह करना चाहते हैं।"

लज्जा यह सुनकर स्तंभित रह गई। वाक्शक्ति स्थिर हो गई। आश्चर्य के साथ स्वामी की ओर देखने लगी।

मुरारी ने लज्जा को एक बार हिलाकर कहा—"कुछ सुना?"

लज्जा ने चौंकर कहा—"क्या कहा—रानी का दूसारा विवाह!"

मुरारी—"हाँ, बाबू तो यही कहते थे कि अब हम रानी का दूसरा विवाह करेंगे, क्योंकि रानी-ऐसे रत्न की क़द्र वह गँवार नहीं कर सकता। मैंने एक बड़ी भारी भूल की, और अब उसका सुधार करूँगा।"

लज्जा—"और आपने क्या कहा?"

मुरारी—"मैंने विरोध किया। बहुत कुछ समझाया, पर उनकी समझ में एक न आया। जब उनको कोई उत्तर न मिला, तब लगे मुझ पर ख़फ़ा होने। अंत में कहा कि मैं तुम्हारा मुख भी देखना नहीं चाहता। मैंने भी कहा कि 'मेरे रहते आप कदापि यह विवाह नहीं कर पावेंगे'।"

लज्जा—"बात यहाँ तक बढ़ गई?"

मुरारी—"हाँ, भला तुम्हीं बताओ, मैं किस तरह अपनी सम्मति इस विवाह में दे सकता हूँ। बाबू की अक़्ल तो चरने गई है। अपनी ही शान में ऐंठे रहते हैं! हरएक को जेल की धमकी देते

रहते हैं, जी होता है कि यहाँ से कहीं चला जाऊँ, और आजन्म उनको मुख न दिखलाऊँ।"

लज्जा—"बस रहने दीजिए, जो कुछ भी हो, वह आपके पूज्य हैं, पिता हैं, उनका तुम पर बड़ा भारी एहसान है। जब तुम्हें पढ़ा-लिखाकर किसी लायक़ कर दिया है, तब आप उन्हें छोड़ देना चाहते हैं। उनके दूसरा है ही कौन। अगर ग़ुस्से में उन्होंने दो बातें कह भी दीं, तो क्या उसकी कोई गाँठ बाँध लेता है। हमारी मा ने हमें सिखाया था और अब भी याद है—

"पिता स्वर्गो पिता धर्मो पिता हि परमं तपः ;
पितरि प्रतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः।"

मुरारी—"वाह पंडितानीजी! अब तो आप एक अच्छी-ख़ासी लेक्चरार हो गई हैं! धन्य भाग।"

लज्जा के मुख पर हँसी का चिह्न तक न देखा गया। उसने बड़ी गंभीरता से कहा—"आपने बाबूजी से विवाद कर अच्छा नहीं किया। आपको उचित था कि जब उन्होंने पूछा था कि तुम्हारी क्या राय है, तो आप कुछ उत्तर न देते, और टालकर चले आते। जब उनका ग़ुस्सा कम होता, तो वह आप अपनी ग़लती समझ जाते।"

मुरारी—"नहीं, मैंने उनकी बात का प्रतिवाद करके अच्छा ही किया। जब वह जान जायँगे कि सभी उनके विरुद्ध हैं, तो वह शायद ऐसा दुष्कर्म करने का साहस न करेंगे, और अगर मैं चुप रहता, तो मेरी भी सम्मति समझकर जहाँ कल करते, वहाँ आज ही कर डालते।"

लज्जा ने एक मंद मुस्कान-सहित कहा—"तुम्हें क्यों आपत्ति है? अगर वह रानीजी का विवाह करना चाहते हैं, तो करने दीजिए। आपको क्यों बुरा लगता है?"

मुरारी ने उत्तर दिया—"तुम्हारी बुद्धि क्या हवा खाने गई है।

हिंदू-समाज में कभी आज तक ऐसा हुआ भी है कि स्त्री का स्वामी जीवित रहे और उसका दूसरा विवाह हो।"

लज्जा—"हिंदू-समाज में नहीं होता न सही, लेकिन संसार में तो होता है। अभी उस दिन आप ही ने तो पढ़कर सुनाया था कि किसी 'विलियम' साहब को उसकी स्त्री 'मेरिया' ने तलाक़ दे दिया, क्योंकि उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था, और 'मेरिया' का विवाह किसी दूसरे आदमी 'चार्ल्स' से होने जा रहा है। आपने पढ़कर कहा था कि क्या ही अच्छा होता यदि तलाक़ की प्रथा यहाँ भी चल जाती, तो कितनी ही अबलाओं को स्वार्थी, कुचरित्र मनुष्य के साथ रहकर अपना जीवन व्यतीत न करना पड़ता। वे अपने को नारकीय यंत्रणा से स्वतंत्र कर लेतीं। तब अगर बाबूजी रानी का दूसरा विवाह करने जा रहे हैं, तो कौन बुरा कर रहे हैं, वह तो आप ही के मन की बात कर रहे हैं।"

मुरारी निरुत्तर हो गए। थोड़ी देर बाद कहा—"यह तो ठीक है, लेकिन हमारे यहाँ यह प्रथा तो है नहीं। यदि समाज स्वीकार करे, तो बेशक अच्छी बात है।"

लज्जा—"समाज स्वीकार तब करे, जब उसके सामने कोई प्रश्न तो उपस्थित हो! कोई अगुआ बनकर राह तो दिखलाए। बाबूजी में इतना साहस है, तभी तो वह अगुआ बनना चाहते हैं, आपको उचित है कि उनका साथ दें।"

मुरारी ने जोश के साथ कहा—"नहीं, उस समय मैं भूल कर रहा था। यह हिंदू-समाज है। विवाह इसका एक संस्कार है। यह एक ठेका (Marriage Contract) नहीं है। जब चाहो इक़रारनामा फाड़कर फेंक दो। अच्छा, अगर हमारा-तुम्हारा मन न मिले, तो क्या तुम मुझे तलाक़ देने पर तैयार हो जाओगी?"

लज्जा ने हँसते हुए कहा—"मैं कोई ईसाइन या मुसलमानिन नहीं हूँ। मैं एक हिंदू-नारी हूँ। हिंदू-स्त्री कभी दूसरे पुरुष की कामना नहीं

कर सकती। फिर समाज ने हमें स्वतंत्र नहीं किया है। स्वतंत्रता को तो पुरुषों के लिये रचा है। आप अवश्य विवाह कर सकते हैं, आपका कोई नाम नहीं धरेगा; किंतु हम नारियों को तो ईश्वर ने कुढ़-कुढ़कर मरने के लिये ही बनाया है।"

मुरारी—"अगर स्वाधीनता हो, तो क्या तुम दूसरा विवाह कर लो।"

लज्जा—"मुझे ऐसी शिक्षा नहीं मिली है। हिंदू-बालिका को बाल्यकाल से ही सिखलाया जाता है कि स्वामी की सेवा में जीवन उत्सर्ग कर दो। हमें निःस्वार्थ, कामना-रहित प्रेम करना सिखलाया जाता है। हम जीवित अपने को भस्म कर सकती हैं। और, एक समय था, जब होती ही थीं। लेकिन अब भी हम लोग प्रसन्नता से स्वामी के अत्याचार सहती हुई हँसते-हँसते प्राण देती हैं, और आह तक नहीं करतीं। हमारी मा ने भी वही आदर्श नारी बनने की शिक्षा दी है। लेकिन रानी की बात दूसरी है, उन्हें पश्चिमीय ढंग की शिक्षा दी गई है। स्वतंत्र वायु-मंडल में पली हैं, जीवन का विशेष भाग अँगरेज़ी लड़कियों के सहवास में बीता है, तब भला अगर उनका दूसरा विवाह हो, तो क्या हर्ज है, और फिर निर्मल बाबू से तो उनका मन नहीं मिलता।"

मुरारी—"यह तुम्हारी धारणा ग़लत है कि रानी अपने को निर्मल बाबू से मुक्त करना चाहती है। उसमें अभी लड़कपन है। मुझे विश्वास है कि हिंदू-स्त्री चाहे जितने स्वतंत्र वायु-मंडल में पले, लेकिन हिंदू-संस्कार उसके हृदय में इतना घर बना लेते हैं कि सहज ही उनसे कोई अपने को छुड़ा नहीं सकता। एक हिंदू-स्त्री ईसाइन भी हो जाय, तो वह भी अपना जीवन एक ही पति की सेवा में व्यतीत कर देगी। फिर रानी तो एक हिंदू-बाला है, और हिंदू-समाज में पली है। वह भले ही निर्मल के व्यवहार से अप्रसन्न

हो, लेकिन निर्मल से वह कभी अप्रसन्न नहीं हो सकती। मैं विश्वास ही नहीं कर सकता।"

लज्जा ने हँसकर कहा—"ख़ैर, आप मुझसे क्यों लड़ते हैं? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है? आप अपनी बहन का बदला लेकर मुझे लज्जित करते हैं।"

मुरारी ने हँसते हुए कहा—"आपको लज्जित करने की शक्ति मुझमें कहाँ, लेकिन हाँ, आपके मन की धारणा दूर कर देना चाहता हूँ, जो रानी के प्रति है।"

लज्जा ने उत्तेजित स्वर में कहा—"वाह, यह कब मैंने कहा था कि रानीजी की सम्मति इस विवाह में है। अगर कहीं यह बात उनके कान में पड़ जाय, तो वह मेरे बारे में क्या सोचेंगी, मैं तो आपसे हँसी कर रही थी।"

मुरारी ने शांत भाव से उत्तर दिया—"सोचेंगी क्या, जो बात ठीक है, वही मैंने कही।"

लज्जा ने उत्तेजित स्वर में कहा—"मैंने कब कहा था, क्या आपकी इच्छा है कि मुझमें और उनमें झगड़ा हो जाय।"

लज्जा को उत्तेजित देखकर मुरारी ने हँसकर कहा—"आप बिगड़ती क्यों हैं?"

लज्जा ने उत्तर दिया—"आप ऐसी बातें ही करते हैं। झूठ-मूठ मुझे बदनाम करते हैं।"

मुरारी ने हँसकर कहा—"अच्छा-अच्छा, कोई उससे कहने नहीं जाता।"

लज्जा—"ठीक है, कोई कहने नहीं जाता, लेकिन तो भी..."

मुरारी—"अच्छा, अपराध हुआ, क्षमा कीजिए।"

लज्जा ने प्रसन्न होकर कहा—"अच्छा, क्षमा किया, लेकिन भविष्य में ऐसी ग़लती न होने पावे।"

मुरारी ने अपना मस्तक नत कर कहा—"श्रीमतीजी की आज्ञा शिरोधार्य है।"

यह कह मुरारी ने लज्जा का हाथ सप्रेम पकड़ लिया। उसे धीरे-धीरे दबाने लगे। कुमुदिनी दरवाज़े के बाहर खड़ी हुई सब देख रही थी। लेकिन सुन कुछ नहीं रही थी। वह उस स्थान से उस समय चल दी। कुमुदिनी बहुत कुछ देख चुकी थी। इतना ही उसके लिये पर्याप्त था। वह क्षोभ, ग्लानि और ईर्ष्या से जल उठी। क्षोभ अपने ऊपर, ग्लानि लज्जा और मुरारी की बातचीत से, और ईर्ष्या लज्जा के सौभाग्य से हुई। सभी उठकर उसके हृदय में भयानक संग्राम मचा रहे थे। उसका हृदय एक छोटा रण-स्थल बना हुआ था। विगत घटनाएँ सैनिक रूप में आ-आकर संग्राम को और घोर बना रही थीं। सबसे ज़्यादा उसे लज्जा के सौभाग्य से ईर्ष्या उत्पन्न हुई। लज्जा सुखी थी। पति का पूर्ण सुहाग उसे प्राप्त था। दोनो एक दूसरे के सुख से सुखी और दुख से दुखी थे। लज्जा अपने पति पर शासन करती थी, और मुरारी लज्जा पर, दोनो हास्य-विनोद में अपना समय व्यतीत करते, न कहीं कुढ़न थी, न क्रोध, न ग्लानि और न क्षोभ। और, वह स्वामी के रहते हुए भी, स्वामी-वंचिता थी। स्वर्गीय सुखागार में प्रवेश करने का अधिकार उसे प्राप्त था, लेकिन स्वेच्छा-पूर्वक रौरव-यंत्रणा भोग रही थी। अपनी सुहाग-राशि पर ठोकर मारकर चली आई थी। अगर वह चाहती, तो लज्जा से भी अधिक सुखी हो सकती थी। उससे कहीं अधिक सुहागिनी बन सकती थी, लेकिन इन सब सुखों पर तो उसी ने ठोकर मारी थी!

कुमुदिनी ने बहुत चाहा कि उसके हृदय की उलझनें सुलझ जायँ। वह अपने मन में प्रश्न करती और जो उत्तर मिलता, वह उसके विरुद्ध होता था। उसने अपने को हर तरह दोषी पाया।

हज़ार यत्न करने पर भी जब वह कृतकार्य न हुई, तो मन बहलाने के लिये बाग़ में चली गई। लेकिन वहाँ भी उसका मन न लगा। क्षितिज के पूर्व कोण में चंद्रदेव धीरे-धीरे प्रकट हो रहे थे। उनकी रजत-रश्मियाँ कुमुदिनी के सुंदर मुख पर क्रीड़ा कर रही थीं। संगमरमर के स्वच्छ हौज़ में लहराते हुए जल पर चंद्र-मयूखें खेल रही थीं, मानो कुमुदिनी को अपनी शोभा निरखने के लिये आमंत्रित करती हों। लेकिन कुमुदिनी को अपनी ही चिंता से छुट्टी न थी—वह प्राकृतिक सौंदर्य को कैसे देख सकती। एकाएक कुमुदिनी की दृष्टि चंद्रमा पर गई। थोड़ी देर उसे देखती रही, फिर धीरे-धीरे गुनगुनाकर कहा—"चंद्रदेव, तुझे देखकर मैं अपनी इस अग्नि को नहीं बुझा सकती, जब मैं स्वेच्छा से अपने 'निर्मल-चंद्र' को छोड़ आई, तो तुझे—कलंकी चंद्र को क्यों देखूँ?"

(४)

इलाहाबाद के जार्जटाउन में बाबू माधवचंद्र की कोठी बड़ी आलीशान बनी हुई है। पहले क़रीब पाँच-छ बीघे के घेरे में बाग़ है, और बीच में तीन मंज़िल की आलीशान कोठी खड़ी है। बाग़ में हर प्रकार के पौदे, पेड़, फूल और फल लगे हुए हैं। चारो तरफ़ सुर्ख़ी की सड़क बनी हुई है, और सड़कों के बीच में हरी-हरी घास का लान बना हुआ है। बाग़ दो भागों में विभक्त है। एक तो पुरुषों के लिये है और दूसरा स्त्रियों के लिये। दोनो तरफ़ बाग़ का प्लान एक ही है। तीन-चार बड़े-बड़े हौज़ बने हुए हैं, जिनमें रंग-बिरंगी मछलियाँ पड़ी हुई हैं। कोठी आदि सब उनके ऐश्वर्य का परिचय भली भाँति दे रही हैं।

बाबू माधवचंद्र इलाहाबाद के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट थे। रायबहादुर का ख़िताब मिल चुका था, और आशा थी कि शीघ्र और कोई सम्मान से सम्मानित किए जायँगे। ख़िताब के साथ-साथ पदोन्नति

की भी आशा थी। बाबू माधवचंद्र ने यह सब ऐश्वर्य अपने बुद्धि-बल, पराक्रम से पैदा किया था। आपके पिता एक साधारण हैसियत के आदमी थे। बड़ी मुश्किलों से पढ़ाया-लिखाया था। इनका भाग्य-नक्षत्र भी उन्नति पर था, किसी तरह से नायब तहसीलदार हो गए। इन्होंने उन्नति की, और फिर ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हो गए। सरकार के बड़े नमकहलाल नौकर थे। इनकी स्वामिभक्ति से प्रसन्न होकर सरकार ने इन्हें रायबहादुर बनाया था। इनकी पहुँच बड़ी-बड़ी दूर तक थी। लाट साहब के अंतरंग मित्रों में थे। अपनी कोठी में सभी को निमंत्रित कर चुके थे। कोई भी उच्चपदस्थ सरकारी नौकर, बड़े लाट साहब से लेकर कौंसिल के मेंबर तक, सभी उनका नमक खा चुके थे।

माधव बाबू के ज़मींदारी भी बहुत थी, और दिन-पर-दिन बढ़ती ही जा रही थी। ईश्वर ने सब तरह से मान रक्खा था। धन भी था, पुत्र भी था, कन्या भी थी और राज-सम्मान भी। सबने मिलकर माधव बाबू को मदांध बना दिया था। वह ऐसे-वैसे व्यक्ति से तो बात ही न करते थे, और 'काले आदमियों' में अपने बराबर किसी को कुछ नहीं समझते थे।

माधव बाबू की स्त्री बहुत दिन हुए जब काल-कवलित हो चुकी थी, जब कुमुदिनी की अवस्था केवल दो वर्ष की थी, उस समय वह आगरा की किसी तहसील में तहसीलदार थे।

कुमुदिनी के लालन-पालन का भार उन्हीं के सिर पड़ा। लोगों ने बहुत आग्रह किया कि वह दूसरा विवाह करें, लेकिन किसी तरह भी उन्होंने करना नहीं स्वीकार किया। कुमुदिनी का मुख देखकर वह विवाह करना भूल जाते थे। मुरारी और कुमुदिनी दोनो ही उन्हें प्राणों से अधिक प्यारे थे। शायद मुरारी से अधिक कुमुदिनी पर प्रेम था। जब से कुमुदिनी पैदा हुई, तब से उनकी उन्नति-पर-उन्नति होती

गई। जिस रोज़ कुमुदिनी जन्मी थी, उसी दिन उनको तहसीलदारी मिली थी। इस घटना से उनके हृदय में यह विचार बद्ध-मूल हो गया था कि यह उनकी लड़की बड़ी भाग्यशालिनी है। उन्होंने उसी दिन उसका नाम 'रानी' रक्खा। रानी उनकी आँखों की पुतली हो गई।

उनकी इच्छा थी कि वह रानी का विवाह किसी बड़े अमीर कुल में, किसी पूर्ण शिक्षित नवयुवक के साथ, करें। कुल भी चाहते थे, धन भी चाहते थे और शिक्षित सच्चरित्र युवक भी। इन तीनों का सम्मिश्रण उनके स्कूल के साथी दीवानजी के पुत्र निर्मल-चंद्र में मिला। दीवानजी एक बड़े पुराने शरीफ़ खानदान के थे—लाखों रुपयों की जागीर थी, और निर्मलचंद्र एम्० ए० पास सच्चरित्र नवयुवक थे। वह निर्मल को देखते ही मुग्ध हो गए। उन्होंने दीवानजी के सामने प्रस्ताव रक्खा। दीवानजी स्कूल की दोस्ती न भूले थे। उन्होंने स्वीकार कर लिया। माधव बाबू ने कुमुदिनी का विवाह निर्मलचंद्र के साथ कर दिया।

बाबू माधवचंद्र ने कुमुदिनी को शिक्षित करने में कुछ उठा न रक्खा था। उसे अँगरेज़ी स्कूल में पढ़ाया था। उन्होंने कभी कुमुदिनी की कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रक्खी। जब जिस बात की ज़िद की, वही उसे दी गई। कुमुदिनी को वह अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। जैसा वर वह चाहते थे, वैसा ही उनको मिला, और उसके हाथ में सौंपकर निश्चिंत हो गए। लेकिन जब फल उनकी आशा के विपरीत हुआ, तो उनके क्षोभ-दुःख का कोई ठिकाना न रहा। कुमुदिनी को दुःख देने-वाले को वह कभी क्षमा न कर सकते थे। वह कभी भी कुमुदिनी की बात का अविश्वास न करते थे। कुमुदिनी की बातें सुनकर निर्मल पर बेहद क्रोध हुआ। वह क्रोध से अंधे हो गए। कुमुदिनी को सुखी करने के लिये वह अकृत्य कृत्य भी करने पर कटिबद्ध हो गए।

वह उसका द्वितीय विवाह कर देने की इच्छा करने लगे। कुमुदिनी की पति-निंदा, सास-निंदा सुनकर उन्हें विश्वास हो गया कि कुमुदिनी इस विवाह से असंतुष्ट है।

माधव बाबू एक समाज-सुधारक भी बनना चाहते थे। इसका परिचय वह मुरारी के विवाह के अवसर पर दे चुके थे। उन्होंने विवाह में कोई इक़रार नहीं किया और न यह ज़ाहिर किया कि वह इतना दहेज़ लेंगे। उन्होंने केवल लड़की देखना चाहा और अपने मेहमानों की अच्छी ख़ातिरदारी। बाबू मोहनलाल (मुरारी के श्वशुर) लाट साहब के दफ़्तर में क्लर्क थे, लेकिन उनकी हैसियत भी साधारणतः अच्छी थी।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, त्यों-त्यों उनके मन में यह धारणा बद्धमूल होती गई कि कुमुदिनी को दूसरे विवाह द्वारा ही सुखी कर सकते हैं। उनकी तबियत निर्मल की तरफ़ से बेतरह हट गई थी। वह उसको समझा-बुझाकर काम निकालना नहीं चाहते थे। इस पथ में एक बड़ा भारी कंटक था, वह उनका आत्मगौरव। वह एक काले व्यक्ति के सामने अपने को हेय नहीं करना चाहते थे, वह चाहे उनका जामाता ही क्यों न हो। उन्होंने अच्छी तरह निश्चय कर लिया था कि कम-से-कम उनके प्यार की रानी निर्मल के घर नहीं जाने पाएगी। इस विषय में उनके दिमाग़ में नित्य नए-नए चक्र आते थे, लेकिन यह निश्चय न कर सकते थे कि किस चक्र को ग्रहण करें।

इस घटना को घटित हुए दो-तीन महीने हो गए, लेकिन माधव बाबू के विचारों ने पलटा नहीं खाया, बल्कि वे और दृढ़ होते गए। कुमुदिनी से इस विषय में कोई सलाह लेने की अथवा पूछने की कोई आवश्यकता ही न समझते थे, क्योंकि वह जानते थे कि वह अपने मुख से कभी न कहेगी कि मैं दूसरा विवाह करना चाहती हूँ, या मेरी इच्छा है। उन्हें यह विश्वास हो ही चुका था कि कुमुदिनी

निर्मल को तनिक नहीं चाहती—ज़रा भी प्रेम नहीं करती ; क्योंकि वह अवहेलना करता है। ज्यों-ज्यों वह इन बातों को सोचते, त्यों-त्यों उनको अपने किए हुए सिद्धांतों पर विश्वास होता और सत्यता मालूम होती। इतना सब होते हुए भी, न-जाने क्यों उनको कुमुदिनी से कुछ कहने का साहस न होता। वह कहने के लिये मुँह खोलने, पर न-जाने क्यों उनकी बात उनके मुख में ही रह जाती, और वह प्रकट न कर पाते, अंत में टालने के लिये कोई तत्त्व-हीन बात कह बैठते।

मुरारी के प्रतिवाद से वह असंतुष्ट हो ही चुके थे। उस दिन से उन्होंने उससे एक तरह से बोलना छोड़ दिया। उनको पूरी आशा थी कि मुरारी उनका साथ देगा, परंतु मुरारी से भी उनको सहायता न मिली, सहायता मिलनी तो दूर रहा, उसने प्रतिवाद और विरोध करना शुरू कर दिया। वह इस बात से और भी चिढ़ गए। जब घर के ही लोग उनके विरुद्ध हुए जाते हैं, तो बाहर के कब साथ देंगे। दूसरे, घर का भेदिया लंकाढाही होता है। पुत्र ही जब पिता का विरोध करेगा, तब दूसरा कौन हिमायती बनेगा। यद्यपि माधव बाबू कुछ मुरारी के व्यवहार से दब तो गए, लेकिन उन्होंने अपने विचारों को बिलकुल छोड़ नहीं दिया। वह रुक गए थोड़ी देर के लिये, लेकिन हमेशा के लिये नहीं।

(६)

संध्या हो चुकी थी। दीप प्रज्वलित हो चुके थे। कुमुदिनी अन्यमनस्क मन से अपने कमरे में प्रविष्ट हुई। थोड़ी देर तक वह द्वार पर खड़ी रही। धीरे-धीरे अंदर घुसी। भीतर जाकर 'स्वीच' दबा दिया, कमरा जगमगा उठा। कमरा ख़ूब सजा हुआ था। कमरे के बीचो-बीच एक गोल मेज़ थी और उसके चारों तरफ़ मख़मल से मढ़ी हुई कुरसियाँ पड़ी हुई थीं। एक तरफ़ पियानो रक्खा हुआ था, और उसके पास ही एक मेज़ पर हारमोनियम उस कमरे की शोभा बढ़ा रहा था। चार-पाँच सुंदर तैल चित्र दीवार पर लगे हुए थे। कमरे के

इस ओर जहाँ पर कुमुदिनी की शय्या सुसज्जित थी, उसके सिरहाने निर्मल बाबू का चित्र भी टँगा हुआ था। कुमुदिनी आकर उस चित्र की ओर देखने लगी। आज कुमुदिनी ने चित्र में कुछ विचित्रता देखी। एक अपूर्व सौंदर्य देखा। एक अद्भुत आकर्षण देखा। एक नवीन मनोहरता देखी, और देखा एक अनुपम लहराता हुआ तेज। आज उसके हृदय में एक नवीन जोश ने लहर मारी। उसकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। उसे मालूम हुआ कि निर्मल का मुस्किराता हुआ चेहरा ज़ोर से हँस पड़ा। हँसी का मीठा गुंजन कमरे में झंकृरित हुआ। उसने चौंककर देखा। कमरे में कोई नहीं था। वह फिर इधर-उधर देखकर चित्र की ओर देखने लगी। अब की बार वह चित्र साधारण रूप में था। वह चित्र को इस तरह देख रही थी, जैसे एक नवोढ़ा बालिका अपने भावी पति के चित्र की ओर देखती है। बड़ी तन्मयता से कुमुदिनी चित्र देख रही थी। वह बड़ी देर तक देखती रही, लेकिन उसका मन न भरा—उसके चित्त की वृत्ति नहीं शांति हुई—उसकी प्यास न बुझी—लालसा बढ़ती ही गई। वह कुछ और चाहती थी—उसका मन किसी दूसरी वस्तु के लिये मचला जा रहा था। वह वस्तु—थे निर्मल स्वयं!

"हाय अभागिनी! सुखों की राशि पर किसने अग्नि अपने हाथों से रक्खी थी?

उसके मन ने उत्तर दिया—"मैंने स्वयं।"

"किसने उनके अनंत प्रेम—उनके अविराम अनुराग-स्रोत—उनके अगाध आदर—उनके असीम सुहाग पर लात मारी थी?"

मन ने निर्लज्जता से उत्तर दिया—"मैंने।"

"किसने सास की अवहेलना—अनादर—तिरस्कार किया था?"

मन ने उत्तर दिया—"मैंने।"

विवेक ने उसे धिक्कारा—"हाय अभागिनी, तू मर क्यों न गई!"

कुमुदिनी ने अपनी धधकती अग्नि को, अपने प्रचंड उत्ताप को चित्र देखकर, आँसू बहाकर और पछताकर बुझाना चाहा! पर निर्बोधिनी की ज्वाला न बुझी। उसने एक सुंदर गजरों से चित्र की पूजा कर शांत करना चाहा। कुमुदिनी अचेत अवस्था में गजरे के पास आई। उसने काँपते हुए हाथों से धीरे-धीरे उठा लिया। वह पुतली की भाँति चित्र की ओर बढ़ी, और कंपित हृदय से रोमांचित हाथों से चित्र को पहना दिया। अब की बार फिर हँसी कमरे में गूँज गई। अब की हँसी का मृदु गुंजन नहीं था—एक ठहाका था। कुमुदिती चौंकी, और गजरा सरककर पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह भौंचकी बनकर देखने लगी। सामने मुस्किराती हुई लज्जा खड़ी थी। वह लजा गई। एक अजीब दुर्बलता से उसके नेत्र मुँद गए, और मस्तक नत हो गया। वह एक धन-चोर की तरह खड़ी रह गई।

लज्जा ने हँसकर कहा—"वाह बहन, ख़ूब! छिपा-छिपाकर पूजा होती है। चुरा-चुराकर माला पहनाई जाती है। प्रतिबिंब को क्या पहनाती हो—सजीव को पहनाया होता।"

कुमुदिनी को लज्जा के इस उत्तर में व्यंग्य और हास्य जान पड़ा। वह झिझकी और हटी। लेकिन फिर रुकी, और गर्व से नत मस्तक उन्नत कर बढ़ी। उसकी आँख में उज्ज्वलता आ गई। उसने सहास्य कहा—"सजीव के गले में गजरा डालना तुम्हीं को मुबारक हो, मुझे अपने ही में सुख है।"

लज्जा ने हँसकर उत्तर दिया—"यह ख़ूब, पर किसने वह सौभाग्य-सुख तुमसे छीन लिया था?"

कुमुदिनी पर यह दूसरा प्रहार था। क्षण-भर के लिये उसके मुख का भाव फिर बदला और फिर सँभालकर अपने को कहा—"मैंने।"

लज्जा ने तीसरी बार कहा—"इसमें किसकी निर्बोधिता थी?"

अब कुमुदिनी अपने को सँभाल न सकी। उसके धैर्य ने उसको

जवाब दे दिया। उसके दबे हुए आत्मगौरव ने जोः
का उफान ऊपर आ गया। वह उत्तर न दे सकी। उसव
घुचा आए, और वह मौन होकर लज्जा की ओर देखती र.

लज्जा उसके भाव को ताड़ गई। वह भी लज्जित हो
मन का क्षोभ मिटाने के लिये कहा—"माफ़ क
तात्पर्य तुम्हें दुखी करना न था।"

क्रोध की जगह अभिमान अपना अधिकार

उसने रुद्ध कंठ से कहा—"ठीक है—ने में और
मज़ा आता है।"

लज्जा ने बड़ी अधीनता से कहा—"भ करो। मैंने
जान-बूझकर नहीं कहा था। अगर मैं ात इतनी बढ़
जायगी, तो मैं कभी न कहती स्वीकार करती हूँ।
भाई, मुझे माफ़ करो।"

कुमुदिनी ने हँसकर क सी तरह क्षमा भैया से
माँगी होती, तो वह तु को सम्राज्ञी बना लेते।"

लज्जा ने तुरंत उ कैसे सम्राज्ञी बन पाऊँ, सम्राज्ञी
तो तुम हो।"

कुमुदिनी लजि

कुमुदिनी ने द कहा—"क्यों भाभी, तुम तो भैया
पर बहुत क ी हो। इतनी सख़्ती न किया करो।"

लज्जा ने हा—"कैसा शासन भई। क्या मैं तुम्हारे
भैया पर कती हूँ, जो एक ग़रीब घर की लड़की हूँ।
ग़रीब घा शासन करना क्या जानें, और न उनको
शोभता

कुमु व्यंग्य पर कुढ़ गई। उसने पुनः अपने को
सँभालक तुम कहती हो, बात वैसी नहीं है। मैं देखती हूँ

ूगारिनी
ं हैं?"
या?"
खा है।
......।
नक तो
बिठाल-
। हाँ,
वह है
के सभी
। वश में
—मातृ-
ल्यमयी
भावनीय
ीं किया
ी, और
आवेश,
—"यही
नत नहीं
उन पर
पर जब
रहते हैं,

कि ग़रीब घर की लड़कियाँ ही शासन करना जानती हैं और करती हैं।"

लज्जा ने कहा—"आपकी धारणा और तजुर्बा ठीक नहीं है। जिनके नौकर-चाकर होते हैं, वही शासन करना जानते हैं।"

कुमुदिनी ने उत्तर दिया—"यहाँ पर नौकर-चाकर के शासन की बात नहीं है, स्वामी के शासन की है।"

लज्जा ने कहा—"जिसने कभी नौकरों तक पर शासन नहीं किया है, भला वह स्वामी पर क्या शासन करेगा?"

कुमुदिनी ने मंद मुस्कान-सहित कहा—"लेकिन आप तो करती हैं।"

लज्जा ने सरलता से कहा—"किसने कहा? जो इष्टदेव हैं, पूज्य हैं, आराध्य हैं, सर्वस्व हैं, उन पर मैं अज्ञान, मूढ़, अबूझ शासन करूँगी!"

कुमुदिनी ने उत्तर दिया—"मेरे दिल ने कहा, मेरी आँखों ने कहा और कहा किसने? भैया से जवाबदेही करना, हरएक बात का निरूपण करवाना, समझाना-बुझाना शासन नहीं है, तो क्या है?"

लज्जा लजा गई।

उसने धीरे-धीरे कहा—"क्या आप छिपकर भी बातें सुनती हैं? आपमें यह भी आदत है? आपने कब से यह सीखा?"

कुमुदिनी ने विजय-दृष्टि-निक्षेप करके कहा—"जब से आपने शासन करना सीखा। पहले मेरे भाई साहब बड़े उद्दंड और उग्र स्वभाव के थे, लेकिन आपने उनको अपनी हुकूमत से गऊ बना दिया।" फिर विनय के साथ कहा—"भाभी, मुझे भी यह मंत्र सिखा दो, वह गुर सिखा दो, जिससे तुमने भैया को इतना वश में, अपनी मुट्ठी में कर लिया है। भाभी, मेरी प्यारी भाभी, मुझे भी सिखा दो, मैं तुम्हारे पैर पड़ूँ।"

लज्जा ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"क्या मुझे कोई जादूगरिनी समझ लिया है ? कहीं स्वामी भी मंत्र से वशीभूत किए जाते हैं ?"

कुमुदिनी ने पूछा—"फिर कैसे तुमने वश में किया।"

लज्जा ने उत्तर दिया—"कौन कहता है, पागल हुई हो क्या ?"

कुमुदिनी ने उत्तर दिया—"मैंने अपनी आँखों से स्वयं देखा है। मैं सचमुच पागल हूँ। अगर पागल न होती, तो अपने........। क्या तुम्हारा हृदय पत्थर से भी ज़्यादा कठोर है। तनिक तो पसीजो।"

लज्जा ने कुमुदिनी को सप्रेम ले जाकर दुग्धफेन शय्या पर बिठाल-कर कहा—"स्वामी कहीं मंत्र आदि से वश में किए जाते हैं। हाँ, मैं भूलती थी—एक मंत्र है, और वह बड़ा कठिन मंत्र है। वह है सेवा ! सेवा एक ऐसा मंत्र है, जिससे स्वामी क्या, संसार के सभी जीव वश में किए जा सकते हैं। स्वामी को प्रसन्न रखना ही वश में करना है। प्यारी बहन, कहावत है 'सेवा का फल मेवा'।"

कुमुदिनी ने लज्जा के वक्षःस्थल पर अपना मुख रख लिया—मातृ-हीन बालिका की तरह छिपा लिया। लज्जा भी एक वात्सल्यमयी के रूप में पीठ पर सस्नेह हाथ फेरने लगी।

आज कुमुदिनी ने वह अनुपम शांति लाभ की—वह अभावनीय सुख अनुभव किया, जो उसने अपने जीवन-भर और कभी नहीं किया था। कुमुदिनी अबूझ बालिका की भाँति फूट-फूटकर रोने लगी, और लज्जा की भी आँखें सूखी न रहीं। लेकिन कुमुदिनी का वह आवेश, वह तूफ़ान क्षणिक था। उसने अपने को सँभालकर कहा—"यही तो मुझसे नहीं हो सकता। मैं किसी के सामने अपने को नत नहीं कर सकती, और ख़ासकर उनके सामने। मैं समझती हूँ कि उन पर मेरा अधिकार है, और उसी के बल पर अकड़ जाती हूँ। पर जब मेरे हृदय पर ठेस पहुँचती है, और वह मौन हो सब देखते रहते हैं,

यही नहीं और व्यंग्य करते हैं, तो न-जाने जी कैसा होने लगता है, और हृदय में एक भीषण झंझावात-सा खड़ा हो जाता है। उस समय मैं अंधी हो जाती हूँ। कुछ नहीं सूझता। उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं रहता, रहती है एक तीव्र हृदय-भेदी जलन और अशांति।"

लज्जा ने सुनकर उत्तर दिया—"जैसा तुम्हारा उन पर अधिकार है, वैसा ही उनका भी तो तुम पर अधिकार है। स्वामी के ऊपर शासन करना सहल काम नहीं है। उसके लिये पहले अपने को नत करना पड़ता है, और फिर धीरे-धीरे शासन की बागडोर हाथ में ली जाती है। लेकिन उस शासन में विचार नहीं है, अधिकार का अपव्यय नहीं है, अशांति नहीं है, है केवल असीम प्रेम और अटल अनुराग। वह हृदय और मन का शासन होता है। अलभ्य वस्तु तपस्या से प्राप्त होती है। इसकी प्राप्ति की तपस्या है अपने को स्वामी के चरणों पर उत्सर्ग कर देना।"

कुमुदिनी ने उत्तर दिया—"यही तो कठिन है। यदि कभी अवसर प्राप्त हुआ ....."

इसी समय किसी ने बाहर से पुकारा—"रानी!"

रानी के मुँह की बात मुँह में रह गई। लज्जा और कुमुदिनी दोनों उठ खड़ी हुईं। आगंतुक मुरारी थे।

मुरारी ने भीतर आकर कहा—"क्या हो रहा है रानी, क्या तबियत ख़राब है?"

कुमुदिनी ने उत्तर में कहा—"नहीं भैया, ऐसे ही भाभी से बातें कर रही थी।"

मुरारी ने फिर लज्जा की ओर देखकर कहा—"क्या आज किसी बड़े सुंदर विषय पर लेक्चर दिया जा रहा था?"

लज्जा ने मुस्किराकर कहा—"लेक्चर तो न था, पर हाँ, आपकी बहन साहबा पूछ रही थीं......। उफ़्!"

कुमुदिनी ने लज्जा का आशय समझकर, ज़ोरों से चुटकी काट-कर, धीरे से कहा—"हैं, क्या करती हो। चुप। ख़बरदार!"

मुरारी ने हँसकर कहा—"कहिए, रुक क्यों गईं। रानी की शिकायत करने आई हैं?"

लज्जा ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं इस लायक़ नहीं हूँ कि मैं उनकी शिक़ायत कर सकूँ। पर कुछ कहने भी पाऊँ। यहाँ तो चुटकी काटी जाती है। देखो, ख़ून तक निकल आया। उफ़् कितनी ज़ोर से काटा!"

मुरारी—"कहीं कोई नस तो नहीं कट गई। क्या डॉक्टर को बुलाने जाना पड़ेगा?"

लज्जा—"धन्यवाद। कष्ट न कीजिए। आप मेरे लिये डॉक्टर न बुलाइए, लेकिन अपनी बहन साहबा के लिये निर्मल बाबू को जल्दी बुलवाइए, जिनके चित्रों की पूजा होती है। देखिए, वह अभी तक ज़मीन पर गजरा पड़ा हुआ है। मैंने बीच ही में आकर टोंक दिया था, तो पूजा भी पूरी न हो पाई।" फिर ज़रा हटकर कुमुदिनी से कहा—"अब तो बस करो।"

कुमुदिनी की विचित्र दशा थी। शर्म, ग्लानि, अभिमान से कटी जा रही थी। उसका मुख प्रदीप्त दीपक की भाँति लाल था। लज्जा की धीमी-धीमी हँसी ज़हर का काम कर रही थी।

लज्जा ने एक मुस्कान-सहित फिर कहा—"और पूछ रही थीं कि स्वामी किस तरह वश..............? ठहरिए-ठहरिए, आप जाती कहाँ हैं?"

कुमुदिनी तड़पकर दामिनी की भाँति कमरे से निकल गई। लज्जा और मुरारी दोनो हँसने लगे।

मुरारी ने लज्जा से पूछा—"क्यों, आख़िर बात क्या थी?"

लज्जा—"बात कुछ नहीं। आप धीरे-धीरे राह पर आ रही हैं।

ज़हर का दाँत तो शायद टूट गया है, लेकिन ज़हर अभी तक नहीं गया है।"

मुरारी—"अर्थात्—"

लज्जा—"और मैं कुछ नहीं जानती। आज जो अनर्थ मैं कर बैठी हूँ, देखो, उसका परिणाम क्या होता है। साँप के बिल में हाथ डाल दिया है। ईश्वर ही रक्षा करे।"

मुरारी ने उत्तर दिया—"आप भुगतोगी। अच्छा हुआ, मज़ा ही देखने में आवेगा।"

(७)

हर्ष का स्रोत उमड़ पड़ा। वर्षों की अभिलाषा आज पूर्ण हुई। माधव बाबू का भाग्य-नक्षत्र और चमक उठा। उन्हें सम्राट् ने 'सर' की उपाधि से नवीन वर्ष के उपलक्ष में विभूषित किया। माधव बाबू के तमाम एहसानों को, तमाम दावतों के भार को, 'माधव बाबू' को 'सर' (Knight) बनाकर अदा कर दिया। उनकी भी चिरपोषित अभिलाषा पूर्ण हो गई।

मुफ़स्सिल मित्रों के बधाइयों के पत्र की भरमार थी और शहर के तो स्वयं बधाई देने आए थे। ऐसा मालूम पड़ता था कि हर्ष-स्रोत का बाँध माधव बाबू के घर में टूट गया है। उनकी ख़ुशी का क्या ठिकाना? गर्व से वह अकड़े जा रहे थे। मित्रों ने यह तय किया कि कुछ जलसा होना चाहिए। माधव बाबू ने भी सम्मति दे दी। बाग़ सजना आरंभ हुआ। बिजली के लैंप डोरियों से चारो तरफ़ बाँधे जाने लगे। कोठी के ऊपर-नीचे सब जगह हरे-लाल 'बल्ब' लगा दिए गए। एक अपूर्व समारोह था। एक अनुपम दृश्य था।

माधव बाबू एक समाज-सुधारक थे। मित्रों ने बहुत ज़ोर दिया कि जानकीबाई बुलाई जायँ, और साथ में दो-तीन और। लेकिन उन्होंने

यह किसी तरह स्वीकार नहीं किया। बड़े भारी भोज का प्रबंध किया, और देसी नाच की जगह विलायती नाच का सरंजाम किया। 'फ़ैंसी ड्रेस बाल' (Fancy Dress Ball) देना ही निश्चित हुआ।

शीत-काल की संध्या थी। कालिमा धीरे-धीरे प्रसारित होकर संसार को ढकती जा रही थी। सहसा सहस्रों दामिनियाँ लपक उठीं। जार्जटाउन में माधव बाबू की कोठी जगमगा उठी। सतरंग की बत्तियाँ रात्रि में ज्योतिर्मय इंद्र-धनुष की सूचना देने लगीं। बाग़ में सुमधुर स्वर से बैंड बजने लगा। एक अजीब चहल-पहल शुरू हो गई। पथिक रुककर उस अपूर्व समारोह को बग़ैर देखे आगे न बढ़ सके। बाग़ के चारो तरफ़ एक छोटा मेला लग गया। लोग उचक-उचककर देखने लगे कि भीतर क्या हो रहा है। इतनी चहल-पहल थी, लेकिन शोर का नाम न था। माधव बाबू अपने कुछ अंतरंग मित्रों-सहित हँस-हँसकर बातें कर रहे थे। उनकी ख़ुशी का अंत न था। वह इस तरह प्रसन्न थे, मानो उन्हें स्वर्ग का साम्राज्य मिल गया हो।

एक मित्र, जो नगर के कोतवाल थे, बोले—"हुज़ूर, अब तो आपकी मुराद पूरी हुई।"

एक दूसरे घनिष्ठ मित्र ने कहा—"वाह! अब भी न होगी। 'सर' का ख़िताब मिला, और इंपीरियल सर्विस में एक बड़ा भारी पद मिला।

डिप्टी साहब ने कहा—"यह तो सब आप लोगों की दुआ और ईश्वर की मेहरबानी से हुआ। लेकिन भाई, मैंने भी किसी अँगरेज़ को अपना नमक खिलाए बग़ैर नहीं माना।"

कोतवाल साहब ने फ़ौरन् उत्तर दिया—"जी हाँ हुज़ूर, यह तो आप बेशक करते रहे। 'जो देता है, वह पाता भी है' मसल ही मशहूर है।"

एक मित्र ने कहा—"लेकिन भाई, इस वक्त तो एक कोकिल-कंठी की ज़रूरत थी। जानकीबाई, विद्याधरी, नवाबपुतली, मुमताज़, इनमें से कोई आती, तो आह! किस तबियत से रात कटती।"

दूसरे मित्र ने कहा—"मज़ा तो यार बेशक था, लेकिन इस 'बाल' में भी कुछ कम मज़ा नहीं है। आज डिप्टी साहब का कमरा इंद्र का अखाड़ा हो जायगा।"

कोतवाल साहब ने कहा—"भाई, घबराते क्यों हो, डिप्टी साहब तुम लोगों की मंशा अधूरी नहीं रक्खेंगे। ज़रूर मुराद पूरी करेंगे।"

डिप्टी साहब ने कहा—"उसमें क्या धरा है, चुपचाप बैठी बीबो-जान की ख़ुशामद करो। जो मज़ा विलायती चीज़ों में है, वह भला देशी में कब मुयस्सर है।"

एक मित्र ने उत्तर दिया—"जी हाँ, लेकिन मुजरे में भी एक अजीब लुत्फ़ है। कम-से-कम इस मौक़े पर तो आपको करना वाजिब है। एक दिन गोरे लोगों की दावत सही, तो कम-से-कम एक रोज़ तो देशी लोगों की सही।"

सभी मित्रों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। लाचार होकर माधव बाबू को अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

सात बजा। मेहमान लोग आने लगे। मोटरों की भीड़ लग गई।

माधव बाबू बड़े कमरे के दरवाज़े पर खड़े होकर सबका स्वागत कर रहे थे। साहब लोग अपनी अर्धांगिनियों को साथ लिए आ रहे थे, और एक पास के कमरे में अपना सामान देकर कमरे में प्रवेश कर रहे थे। मधुर गुंजन से हाल गुंजरित हो रहा था। बहुत-से देशी साहब भी निमंत्रित थे, लेकिन वे 'सिंगिल' ही थे, 'डबल' नहीं थे। उनकी Better halves (पत्नियाँ) उनके घर ही में थीं। और, वे लोग घूर-घूरकर 'परिस्तान की परियों' को अपने नेत्रों से

शिकार कर रहे थे। चारो तरफ़ परिचय दिए जा रहे थे, और हो रहे थे। मुरारी बाबू भी चुपचाप पिता की बग़ल में खड़े थे, लेकिन वह एक तरह इस जलसे से अलग ही थे।

एकाएक कांसर्ट बज उठा। सब लोग नाच-घर की ओर जाने लगे, जोड़ चुन लिये गए, और बड़ी धूम से नाच शुरू हो गया। सब लोग नाच देखने लगे, और बीच में करतल-ध्वनि भी पड़ रही थी। चारो तरफ़ रिफ़्रेश्मेंट की टेबुलें लगी हुई थीं और लोग अपने इच्छानुसार जलपान भी कर लेते थे।

लगभग डेढ़ बजे नाच ख़त्म हुआ। निमंत्रित सज्जन खाने के कमरे की ओर चले। टेबुलें लगी हुई थीं और उस पर गरम-गरम विलायती खाना रक्खा हुआ था। सब लोग अपने-अपने पेयर के साथ बैठ गए। खाना शुरू हो गया। बीच-बीच में हास्य की हर्ष-ध्वनि भी हो रही थी। सभी लोग माधव बाबू की रुचि और सौजन्य की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे, उनकी 'हेल्थ' के लिये गिलास-पर-गिलास ख़ाली किए जा रहे थे। माधव बाबू भी मुस्किरा-मुस्किराकर धन्यवाद दे रहे थे।

भोजन समाप्त होने के पश्चात् सब लोग विदा लेने लगे। धन्यवाद का बाज़ार बड़ी ज़ोरों से गर्म था। 'शेकहैंड' भी अविराम गति से चल रहा था। माधव बाबू सहास्य सबको विदा दे रहे थे। धीरे-धीरे हाल ख़ाली होने लगा। अब केवल देशी साहब ही रह गए थे। वे लोग भी विदा माँगने आए, और जाने लगे।

माधव बाबू ने एक देशी साहब को रोककर कहा—"मिस्टर वर्मा, ज़रा आप ठहर जाइए। आपसे एक विशेष काम है।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"मुझसे! अच्छा।"

सब मेहमानों के चले जाने के बाद उन्होंने मिस्टर वर्मा से कहा—"मैं चाहता हूँ कि आपको विशेष रूप से अपने लड़के से

परिचय करा दूँ, और यह भी चाहता हूँ कि आप दोनो में मित्रता भी हो जाय।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"जी हाँ, यही आपकी विशेष दया होगी। मैं भी यही चाहता हूँ।"

माधव बाबू ने मुरारी की तरफ़ देखकर कहा—"मिस्टर देवदत्त वर्मा एम्० ए०, आई० सी० एस्०, देहली के 'दत्त'-ख़ानदान के बाबू गौरीदत्त के सुपुत्र।"

फिर मिस्टर वर्मा की तरफ़ देखकर कहा—"मुरारीशंकर सिनहा एम्० ए०, एल्०-एल्० बी० स्टूडेंट मेरे पुत्र।"

दोनो में कर-मर्दन हुआ।

माधव बाबू ने मुरारी से कहा—"मुरारी, मैं चाहता हूँ कि तुम मि० वर्मा से विशेष रूप से घनिष्ठता कर लो; क्योंकि इनके-जैसा ख़ुशमिज़ाज, सरल-स्वभाव और नई रोशनी का नवयुवक मिलना अगर असंभव नहीं, तो कम-से-कम मुश्किल ज़रूर है।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"आह! आप तो तारीफ़ के पुल बाँधे जा रहे हैं, आज से मिस्टर मुरारीशंकर मेरे घनिष्ठ मित्रों में होंगे, और मैं उनकी वही इज़्ज़त करूँगा, जो एक भाई की की जाती है।"

मुरारी ने उत्तर दिया—"मैं आपसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। यह मेरा परम सौभाग्य था। आपके इस व्यवहार के लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।"

मिस्टर वर्मा ने एक सिगार में आग लगाते हुए कहा—"रात बहुत बीत गई है, अब विदा दीजिए।"

माधव बाबू ने कर-मर्दन करते हुए कहा—"हाँ, रात तो ज़रूर बीत गई है। अच्छा, कल्लू!"

कल्लू ख़ानसामा ने आकर कहा—"जी हाँ।"

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा की कार (मोटर) ले आने को बोलो।"

कल्लू चला गया। उसके पीछे-पीछे मिस्टर वर्मा भी चले गए।

मुरारी साथ हो लिया। मुरारी ने कहा—"अब आपके दर्शन कब प्राप्त होंगे?"

मिस्टर वर्मा ने एक मधुर हास्य करके कहा—"वेल मुरारी, हम लोग अब मित्र हो गए हैं। हम लोगों में किसी प्रकार की भी Formality (दिखावट) न रहनी चाहिए।"

मुरारी ने लज्जित होकर कहा—"ठीक है। अब हम लोग ज़रूर मित्र हैं, लेकिन........"

मिस्टर वर्मा ने बड़ी घनिष्ठता के साथ मुरारी के कंधे पर हाथ रखकर और मधुर हास्य-ध्वनि करते हुए कहा—"अब लेकिन क्या......? कुछ संकोच न होना चाहिए। कल मैं शाम को आपके यहाँ आऊँगा और फिर हम लोग दोनो घूमने चलेंगे।"

यह कहकर दोनो में कर-मर्दन हुआ, और मिस्टर वर्मा मोटर में बैठकर चले गए।

(८)

मिस्टर वर्मा की घनिष्ठता बढ़ती गई। न-मालूम क्यों माधव बाबू विशेष रूप से मिस्टर वर्मा के अनुगत थे। वह हमेशा उन्हीं का पक्ष लेते। घंटों उनकी तारीफ़ में पुल बाँधते। मिस्टर वर्मा की इतनी ख़ातिरदारी होती, जिसकी कोई हद न थी। मिस्टर वर्मा को अपने घर से भी ज़्यादा माधव बाबू के यहाँ सुख प्राप्त था। वह चौबीस घंटों में से अट्ठारह घंटे इन्हीं के यहाँ बिताते थे। माधव बाबू ने इनका परिचय अपनी प्यारी कुमुदिनी से भी करवा दिया।

एक दिन मिस्टर वर्मा और माधव बाबू कमरे में बैठे हुए चाय पान कर रहे थे।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"कब आप देहली जायँगे?"

माधव बाबू—"अभी तो छुट्टी के ११ महीने बाक़ी हैं। अभी से जाकर वहाँ क्या करेंगे।"

मिस्टर वर्मा—"मेरी इच्छा थी कि आप एक बार मेरे साथ चलते। वहाँ चलकर मैं आपका परिचय अपने पिता से करवा देता। कल पिताजी की चिट्ठी आई है, उसमें आपसे परिचय प्राप्त करने के लिये बड़ी उत्सुकता प्रकट की है। वह यह जानकर और प्रसन्न हो गए हैं कि आपको अब से देहली में ही रहना पड़ेगा।"

माधव बाबू ने हँसते हुए कहा—"ओहो, तो आपने मेरे बारे में अपने पिता को भी लिख दिया है।"

मिस्टर वर्मा ने भी हँसकर कहा—"जी हाँ, इसमें दोष क्या है? मेरे पिता आपसे परिचय प्राप्त करके बड़े प्रसन्न होंगे।"

माधव बाबू ने संतुष्ट-पूर्ण हँसी हँसकर कहा—"यह मेरा परम सौभाग्य होगा। आपकी कोठी कहाँ है?"

मिस्टर वर्मा ने सकुचाते हुए उत्तर दिया—"हमारी कोठी आपकी-जैसी नहीं है। शहर के बाहर एक बड़ा बँगला है। शहर में भी दो-तीन बँगले और मकान हैं, लेकिन वे सब किराए पर उठे हैं।"

माधव बाबू ने पूछा—"यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। बाबू 'गौरीदत्त' का नाम शायद ही ऐसा कोई हो, जो न जानता हो। मैंने उन्हें देखा है, लेकिन परिचित नहीं हूँ। अब की बार ज़रूर ही मिलूँगा।"

मिस्टर वर्मा ने उत्तर दिया—"यह मेरे और पिताजी के लिये सौभाग्य की बात होगी।"

माधव बाबू ने डबल रोटी का एक टुकड़ा काटते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, आपकी इस हिंदू-समाज के बारे में क्या राय है?"

मिस्टर वर्मा ने चाय का प्याला ख़ाली करके कहा—"हिंदू-समाज एक बिलकुल कूड़ा-करकट है। अगर मेरी सामर्थ्य में होता, तो मैं समाज के हरएक नेता को गोली मार देता। लेकिन क्या करूँ?"

माधव बाबू ने उल्लास-पूर्ण नेत्रों से मिस्टर वर्मा की ओर देखते हुए कहा—"ठीक यही राय मेरी भी है। यह शायद आपको मालूम हो गया होगा कि मैं एक समाज-सुधारक भी हूँ।"

मिस्टर वर्मा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ। इसका परिचय मुझे उसी दिन मिल गया था, जिस दिन बाबू ज्ञानसिंह ने आपसे मेरा परिचय करवाया था। इसके अतिरिक्त इसका कुछ-कुछ आभास बराबर मिलता गया। मैं भी आपकी तरह से समाज का सुधार करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है कि कम-से-कम यह समाज वैसी ही हो जाय, जैसी पश्चिमीय समाज है। इसमें सभ्यता का बीज बोना चाहिए और इसको गढ़कर एक सुशिक्षित नई रोशनी की बना देना चाहिए। नवयुग (Renaissonce) शुरू हो गया है।"

माधव बाबू प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से मिस्टर वर्मा की ओर देख रहे थे। उन्होंने उत्तर दिया—"बेशक इस समाज के उपयुक्त सुधारक आप हो सकते हैं। हम लोगों की जगह पर अब नवयुवकों को आना चाहिए। इस नवयुग के प्रारंभ में वे ऐसी हलचल पैदा कर दें कि समाज के नेताओं की आँख खुल जाय। या तो वे संसार की नवयुग-धारा में अपनी नाव बहा ले चलें या डुबा दें। ईश्वर आपको सुबुद्धि दे और वह ऐसी सदा बनी रहे।"

मिस्टर वर्मा प्रशंसा के भार से दब गए। उन्होंने उत्तर दिया—"यह आपके आशीर्वाद से ही हो सकेगा और आपके सहवास से।"

माधव बाबू ने अत्यंत प्रसन्न चित्त से कहा—"आपके-ऐसे नवयुवकों में मैं ऐसा ही जोश देखना चाहता हूँ। अगर आपके-ऐसे एक सौ भी कर्मवीर आज निकल आवें, तो समझ लीजिए कि समाज का दूसरा रूप होगा, विधवाओं की दूसरी शादी होती नज़र आएगी, जाति-पाँति के सब भेद उठा दिए जाएँगे, कैलास से कन्याकुमारी तक एक जाति

होगी, जिसका नाम होगा हिंदू-जाति। सब लोग धार्मिक ढोंग से मुक्त हो जायँगे और तभी भारत भी स्वतंत्र हो सकता है, नहीं तो ये ग़ुलामी की ज़ंजीरें हमेशा भारत को कायर, धर्महीन और निःशक्त किए रहेंगी। स्वराज्य लेने के पेश्तर हमें अपने को समाज के बंधनों से मुक्त कर लेना परमावश्यक है।"

मिस्टर वर्मा बड़ी शांति से सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"वाक़ई तभी भारत स्वतंत्र हो सकता है। मैं एक प्लेटफ़ार्म-स्पीकर नहीं होना चाहता, बल्कि काम करके दिखाना चाहता हूँ।"

माधव बाबू ने मेज़ के ऊपर हाथ पटककर कहा "हाँ, ठीक है। बग़ैर अपना सुधार किए सुधारक बनना बिलकुल ढोंग है। मैं ढोंग बिलकुल नहीं पसंद करता। बाहर-भीतर आदमी को एक होना चाहिए। आप राह दिखाइए, देश के नवयुवक आपका साथ देंगे। आप हिम्मत कीजिए, सुधार की चमचमाती तलवार लेकर आगे बढ़ जाइए, आपके पीछे सैकड़ों नवयुवक आपकी रक्षा के लिये तैयार रहेंगे। सबसे पहले हम लोगों का लक्ष्य होना चाहिए स्त्रियों की स्वाधीनता-स्त्रियों की चहारदीवारी तोड़ देनी चाहिए। वे भी हम लोगों की तरह स्वतंत्र रूप से पर्दों की मोटी दीवार छोड़कर संसार के मुक्त वायुमंडल में प्रवेश करें। उनके अधिकारों के लिये सबसे पहले हमको आवाज़ उठानी चाहिए। ऐसी मिसालें भारत-नारियों के समक्ष रखनी चाहिए, जिससे वे स्वयं अपना क़ैदख़ाना तोड़ दें।"

मिस्टर वर्मा—"अभी तक स्त्रियों को अपने अधिकारों का तो पता है ही नहीं। जिस समय होगा, उस समय वे उसके लिये लड़ेंगी—उसी तरह से, जिस तरह इँगलैंड की वीर नारियों ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये पार्लियामेंट के विरुद्ध आंदोलन किया था। जिस समय मनुष्य को मालूम हो जाता है कि उसके अधिकार क्या हैं, वह उसी वक़्त से उनके लिये लड़ना शुरू करता है।"

माधव बाबू ने कहा—"ठीक है। स्त्रियों के अधिकार उनको बता देना चाहिए। देश के बहुत-से आदमी अपनी स्त्रियों के साथ पशुओं-जैसा व्यवहार करते हैं—यह नहीं कि वे अशिक्षित हैं, बल्कि युनिवर्सिटियों की डिग्रियाँ लिए हुए हैं—उनके बारे में आपकी क्या राय होती है?"

मिस्टर वर्मा—"यदि कोई मनुष्य पश्चिमीय साहित्य पढ़कर भी स्त्रियों के ऊपर अत्याचार करता है, वह—एक शब्द में—Brute (पशु) है। नहीं, वह नारकीय कीड़ा है।"

माधव बाबू—"ठीक है। मेरी भी यही राय है। अच्छा, थोड़ी देर के लिये मान लीजिए, ऐसा कोई व्यक्ति आपका बहुत नज़दीकी रिश्तेदार है, तब आपका उसके साथ क्या बर्ताव होगा?"

मिस्टर वर्मा—"जानते हैं आप, उस समय मैं क्या करूँगा? मैं उसी वक्त उस नारकीय कीड़े का जीवन समाप्त कर दूँगा।"

माधव बाबू की साँस रुकी जा रही थी। उन्होंने निष्पंद हृदय से पूछा—"और उसकी स्त्री के साथ?"

मिस्टर वर्मा—"मैं उसका सहर्ष दूसरा विवाह करूँगा।"

माधव बाबू—"और अगर कोई मना करता या लड़की की स्वयं राय न होती, तब?"

मिस्टर वर्मा—"मैं बाध्य करता—मैं किसी की भी राय न मानता।"

माधव बाबू ने मुस्किराकर कहा—"अब तो आप 'डाइवोर्स' (तलाक़) के पक्ष में हैं?"

मिस्टर वर्मा—"बेशक। बग़ैर 'डाइवोर्स' के स्त्रियों को स्वतंत्रता कहाँ मिल सकती है?"

माधव बाबू—"और, क्या आप एक उस स्त्री से, जिसने अपने पति को 'डाइवोर्स' कर दिया हो, विवाह कर लेंगे?"

मिस्टर वर्मा—"मैं विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं समझता, हाँ, अगर वह मेरे मनोऽनुकूल होगी।"

माधव बाबू—"बस ठीक है। समाज-सुधारक में यह गुण अवश्य होना चाहिए। मुझे जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आप कर्मिष्ठ सुधारक हैं। ईश्वर आपकी बुद्धि सदैव ऐसी रक्खे रहे।"

मिस्टर वर्मा गर्व के साथ माधव बाबू की ओर देख रहे थे। माधव बाबू भी प्रसन्न चित्त से मिस्टर वर्मा की ओर देख रहे थे।

मिस्टर वर्मा ने उठते हुए कहा—"तो अब आप आज्ञा दीजिए। ज़रा काम है।"

माधव बाबू—"तो अब आप जाइएगा, आज शाम को सिनेमा चलना है।"

मिस्टर वर्मा—"क्षमा कीजिए, मैं आज न चल सकूँगा, आज शाम को मुरारी के साथ जाने की बात है।"

माधव बाबू—"अच्छा, मैं देखता हूँ कि आपमें और मुरारी में घनिष्ठता बढ़ रही है।"

मिस्टर वर्मा ने हँसते हुए कहा—"जी हाँ, इसमें भी कोई आश्चर्य है। अच्छा 'गुडमॉर्निंग'।"

माधव बाबू ने उत्तर देकर कहा—"अच्छा लड़का देख पड़ता है। होनहार है। क्या ही अच्छा होता, यदि रानी की शादी इसके साथ किए होता।"

कुमुदिनी ने इसी समय आकर कहा—"बाबूजी, खाना खाने चलिए।"

माधव बाबू ने कहा—"रानी, आज शाम को बायस्कोप चलेगी?"

कुमुदिनी—"नहीं बाबूजी, मैं नहीं जाऊँगी।"

माधव बाबू—"क्यों? पहले तो तू बहुत जाती थी।"

कुमुदिनी—"अब मन नहीं लगता।"

माधव बाबू—"तो आज शाम को मुरारी और मिस्टर वर्मा के साथ घूमने जाना।"

कुमुदिनी—"नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊँगी।"

माधव बाबू—"आख़िर क्यों? घर में बैठे-बैठे क्या करोगी?"

कुमुदिनी—"क्यों, भाभी तो हैं? हम दोनो बहुत हैं, और आज शाम को मिस बैनरजी आनेवाली हैं।"

माधव बाबू—"अच्छा।"

कुमुदिनी धीरे-धीरे चली गई।

माधव बाबू बोले—"इसका कुछ मंत्र नहीं मिलता। न-मालूम यह क्यों उदास रहती है। जब से मिस्टर वर्मा से परिचय करवाया, तब से यह और उदास रहने लगी। कभी कहीं नहीं जाती। न मिस्टर वर्मा से बोलती है और न उनके पास फटकती है। वह उनसे दूर-दूर रहती है। क्यों रहती है? कुछ समझ में नहीं आता।"

(६)

"हलो मुरारी! तैयार हो गए।"

मुरारी ने उत्तर दिया—"ज़रा देर ठहरिए, अभी चलता हूँ।"

मुरारी ने नौकर को बुलाकर पान लाने को कहा।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"पान-वान के फेर में न पड़ो, ज़रा जल्दी चलो। मिस चपला इंतज़ार करती होगी। (घड़ी की तरफ़ देखकर) देखो, साढ़े पाँच बज गए। हम लोगों को देर हो जायगी।"

मुरारी ने कहा—"यह देखिए, अभी साढ़े पाँच में १० मिनट बाक़ी हैं। बहुत वक़्त है। कार में सिर्फ़ पाँच मिनट से ज़्यादा नहीं लगेंगे।"

मुरारी बेंत लेकर चलने को उद्यत हुए। मिस्टर वर्मा ने इधर-उधर देखकर कहा—"क्यों, मिसेज़ सिनहा क्या नहीं जायँगी? उनके न जाने से चपला बड़ी असंतुष्ट होगी।"

मुरारी ने पैर बढ़ाते हुए कहा—"ओहो! जाने दो। रानी नहीं जायगी।"

मिस्टर वर्मा ने रुकते हुए कहा—"बुला न लो। नहीं, बुला लो।"

मुरारी ने बग़ैर कुछ ध्यान दिए कहा—"अब आपको देरी नहीं होती। चलिए, जल्दी चलिए। मिस्टर वर्मा, फ़िज़ूल समय नष्ट न करो। वह नहीं जायगी।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"अच्छा, मैं एक दफ़े पूछ लूँ। दो मिनट ठहरो।"

मिस्टर वर्मा ने एक ख़ानसामे से कहा—"जाओ, बुला लाओ।"

नौकर ने कहा—" किसको बाबूजी ?"

मिस्टर वर्मा—"जाओ, बुला लाओ।"

नौकर ने कहा—"किसको बुला लाऊँ बाबूजी ?"

मिस्टर वर्मा—"हम बोलता है, बुला लाओ, जल्दी बुला लाओ। बोलो, मिस्टर वर्मा आया है, जाओ।"

नौकर ने कहा—"किससे कहूँ जाकर, कुछ मालूम तो हो।"

मुरारी के रोके हँसी अब न रुकी। उन्होंने कहा—"जाओ, रानी को बुला लाओ।"

नौकर मुस्किराता हुआ चला गया।

कुमुदिनी उस समय अपनी भाभी के कमरे में बैठी थी।

नौकर ने कहा—"आपको मिस्टर वर्मा बुलाते हैं।"

कुमुदिनी के चेहरे पर सुर्ख़ी दौड़ने लगी। उसने अपने को रोककर कहा—"कह दो, नहीं आती।"

नौकर चला गया। मिस्टर वर्मा कुछ मन-ही-मन बिगड़कर मुरारी के साथ चल दिए।

लज्जा ने कहा—"क्यों, आप गईं नहीं ?"

कुमुदिनी ने झुँझलाकर कहा—"क्यों जाऊँ, मुझे क्या पड़ी है।"

लज्जा—"क्यों, बुलाते थे न ?"

कुमुदिनी—"बुलाते होंगे।"

लज्जा—"आख़िर इस नाराज़ी का कारण ?"

कुमुदिनी—"मैं एक ग़ैर शख़्स से क्यों नाराज़ या ख़ुश होने लगी।"

लज्जा—"अरे, ग़ैर नहीं हैं, थोड़े दिनों में अपने हो जायँगे। ज़रा ठहरो तो। पहले जो ग़ैर होता है, वही थोड़े दिनों में अपना हो जाता है, और जो पहले अपने होते हैं, वे ही फिर ग़ैर हो जाते हैं।"

कुमुदिनी ने अपनी भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"इसके क्या मानी ?"

लज्जा—"मानी क्या ? आप समझ लीजिए।"

कुमुदिनी—"मैं समझी नहीं। ज़रा बतलाने की कृपा कीजिए।"

लज्जा—"अभी नहीं कहूँगी, थोड़े दिनों में सब आप मालूम हो जायगा।"

कुमुदिनी—"अभी क्यों न मालूम हो जाय।"

लज्जा—"धैर्य धरिए, सब मालूम हो जायगा। देखो, अभी तक मिस बैनरजी नहीं आई। उसका वादा पाँच बजे का था।"

कुमुदिनी—"हाँ, अभी तक नहीं आई। कुछ काम लग गया होगा।"

लज्जा—"अरे, उसको काम ही क्या है। यहाँ ग़प्प मारी, वहाँ ग़प्प मारी, इसके अलावा क्या काम ? हाँ, शाम को टेनिस ज़रूर खेलने जाती है।"

कुमुदिनी—"तो फिर टेनिस खेलने ही चली गई होगी।"

लज्जा—"अच्छा, आओ, चलो, हम-तुम टेनिस खेलें।"

कुमुदिनी—"नहीं, खेल छोड़े मुद्दतें हो गईं, अब कौन खेले। तुम तो जानतीं नहीं।"

लज्जा—"नहीं, थोड़ा-थोड़ा जानती हूँ। तुम्हारे आने के पहले खेला करती थी।"

कुमुदिनी—"किसके साथ ?"

लज्जा—"क्यों, क्या मेरे साथी नहीं हैं, सब आपके ही हैं।"

कुमुदिनी—"क्यों, क्या भैया के साथ ?"

लज्जा—"क्यों, क्या करोगी? मारोगी, क्योंकि उन्होंने तुमसे पहले आज्ञा नहीं ली।"

कुमुदिनी—"दुर पगली। अच्छा आओ, आज हम-तुम खेलें।"

लज्जा—"जाने दो, हटाओ। वड़े बाबू आते होंगे।"

कुमुदिनी—"जब आवेंगे, तब बंद कर देंगी।"

लज्जा—"अच्छा, आओ चलें। देखो भाई, हमें थोड़ा आता है।"

कुमुदिनी—"हाँ, अभी-अभी सब मालूम हो जायगा।"

× × ×

शाम को आठ बज चुके थे। माधव बाबू और मिस्टर वर्मा खाना खाने के बाद चुरुट-रूम में बैठे हुए धूम्र-पान कर रहे थे।

माधव बाबू ने कहा—"क्यों मिस्टर वर्मा, आज शाम को आप कहाँ गए थे?"

मिस्टर वर्मा—"कहीं नहीं, हम और मुरारी दो ही आदमी थे, इसलिये कहीं दूर जाना नहीं हुआ। मिसेज़ सिनहा से कहा था चलने के लिये, लेकिन वह न-मालूम क्यों चलने को तैयार नहीं हुईं।"

माधव बाबू—"रानी आप लोगों के साथ नहीं गईं?"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, नौकर से कहला भेजा, तो जवाब मिला, मैं नहीं आती।"

यह कहकर मिस्टर वर्मा एक रूखी हँसी हँसे।

माधव बाबू बैठे हुए धूम्र-पान करते हुए कुछ सोचने लगे।

मिस्टर वर्मा—"कहिए, आप क्या सोच रहे हैं?"

माधव बाबू ने चौंककर कहा—"कुछ नहीं।"

मिस्टर वर्मा—"मिस्टर सिनहा से मेरा परिचय नहीं है। वह यहाँ कभी नहीं आते क्या?"

माधव बाबू ने सिगार की राख झारते हुए कहा—"नहीं, वह यहाँ नहीं आते।"

मिस्टर वर्मा—"इसका सबब क्या है ?"

माधव बाबू—"सबब कोई ख़ास तो नहीं है। नहीं आते।"

मिस्टर वर्मा—"मिस्टर सिनहा यहीं किसी कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं न ?"

माधव बाबू—"हाँ।"

मिस्टर वर्मा—"क्या मासिक मिलता है ?"

माधव बाबू—"आठ-नौ सौ के लगभग।"

मिस्टर वर्मा—"क्या घर के अमीर हैं ?"

माधव बाबू—"हाँ, कुछ ज़मींदारी है।"

मिस्टर वर्मा—"अभी हाल में मैंने पढ़ा था कि उन्हें 'डॉक्टर' की उपाधि मिली है। उनकी लिखी किताब की बड़ी धूम है। सभी लोग भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। आपने पढ़ा है ?"

माधव बाबू—"नहीं।"

मिस्टर वर्मा—"आपको क्या फ़िलासफ़ी से शौक़ नहीं है ?"

माधव बाबू—"नहीं।"

मिस्टर वर्मा—"लेकिन 'सबजेक्ट' (विषय) अच्छा है।"

माधव बाबू—"हाँ, कहा जा सकता है।"

मिस्टर वर्मा—"उन्होंने आपको अपनी किताब नहीं भेजी ?"

माधव बाबू—"मुझे मालूम नहीं। शायद नहीं भेजी।"

मिस्टर वर्मा—"मैंने कल ह्वीलर (Wheeler) के यहाँ से मोल ली थी। इसमें तो कोई शक नहीं कि किताब बेशक अच्छी है, और हलचल पैदा करनेवाली है। आप पढ़िएगा ?"

माधव बाबू—"नहीं, मेरी इच्छा नहीं, और इसके अलावा मुझे समय भी तो नहीं है।"

मिस्टर वर्मा—"वह रहते कहाँ हैं ? एक बार मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।"

माधव बाबू का धैर्य चला गया था। उन्होंने उठकर कहा—"अच्छा, ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"अच्छा, तो मैं भी चलता हूँ।"

माधव बाबू—"नहीं-नहीं, बैठो, मैं अभी आता हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"आपने बतलाया नहीं कि मिस्टर सिनहा कहाँ रहते हैं?"

माधव बाबू—"यहाँ से थोड़ी दूर एक गाँव है रामनगर, वहीं रहते हैं।"

मिस्टर वर्मा—"एक रोज़ मेरा जाने का इरादा है।"

माधव बाबू उठकर जाने लगे।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"अच्छा, गुडनाइट।"

माधव बाबू—"गुडनाइट।"

मिस्टर वर्मा ने जाते हुए कहा—"एक अजीब रंग देखने में आता है। माजरा क्या है। मिस्टर सिनहा कभी नहीं आते। कुमुदिनी भी कभी नहीं जाती। माधव बाबू ने उनके विषय में कोई उत्साह-जनक बात नहीं की। अपने दामाद की तारीफ़ सुनकर भी ख़ुश नहीं हुए। बल्कि कुछ चिढ़-से गए। मालूम होता था, ऊब गए। उठकर तभी तो भाग गए। कोई बड़ा बेढब मामला है। इसका क्या सबब है। ससुर-दामाद में क्या लड़ाई है। मालूम होता है, मैंने एक-एक प्रश्न जिस तरह किए, और उनका जो उत्तर मिला, उससे साफ़ मालूम होता है कि दामाद से नहीं बनती। तो क्या कुमुदिनी से भी नहीं बनती? आह! कुमुदिनी! कितना सुंदर नाम है। वह स्वयं कैसी सुंदरी है। फिर इस अनबन का क्या कारण है। क्या नाम है...? हाँ,...याद आया। निर्मलचंद्र सिनहा, अच्छा, मैं मिलूँगा, ज़रूर मिलूँगा। फिर देखूँगा, रंग क्या है? देखें, किस करवट ऊँट बैठता है। यह पैदल चला, यह घोड़े की शै, मात! बस। दो चाल में सब अपना है।"

तृतीय खंड

(६)

"अच्छा, अब की बचना, लो।"

"अच्छा रिटर्न था। अच्छा, अब की फिर लो। देखो, मिस हो गया, कहा न था, तुम मुझसे नहीं जीत सकते। अभी तुम्हें खेलना नहीं आता, ज़रा थोड़े दिनों और सीखो।"

मिस्टर वर्मा शर्मा गए। उन्हें स्वप्न में भी विश्वास न था कि वह इस तरह 'लव' गेम खा जायँगे। मिस्टर वर्मा के अन्य मित्रगण ख़ूब हँस रहे थे, और चपला का क्या कहना, वह तो मारे हँसी के फुलझड़ी हुई जा रही थी।

मिस चपला ने अपने हास्य-स्रोत को बंद करके कहा—"कहिए मिस्टर वर्मा, क्या अब भी आपका इरादा है और खेलने का। अच्छा आइए, अब की डबल 'पेयर' से खेला जाय।"

मिस्टर वर्मा ने कोट से सिगार निकालते हुए कहा—"क्षमा कीजिए, मैं एक जगह काम से जा रहा हूँ।"

मिस बैनरजी ने अपनी कोमल आवाज़ से कहा—"अब मिस्टर वर्मा की हिम्मत नहीं पड़ सकती। अच्छा चपला, आओ, हम-तुम खेलें।"

चपला ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

दोनो में खेल चलने लगा। 'रिटर्न' का बाज़ार गर्म था। चपला अब भी तगड़ी पड़ रही थी। यद्यपि मिस बैनरजी ने 'टेनिस' में ख़ूब नाम कमाया था, लेकिन इस समय उनकी सारी इज़्ज़त पर पानी-सा फिरा देख पड़ता था।

मिस बैनरजी ने कहा—"इसमें कोई शक नहीं कि चपला अच्छा

खेलना सीख गई है, लेकिन इतनी जल्दी कैसे ! मालूम पड़ता है, 'चैंपियन शिप' अब की चपला के हिस्से में पड़ेगी।"

मिस्टर वर्मा धीरे-धीरे सिगार का मज़ा ले रहे थे, और चपला का खेल बड़े ग़ौर से देख रहे थे। चपला बिलकुल चपला हो रही थी। अभी यहाँ है, थोड़ी देर में 'नेट' के पास, और उसके 'रिटर्न' बड़े तेज़ और अचूक होते थे। मिस्टर वर्मा प्रशंसा-सूचक नेत्रों से चपला का खेल देख रहे थे।

चपला की फिर जीत रही। मिस बैनरजी के चेहरे पर भी हवाइयाँ उड़ने लगीं।

मिस बैनरजी ने कहा—"वाक़ई, चपला से कोई बाज़ी नहीं ले जा सकता।"

मिस्टर वर्मा ने कहा—"बेशक, अब आपको मालूम हो गया।"

चपला का चेहरा आत्मगौरव से लाल हुआ जा रहा था। हास्य भी मुख पर नृत्य कर रहा था।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"मिस माथुर, आप बहुत अच्छा खेलती हैं।"

मिस चपला ने एक बंकिम कटाक्ष करके कहा—"अजी नहीं, यह आपकी ग़लती है। मैं क्या जानूँ खेलना। अभी कल तो कॉलेज से निकली हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"इससे क्या होता है ?"

मिस चपला ने कहा—"मैं तो अभी ज़रा भी खेलना नहीं जानती, हाँ, मेरे प्रोफ़ेसर साहब ज़रूर कुछ जानते हैं। मैंने उन्हीं के पास सीखा है।"

मिस्टर वर्मा—"उनका परिचय मुझसे करवा दो।"

मिस चपला—"अच्छा। वाह ! लीजिए, वह आ ही गए।"

मिस्टर वर्मा ने देखा, एक गौर-वर्ण व्यक्ति धीरे-धीरे चला आ रहा है, उसका ध्यान न-मालूम कहाँ है। चेहरे पर एक अद्भुत गंभीरता छाई हुई है।

मिस्टर वर्मा ने मंद स्वर में चपला से पूछा—"शायद फ़िलासफ़र हैं।"

मिस चपला ने कहा—"हाँ, बड़े भारी फ़िलासफ़र हैं। आइए, आपका परिचय करवा दूँ।"

मिस चपला ने उस व्यक्ति के पास पहुँचकर कहा—"नमस्कार।"

फ़िलासफ़र साहब की नींद टूटी। उन्होंने खड़े होकर कहा—"ओह चपला, नमस्कार। कहो, कैसी हो। तुम्हें बहुत रोज़ से नहीं देखा। मिस्टर माथुर तो अच्छी तरह हैं?"

मिस चपला ने विनीत स्वर में उत्तर दिया—"जी हाँ, सब कृपा है। आप इस समय कहाँ जा रहे हैं?"

फ़िलासफ़र साहब ने जवाब दिया—"यों ही ज़रा घूमने निकला था। मिस्टर वर्मा की तरफ़ देखकर कहा—"आपकी तारीफ़ कीजिए।"

मिस चपला ने कहा—"यह आपके साथ परिचय करने के लिये उत्सुक हैं।" मिस्टर वर्मा की ओर देखकर कहा—"मिस्टर डी० वर्मा एम्० ए०, आई० सी० एस्०, ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं।" फिर फ़िलासफ़र साहब की ओर देखकर कहा—"आप मिस्टर एन्० सी० सिनहा एम्० ए० हैं, और हाल ही में 'डॉक्टर' की उपाधि मिली है।"

मिस्टर वर्मा परिचय सुनकर कुछ चौंके, लेकिन किसी ने देख नहीं पाया। दोनो में कर-मर्दन हुआ।

मिस चपला ने कहा—"मिस्टर वर्मा, प्रोफ़ेसर साहब टेनिस खूब खेलते हैं। इलाहाबाद में क्या, शायद यू० पी० में कोई आपके बराबर टेनिस खेलनेवाला नहीं। लेकिन आप किसी टूर्नामेंट में भाग नहीं लेते।"

मिस्टर वर्मा—"क्यों मिस्टर सिनहा, क्या यह बात ठीक है?"

मिस्टर सिनहा—"मैं खेलना-वेलना तो जानता नहीं, इसीलिये

मिस्टर सिनहा—"फ़र्स्ट डिवीज़न मिलेगा।"

मिस चपला—"देखिए! लेकिन उम्मेद है। हिस्ट्री (इतिहास) का पेपर उतना अच्छा नहीं हुआ, जितना होना चाहिए था।"

मिस्टर सिनहा—"फ़िलासफ़ी का पेपर कैसा लिखा है?"

मिस चपला—"बहुत अच्छा किया है। जितने प्रश्न आपने बतलाए थे, क़रीब-क़रीब वही सब आए थे।" मिस्टर वर्मा की तरफ़ देखकर कहा—"आपने फ़िलासफ़ी पर एक बड़ी अच्छी किताब लिखी है। उसी पर आपको डॉक्टर की उपाधि मिली है।"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, वह किताब मैंने पढ़ी है, वास्तव में बड़ी अच्छी है। आपने 'मिलकी एंपिरिसिस्ट थियोरी' पर अच्छी समालोचना की है, यहाँ तक कि और जिन लोगों ने की है, उन सबसे अच्छी है, और दूसरे आपने अपने यहाँ के अद्वैतवाद को इस तरह निबाहा है, जिससे जान पड़ता है कि भारत की फ़िलासफ़ी कितनी ऊँची और ज़बरदस्त थी। मैं इसके लिये आपको बधाई देता हूँ।"

मिस्टर सिनहा—"धन्यवाद, ख़ैर, मुझे संतोष है कि वह पुस्तक आपके पसंद तो आई।"

मिस्टर वर्मा—"बेशक, वह किताब एक ही है। मैं तो पढ़कर मुग्ध हो गया। आपकी किताब की प्रशंसा चारो ओर हो रही है। जिनसे मैंने चार्ज लिया है, यानी सर माधवचंद्र श्रीवास्तव ने भी आपकी तारीफ़ की।"

सर माधवचंद्र का नाम सुनकर मिस्टर सिनहा कुछ चौंके, लेकिन वह चौंकना मिस्टर वर्मा की आँखों से छिप न सका।

मिस्टर वर्मा ने अपना दूसरा तीर छोड़ा—"सर माधवचंद्र को तो आप जानते ही होंगे।"

मिस चपला—"क्यों नहीं, वह तो आपके ससुर ही हैं।"

मिस्टर वर्मा मानो आकाश से गिर पड़े। वह बोले—"अच्छा, तो आप उनके दामाद हैं?"

मिस चपला—"हाँ।"

मिस्टर वर्मा ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—"ओहो, मैं तो आपसे बहुत दिनों से मिलना चाहता था। सर माधवचंद्र से मेरी बहुत घनिष्ठता है, मैं आपसे मिलकर बड़ा सुखी हुआ।"

निर्मल ने हाथ मिलाकर कहा—"मैं भी बड़ा प्रसन्न हुआ।"

मिस्टर वर्मा—"आप कभी वहाँ नहीं जाते, मैं तो प्रायः रोज़ ही जाता हूँ।"

मिस्टर सिनहा—"हाँ, इन दिनों जाना नहीं हुआ। मैं आजकल एक बड़ी मुसीबत में फँसा हुआ हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"आख़िर वह क्या है, क्या मैं किसी प्रकार सहायता दे सकता हूँ?"

मिस्टर सिनहा—"नहीं, कोई ऐसी विशेष बात नहीं है। धन्यवाद।"

मिस्टर वर्मा—"चलिए, आज वहीं तक घूम आइए।"

मिस्टर सिनहा—"आज क्षमा कीजिए मिस्टर वर्मा, आज मैं एक विशेष काम से जा रहा हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"ओहो! भूल गया था। ससुराल में बग़ैर बुलाए न जाना चाहिए, क्यों?"

मिस्टर सिनहा—"नहीं, यह बात तो नहीं है, लेकिन आज एक बहुत ज़रूरी काम है। अच्छा, तो विदा दीजिए। चपला, चलती हो अपने पिता के पास, मैं उन्हीं के पास जा रहा हूँ।"

मिस चपला—"तो क्या आप मेरे घर जा रहे हैं, अच्छा, तो चलिए।"

मिस्टर सिनहा और चपला दोनो मिस्टर वर्मा को अभिवादन करके चल दिए।

मिस्टर वर्मा ने जेब से सिगार निकालकर कहा—"वाक़ई मामला तो ज़रूर कुछ बेढब है। दामाद साहब भी ससुर के नाम से चौंके; और बात बचाकर चलते हुए। आख़िर मामला क्या है। कुछ भी समझ में नहीं आता। इसका पता लगाना ज़रूर चाहिए। मालूम होता है, ससुर और दामाद में वैमनस्य है। लेकिन कुमुदिनी का रुख़ किस तरफ़ है। अरे, फिर मन नहीं मानता—बात क्या है? मामला चाहे जो कुछ हो, इतना ज़रूर है कि स्त्री-पुरुष में प्रेम नहीं है। इस मनमुटाव से तुमको लाभ उठाना चाहिए; देवदत्त! अगर चूके, तो तुम्हीं पर उलटी मात है।"

मिस्टर वर्मा सिगार का धुँआ छोड़ते हुए कार में बैठकर चल दिए।

(२)

निर्मल ने रास्ते में मिस चपला से पूछा—"चपला, यह कौन सज्जन थे?"

चपला ने कहा—"आपका परिचय तो करवाया था, क्या आप भूल गए, आपका नाम देवदत्त वर्मा।"

निर्मल—"वह तो सब जानता हूँ, उससे कोई मतलब नहीं। इनके पिता का क्या नाम है, कहाँ के रहनेवाले हैं, कैसे आदमी हैं, इत्यादि कुछ जाना है?"

चपला—"नहीं मिस्टर सिनहा, इसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानती। इनसे अभी परिचय हुए ही कितने दिन हुए, अभी उस दिन तो पिताजी ने परिचय करवाया था। यों तो आदमी अच्छे मालूम होते हैं, 'पॉलिश्ड' हैं।"

निर्मल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

चपला ने पूछा—"क्यों मिस्टर सिनहा, मिसेज़ सिनहा कब तक आवेंगी?"

निर्मल ने कोई उत्तर नहीं दिया।

थोड़ी देर बाद चपला ने फिर पूछा—"आप कुछ बोले नहीं, मिसेज़ सिनहा कब तक आवेंगी ?"

निर्मल ने बड़ी लापरवाही से उत्तर दिया—"मुझे स्वयं नहीं मालूम।"

चपला—"आख़िर क्यों ? एक दिन मैंने उनसे पूछा था कि कब तक जाओगी, तो वह भी बोलीं कि मालूम नहीं। दोनो तरफ़ यह उदासीनता कैसी ?"

निर्मल ने शुष्क हँसी हँसकर कहा—"उदासीनता तो नहीं है, जब इच्छा होगी, तब आवेंगी। मैं उनके ऊपर कुछ दबाव तो डाल नहीं सकता।"

चपला—"आपकी प्रत्येक बात से उदासीनता टपकी पड़ती है। आप जितनी भी छिपावें, कभी बात छिप नहीं सकती।"

निर्मल—"चपला, मैं कोई बात नहीं छिपाता। जब उनकी इच्छा होगी, तब आवेंगी।"

चपला ने देखा कि मिस्टर सिनहा कुछ दुखी हैं। वह चुप हो रही।

निर्मल ने थोड़ी देर बाद कहा—"मिस्टर वर्मा बड़े सुशिक्षित मालूम होते हैं।"

चपला—"हाँ, सुशिक्षित हैं ही।"

निर्मल—"स्वभाव भी अच्छा है।"

चपला—"हाँ, प्रसन्न-मुख हैं, हँसी सदैव मुख पर नाचा करती है।"

निर्मल—"लेकिन मैंने एक विचित्र बात देखी, वह यह कि मिस्टर वर्मा एक विचित्र प्रकार से अपने ओठों को मरोड़ लेते हैं।"

चपला—"मैंने भी यही बात मार्क की थी। लेकिन कभी-कभी वह ऐसा करते हैं।"

निर्मल—"शायद, आज ही तो मेरा परिचय हुआ है, और उसी समय मैंने दो बार उनके ओठों की मरोड़ देखी।"

चपला—"हाँ, एक बार तो मैंने भी देखा था। जब आप उनसे विदा लेने लगे, तो उनके ओठों में वह मरोड़ आई थी। इसका क्या कारण है?"

निर्मल—"यह मरोड़ सब मनुष्यों में नहीं होती, कुछ ख़ास आदमियों में ही होती है। मनोविज्ञान तो यह कहता है कि यह स्वार्थी और चालाक आदमी का चिह्न है, फिर मैं मिस्टर वर्मा के संबंध में ऐसी कुछ धारणा नहीं कर सकता।"

चपला ने कहा—"जी हाँ, Psychologically (मनो-विज्ञान) से तो यह बात ठीक होनी चाहिए।"

निर्मल—"लेकिन कभी-कभी किसी-किसी व्यक्ति के संबंध में ठीक नहीं भी उतरता। पहले-पहले किसी के चरित्र के संबंध में किसी प्रकार की धारणा न कर लेना चाहिए।"

चपला—"अच्छा, मिस्टर सिनहा, ज़रा ठहर जाइए, देख लूँ, कपड़े सिल गए हैं या नहीं।"

यह कह चपला मिस डासन की दूकान में घुस गई। थोड़ी देर में चपला के पीछे एक लड़का कपड़ों का बंडल लिए चला आ रहा था।

निर्मल ने पूछा—"क्यों, यहाँ क्या सिलाई ली जाती है?"

चपला ने उत्तर दिया—"यह न पूछिए, सिलाई का दाम बहुत ऊँचा है। शेमीज़ के दाम चार रुपए हैं, ब्लाउज़ के छ रुपए। सिलाई बड़ी ऊँची है, लेकिन किया क्या जाय।"

निर्मल—"क्यों, क्या हिंदोस्तानी दर्ज़ी नहीं सी सकते?"

चपला—"यह बात नहीं है लेकिन, यहाँ सफ़ाई और सिलाई अच्छी होती है, वादे पर चीज़ मिलती है—अप-टु-डेट पैरिस-फ़ैशन का माल मिलता है।"

निर्मल ने एक ठंडी साँस ली, और चुपके हो रहे।

चपला—"अगर मेरी राय मानो, तो आप भी मिसेज़ सिनहा के कपड़े यहाँ सिलवाया कीजिए। उनको मेरे कपड़े तो बहुत पसंद होते हैं।"

निर्मल ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप विचार-सागर में निमग्न चले जा रहे थे। चपला भी चुपचाप चली जा रही थी।

मिस चपला ने थोड़ी देर बाद कहा—"आइए मिस्टर सिनहा, घर आ गया।"

मिस्टर सिनहा चौंके और कहा—"हाँ, चलिए।"

मिस चपला और मिस्टर सिनहा दोनो बँगले में घुसे। बाहर बरामदे में मि० माथुर बैठे हुए अख़बार पढ़ रहे थे। मिस्टर सिनहा को देखकर उन्होंने कहा—"आइए मिस्टर सिनहा, आज तो आप बहुत दिनों में दिखाई दिए। इतने दिनों तक कहाँ रहे?"

निर्मल ने कहा—"मैं तो कई दफ़े आया था, लेकिन आप ही के दर्शन नहीं हुए। और कहिए, सब कुशल है?"

मिस्टर माथुर—"हाँ, सब चैन है। यह तो कहो, चपला ने इस साल पेपर कैसे किए हैं?"

निर्मल—"क्या आपको नहीं मालूम?"

मिस्टर माथुर—"नहीं, आपने उसकी आंसर-बुक देखी या नहीं?"

निर्मल—"मेरे पेपर में तो वह पास है, यहाँ तक कि फ़र्स्ट डिवीज़न के नंबर दिए हैं।"

मिस्टर माथुर—"तो बस, फिर ठीक है।"

निर्मल—"आज मैं आपके पास एक काम से आया हूँ। क्या आपको समय है?"

मिस्टर माथुर—"आप कहिए, मुझे हर वक़्त समय है।"

निर्मल—"बात यह है कि मैं एक विल करना चाहता हूँ।"

मिस्टर माथुर निर्मल की तरफ़ देखने लगे।

निर्मल ने कहा—"नहीं, मैं आपसे सच कहता हूँ कि मैं एक विल करना चाहता हूँ।"

मिस्टर माथुर—"अभी से आपको विल करने की क्या पड़ी है?"

निर्मल—"नहीं, मेरे मन में है कि मैं विल करके अपनी मा को लेकर तीर्थ-भ्रमण करूँ; क्योंकि अगर शायद हम दोनो को कुछ हो गया, तो स्टेट कहीं मुफ़्त में न चली जाय।"

मिस्टर माथुर ने हँसकर कहा—"इस असमय वैराग्य का क्या कारण है। क्या मिसेज़ सिनहा आपकी ख़ातिरदारी नहीं करतीं?"

निर्मल—"नहीं, यह बात नहीं है। मेरी मा तीर्थ-भ्रमण करना चाहती हैं, इसीलिये घर से एक बार निश्चिंत होकर निकलना चाहता हूँ।"

मिस्टर माथुर—"अभी यह विल करने का समय नहीं है। फिर देखा जायगा।"

निर्मल—"नहीं मिस्टर माथुर, मैं विल करूँगा। मैंने निश्चय कर लिया है।"

मिस्टर माथुर—"किसके नाम कीजिएगा?"

निर्मल—"अपनी स्त्री के नाम, और फिर उसके बाद कायस्थ-पाठशाला-कॉलेज में सब स्टेट दे दी जायगी।"

मिस्टर माथुर—"क्यों, क्या कोई आपके लड़का न होगा। अगर अभी नहीं है, तो इसके माने यह नहीं है कि होंगे ही नहीं।"

निर्मल ने एक शुष्क हँसी के साथ कहा—"अब क्या होंगे मिस्टर माथुर, अब कोई आशा नहीं है।"

मिस्टर माथुर—"यह आपकी निर्मूल धारणा है। आपके लड़के

क्यों नहीं होंगे। अभी आपकी उम्र ही क्या है, मुश्किल से पचीस साल की होगी।"

निर्मल—"उम्र के लिहाज़ से लड़के नहीं हुआ करते।"

मिस्टर माथुर—"आप अभी लड़के हैं। मिस्टर सिनहा, माफ़ कीजिएगा, क्योंकि ऐसे एक बड़े फ़िलासफ़र के लिये कहना उसका अपमान करना है, लेकिन मैं आपको उसी दृष्टि से देखता हूँ, जिस दृष्टि से अगर दीवानजी जीवित होते, तो वह देखते। क्या तुमको मालूम नहीं कि हममें और उनमें कितनी मित्रता थी। मैं उसी मित्रता के बल पर आपको फ़िज़ूल की बातों में नहीं पड़ने दूँगा। जाइए, फ़िलासफ़ी पर दूसरी किताब लिखकर संसार को चकित कीजिए। भारत का और मनुष्य-जाति का भला कीजिए। संसार-त्यागी न बनिए।"

निर्मल—"मिस्टर माथुर, आप मुझ पर दबाव न डालिए। सोचिए भला, अगर मुझे कुछ हो गया, तो मेरी स्टेट का क्या होगा?"

मिस्टर माथुर—"कैसे हो जाय, और फिर मेरे रहते स्टेट दूसरे के हाथों में नहीं जा सकती। मैं आपके यहाँ का एटार्नी हूँ।"

निर्मल—"अच्छा, तो मैं निश्चित रहूँ?"

मिस्टर माथुर—"हाँ, आप बिलकुल निश्चित रहें। हाँ, यह तो कहिए, आप संसार-विरागी कैसे हुए जा रहे हैं?"

निर्मल—"संसार-विरागी तो मैं नहीं हो रहा, मा को तीर्थ कराने के लिये जा रहा हूँ।"

मिस्टर माथुर—"उनको संसार से घृणा क्यों हो गई। बहू को लेकर संसार में क्यों नहीं रहतीं?"

निर्मल—"और कोई कारण नहीं। वृद्धावस्था है, तीर्थ करा देना ही अच्छा है। आप तो जानते ही हैं, उनका देवी-देवता पर दृढ़ विश्वास है। यद्यपि मैं विश्वास नहीं करता, लेकिन मैं अपने विचारों

से मा को मजबूर करना नहीं चाहता। उनका विश्वास बना रहे, मैं यही चाहता हूँ।"

मिस्टर माथुर—"कौन-कौन जायगा?"

निर्मल—"मा और मैं।"

मिस्टर माथुर—"मिसेज़ सिनहा कहाँ रहेगी?"

निर्मल—"अपने बाप के यहाँ।"

मिस्टर माथुर—"आजकल कहाँ है?"

निर्मल—"वहीं, अपने बाप के यहाँ हैं।"

मिस्टर माथुर—"मिस्टर सिनहा, ठीक-ठीक कहना, क्या तुम्हारी उनसे नहीं बनती?"

निर्मल का चेहरा सफ़ेद हो गया। उन्होंने अपने को सँभालकर कहा—"नहीं, न बनने का तो कोई कारण नहीं है। मिस्टर मुरारी आए थे, वही लिवा ले गए थे, कुछ काम था, और फिर अब बुलाकर क्या होगा, क्योंकि अब परसों हम लोग जा रहे हैं।"

मिस्टर माथुर—"सूचना दे दी है?"



निर्मल—"अब दे दूँगा।"

मिस्टर माथुर—"अभी चार-पाँच दिन ठहर जाओ, मेरे साथ चलना। मैं मंसूरी जा रहा हूँ। वहाँ दो-तीन महीने रहूँगा, फिर वापस आऊँगा। तुम भी वहीं चलकर रहो।"

मिस्टर माथुर के कंठस्वर में स्नेह का आभास था।

निर्मल—"नहीं, क्षमा कीजिए। मैं मंसूरी अभी नहीं जा सकता, अभी और जगह जाना है।"

मिस्टर माथुर ने निर्मल का हाथ पकड़कर कहा—"नहीं, तुम्हें चलना होगा, मैं जानता हूँ कि तुम दुखी हो। तुमको सांत्वना चाहिए।"

एक दुखी हृदय से सहानुभूति प्रकट करके कहना कि तुम दुःखी हो,

तुम्हें सांत्वना चाहिए, दुखी का हृदय उमड़ आता है, और आँखों में आँसू भर आते हैं।

निर्मल ने अपने को बहुत रोककर कहा—"नहीं मिस्टर माथुर, आपका यह भ्रम है, मैं दुखी नहीं हूँ। धन्यवाद !"

लेकिन कंपित स्वर ने मन का आभास प्रकट कर ही दिया।

मिस्टर माथुर—"इसीलिये तो तुमको ऐसे व्यक्ति की ज़रूरत है, जो तुमको यह न मालूम होने दे कि तुम दुखी हो। वह मनुष्य बड़ा दुखी है, जो दूसरों पर अपना दुख प्रकट करना नहीं चाहता। मनुष्य की सबसे बड़ी कमज़ोरी यही है।"

निर्मल—"नहीं, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं बिलकुल दुःखी नहीं हूँ।"

मिस्टर माथुर—"अच्छा, मेरे साथ चलने में तुम्हें क्या आपत्ति है ?"

निर्मल—"आपत्ति तो कुछ नहीं है, लेकिन मा को तीर्थ कराना है।"

मिस्टर माथुर—"मा को तीर्थ फिर करवा देना। अभी तुम्हें उचित है कि तुम जलवायु परिवर्तन कर आओ।"

निर्मल—"तीर्थाटन करने के साथ जलवायु ख़ूब बदल जायगी।"

मिस्टर माथुर—"लेकिन इतना वादा करो कि तुम हर जगह से मुझको अपना कुशल-समाचार दिया करोगे। निर्मल ! मैं तुम्हें एक पुत्र की तरह प्यार करता हूँ।"

निर्मल ने सिर झुकाकर कहा—"धन्यवाद।"

मिस्टर माथुर—"अच्छा, मंसूरी आओगे। हरद्वार जब जाना, तो मंसूरी ज़रूर आना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा।"

निर्मल ने उठते हुए कहा—"अच्छा, कोशिश करूँगा। अब आज्ञा दीजिए।"

मिस्टर माथुर—"अरे ठहरो, मैं तुम्हारी बातों में इतना फँस गया कि मुझे ख़याल ही नहीं रह गया। ब्वाय! एक तश्तरी में कुछ खाने को ले आओ। चपला, चपला!"

निर्मल—"आप तकलीफ़ न कीजिए, मैं जलपान करके चला हूँ।"

चपला ने आकर कहा—"कहिए।"

मिस्टर माथुर—"वाह, तुम्हारे प्रोफ़ेसर साहब आए और तुमने उनकी कुछ भी ख़ातिर नहीं की। पान, जलपान कुछ भी नहीं।"

चपला ने लजाकर कहा—"मैं भूल गई, अभी भेजती हूँ।"

निर्मल ने कहा—"नहीं, मैं चलूँगा, आप कष्ट न कीजिए। यह समय जलपान का नहीं है।"

मिस्टर माथुर—"नहीं, यह नहीं हो सकता। अच्छा, पान ही खाते जाइए।"

मिस्टर सिनहा पान खाकर चले गए।

(३)

निर्मल उदास मन से घर आए। शांता उस समय बैठी हुई स्टोव पर पूरियाँ तल रही थी। निर्मल को देखकर ही कहा—"नन्हें, तेरा आज मुँह क्यों उतरा है। क्या बात है बेटा?"

निर्मल ने अपने कपड़े उतारते हुए कहा—"नहीं तो मा।"

शांता ने कहा—"नहीं, तू मुझे धोखा नहीं दे सकता। क्या बात है?"

निर्मल ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं, अब क्या तुम्हें देख भी कम पड़ता है मा? अगर ऐसा है, तो चश्मा ख़रीद दूँ क्या?"

शांता—"नहीं, मेरे लिये चश्मा न चाहिए, तू मानेगा थोड़े ही।"

निर्मल—"मानूँ क्या? मैं तो हँस रहा हूँ और तुम कह रही हो कि मेरा मुँह लटका हुआ है।"

शांता ने हँसकर कहा—"अच्छा बाबा, तू बड़ा खुश है। आओ, गरम-गरम पूरियाँ खा लो।"

निर्मल—"आज मन नहीं है मा। अभी-अभी मिस्टर माथुर के यहाँ से भर पेट खाए चला आता हूँ। वह किसी तरह माने ही नहीं। लाचार होकर खाना पड़ा।"

शांता—"कौन मिस्टर माथुर ?"

निर्मल—"नहीं जानती, बाबूजी के दोस्त और घर के वकील। वह तो कई मर्तबा यहाँ आए हैं, जिनकी लड़की चपला कई दफ़े इस घर में आई है।"

शांता—"हाँ-हाँ, जानती क्यों नहीं, रामचंद्र बाबू न ?"

निर्मल—"हाँ, वही।"

शांता—"चपला बहुत दिनों से नहीं आई, क्या करती है, विवाह हो गया ?"

निर्मल—"अभी पढ़ती है, बी० ए० का इम्तिहान दिया है, विवाह नहीं हुआ; विवाह हुआ होता, तो निमंत्रण न आता !"

शांता—"शायद वह भूल गए हों।"

निर्मल—"नहीं मा, आज जैसी बातें हुई हैं, उससे पता चलता है कि वह हम लोगों को कभी नहीं भूले। बाबूजी की याद बहुत करते थे, और कहते थे कि मैं तुम्हें उन्हीं की तरह प्यार करता हूँ।"

शांता—"अच्छा, एक रोज़ चपला को बुला लाना। चपला बड़ी अच्छी लड़की है। हँसी तो उसके मुँह पर हमेशा नाचा करती है। कभी भी शांत नहीं बैठती। बक-बक लगाए ही रहती है। मेरे यहाँ आकर भी मेरे काम में हाथ बटाती थी और ऐसी बातें करती थी, जिससे हँसी आप-से-आप आ ही जाती थी। लिवा लावेगा ?"

निर्मल—"हाँ, लिवा लाऊँगा। वह तो रोज़ आने को तैयार रहती है।"

शांता—"हाँ, अब की दफ़े ज़रूर लिवा लाना। अच्छा, आओ, दो पूरी खा लो।"

निर्मल—"भूख बिलकुल नहीं है मा।"

शांता—"अरे आ। बैठोगे, तो भूख आप-से-आप लग जायगी। अरे हरखुवा, पीढ़ा लगा दे, पानी रख दे। कहाँ गया रे।"

निर्मल—"घबराई क्यों जाती हो। आता होगा।"

हरखू ने पीढ़ा रख दिया।

निर्मल बैठकर खाने लगे।

खाते-खाते निर्मल ने कहा—"मा, आओ, चलें तीर्थ कर आवें।"

शांता—"क्या, तीरथ करने जायगा?"

निर्मल—"हाँ मा, आओ, हम-तुम दोनो चलें।"

शांता—"तीरथ करने क्यों जायगा? अभी से तीरथ-व्रत।"

निर्मल—(हँसकर) "क्यों, क्या हुआ, क्या बुढ़ापे में ही तीरथ किया जाता है।"

शांता—"और नहीं, तो क्या लड़कपन में!"

निर्मल—"अच्छा, तुम तो बूढ़ी हो गई हो, तुम्हीं तीर्थ कर आओ।"

शांता—"जब मेरी इच्छा होगी, तब मैं कर आऊँगी, तुझे क्यों फ़िकर लगी है।"

निर्मल—तुम्हें मेरी क्यों फ़िकर लगी रहती है?"

शांता—"तू मेरी बराबरी करेगा।"

निर्मल—"कभी नहीं, मैं सात जन्म तो तुम्हारे ऋण से मुक्त नहीं हो सकता, बराबरी तो बहुत दूर है। यों ही सोचा कि चार महीने छुट्टी है, चलो बाहर घूम आवें।"

शांता—"हाँ, अगर तुझे घूमना है, तो तू जा, लेकिन मैं तेरे साथ क्यों जाऊँ।"

निर्मल—"हाँ, मैं अंतर्यामी हूँ। तुम्हारे मन बात की तो कहो, अभी बता दूँ।"

शांता—"अच्छा, बताओ।"

निर्मल—"तुम्हारे मन में यही है कि मैं जाकर तुम्हारी बहू को लिवा लाऊँ।"

शांता—"हाँ, तो फिर जाते क्यों नहीं ?"

निर्मल—"देखो मा, मैं तुमसे एक बार नहीं, कई बार कह चुका हूँ कि उसको मेरे यहाँ सुख नहीं मिल सकता। इसके कई एक सबब हैं, पहला तो यह कि वह डिप्टी की—नहीं, अब 'सर' साहब की लड़की है, दूसरे हम लोगों की चाल-चलन दूसरे ढंग की है, तीसरे यह घर बिलकुल जंगल में है, चौथे यहाँ उसे वह स्वतंत्रता नहीं है, जो वहाँ उसको मिलती है, पाँचवें उसे वे मित्र नहीं मिल सकते, जो वहाँ मिलते हैं......"

शांता—(बात काटकर) "और छठे मेरा लड़का उसे लाना नहीं चाहता। क्यों ?"

निर्मल—"हाँ, यही समझ लो।"

शांता—"तो, तुम नहीं लिवा लाओगे ?"

निर्मल—"नहीं मा। बस, अब उसकी बात न करो। यह बताओ, तीर्थ करने चलोगी ?"

शांता—"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। जब तू मेरी बात नहीं मानता, तो मैं तुम्हारी बात क्यों मानूँ। ताली एक हाथ से नहीं बजती।"

निर्मल—"एक यही बात छोड़कर मैं सब बात मानने को तैयार हूँ।"

शांता—"मैं भी यही बात छोड़कर सब मानने को तैयार हूँ।"

निर्मल—"मा, देखो, तुम मुझे परेशान करती हो।"

शांता—"नन्हे, तुम भी मुझे दुखी करते हो।"

निर्मल—"मा, न मानोगी । चलो, हम-तुम तीरथ कर आवें, मेरी बड़ी इच्छा है ।"

शांता—"तुम्हारी इच्छा है, तुम जाओ; मेरी इच्छा होगी, तब मैं जाऊँगी । जब सब काम अपनी इच्छा से होता है, तो करो । मुझे अपने साथ क्यों घसीटते हो ।"

निर्मल—"नहीं मा, मेरी बात मान लो, चलो ।"

शांता चुप रही ।

निर्मल—"बोलती क्यों नहीं मा, नहीं चलेगी ।"

शांता—"क्या बोलूँ, पागल से ।"

निर्मल—"अच्छा, पागल सही, चलो तीर्थ करने, मैं तुम्हें ज़बरदस्ती ले चलूँगा ।"

शांता—"अच्छा, मेरी भी एक बात मान लो ।"

निर्मल—"बोलो ।"

शांता—"जाओ, बहू को लिवा लाओ । उसके हाथ में सब घर का भार छोड़कर हम-तुम तीरथ करने चलें । मैं काशी में रह जाऊँगी और तुम चले आना, दोनो आदमी मिलकर संसार में गृहस्थ-धर्म पालन करना ।"

निर्मल ज़ोर से हँस पड़े ।

शांता—"हँसे क्यों ?"

निर्मल—"तुम तो आज असंभव बातें कहती हो ।"

शांता—"असंभव कैसे ?"

निर्मल—"पहली बात बहू को लिवा लाना, दूसरे उसके हाथों में सब घर का भार सौंपना, तीसरे तुम्हारा काशी में रह जाना, चौथे गृहस्थ-धर्म पालन करना, ये सभी बातें असंभव हैं ।"

शांता—"अगर ये बातें असंभव हैं, तो मेरा जाना भी असंभव है ।"

निर्मल—"अच्छा, तो न जाओ। तुम भी कुढ़ो और मैं भी।"

मा-बेटे दोनो चुप रहे।

निर्मल खाकर उठने लगे। शांता ने और पूरियाँ देते हुए कहा—"और खा लो।"

निर्मल—"नहीं, मैं नहीं खाऊँगा।"

शांता—"मेरी बात नहीं मानोगे।"

निर्मल—"तुम्हीं तो मेरी बात नहीं मानतीं।"

शांता—"अच्छा, खाओ तो, कब चलोगे?"

निर्मल ने बैठते हुए कहा—"तुम तैयार हो जाओ, तो तीन-चार रोज़ में चल दूँ।"

शांता—"अच्छा।"

निर्मल के उठ जाने के बाद शांता बड़ी देर तक वहीं बैठी रहीं। बैठे-बैठे वह सोचने लगीं—"मेरे लिये नन्हा सब त्यागे है। स्त्री, सुख, हँसी, सब छोड़े ही था, अब घर भी छोड़ना चाहता है। जब से वहू गई, तब से चेहरे पर हँसी नहीं आई, हँसी आई, सूखी हँसी, दिल खोलकर नहीं। यह वैराग मेरेही लिये तो है। अगर मैं वहू को इतना न चाहती होती, तो शायद ऐसा न होता। मेरा ही अपराध है, चारो तरफ़ मैं अपना ही अपराध देखती हूँ। क्या करूँ? कैसे इसे संसारी बनाऊँ? यहाँ उसका मन नहीं लगता, इसीलिये घर से दूर भागना चाहता है। भगवान्! बताओ, मैं क्या करूँ? किस तरह इसे समझाऊँ। सच है, संसार में कोई भी सुखी नहीं। वह तो समझाने से भी नहीं समझता, मनाने से भी नहीं मानता। क्या होगा? इसका परिणाम क्या होगा? अगर मैं नहीं जाती, तो उसके दिल को ठेस पहुँचती है और अभी आधी देह रह गई, फिर न-मालूम क्या हो। बाहर जाने से शायद उसका मन बहले। चलो, बाहर ही चलें। वह अपने मन की व्यथा किसी से कह नहीं सकता। मन-ही-

बाग़ में घूमते हुए वह बोले—"आह ! स्वप्न कितना मधुर था ! कुमुदिनी मेरी हो गई है और चपला भी मेरे जाल में फँसी है—निकल नहीं सकती, लेकिन वह कौन छायामयी पिशाचिनी थी, जिसने कुमुदिनी और चपला दोनो को मेरे जाल से छुड़ा दिया। उफ़् ! उसकी आँखों में कैसी भीषण ज्वाला थी, उफ़् ! उसको याद करते ही मेरे रोमांच हो आता है। वह कौन थी ! हाँ, याद आया ! कौन.........के......ट......नहीं। वह क्या फिर जीवित हो सकती है ? अरे, यह तो सब स्वप्न था। स्वप्न में मृत व्यक्ति भी जीवित दिखाई पड़ते हैं। हाँ, यह स्वप्न ही था।

"अथाह जल-राशि में इतने ऊँचे जहाज़ से फेक देने से क्या कोई जीवित रह सकता है। नहीं, निरी भावना है। केट समुद्र में गिर पड़ी थी। मैंने नहीं फेका, किसी ने नहीं देखा, तब मैंने भी नहीं फेंका। केट सुंदरी थी, हाँ, थी तो ! ख़ैर, जाने दो, हटाओ इन बातों को। लेकिन आज केट की याद कैसी ? छ महीने हो गए, केट का ख़याल तक नहीं आया। फिर आज क्यों ? हाँ, आज जो स्वप्न में देखा। स्वप्न ही था। वास्तव में स्वप्न था।

"अच्छा, कुमुदिनी कैसी है—गर्विणी सुंदरी है। गर्विणी का गर्व चूर करने ही में तो आनंद है। गर्विणी किसे पसंद नहीं। वह कवियों की कल्पना की श्रेष्ठतम उमंग है। उमंग-सागर का फेन है। मेरी तरफ़ नहीं देखती। माधव बाबू का क्या अभिप्राय है ? वह कुमुदिनी को मेरे साथ अकेले छोड़ देना चाहते हैं, लेकिन वह गर्विणी उठकर पहले ही चली जाती है। आजकल शाम को कभी आती भी नहीं। अच्छा, मिस्टर सिनहा क्या अपनी स्त्री को नहीं चाहते, या उनमें कोई अवगुण है। अवगुण नहीं, तो कुमुदिनी उनके पास क्यों नहीं रहती। आज चार महीने से वह यहाँ है। मिस्टर सिनहा भी कभी नहीं आते। तो ज़रूर मिस्टर सिनहा में कोई अव-

गुण है। अच्छा, वह अवगुण क्या हो सकता है? आदमी सीधा मालूम होता है, गुणवान् भी है, लेकिन बोदा है। उसमें वह सिफ़त नहीं, जो स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित करती है। वह हद से ज़्यादा सीधा है। कुमुदिनी-ऐसी गर्विणी के लिये वह हर तरह से अनुपयुक्त है—हाँ, हर तरह से अनुपयुक्त है। तब मैं ही क्यों न अपना आधिपत्य जमाऊँ। इन दामों कौन बुरी है?

"लेकिन चपला! चपला का सौंदर्य भी बड़ा चित्ताकर्षक है। उसमें हास्य है, उसमें गुदगुदी है, उसमें शांति है। उसमें कुमुदिनी का-सा अभिमान नहीं—उसमें कुमुदिनी का-सा क्रोध और गर्व नहीं। वह सरल है, चंचल है। वह उषा की तरह सुंदरी है, वह निर्झरिणी की भाँति चंचल है। लेकिन उस चंचलता में कलुषता नहीं। उस चंचलता में अभिमान की छाप नहीं। वह निर्दोष चंचलता है। उसकी चंचलता आकर्षित करती है, लेकिन शांति देती है। चपला को देखकर प्रेम पैदा होता है और कुमुदिनी को देखकर आसक्ति। कुमुदिनी को देखकर आदमी अपने-आप खिंच जाता है, चपला को भी देखकर खिंचता है, लेकिन उस तरह से नहीं। यही अंतर है। लेकिन दोनो सुंदरी हैं, किसको लेना चाहिए। दोनो ही मिलें, तो अच्छा है। एक सदैव के लिये और एक क्षण-भर के लिये।

"अच्छा, मैं कैसा हूँ। ख़ूबसूरत हूँ। मैं जानता हूँ, मुझमें वह शक्ति है, जिससे मैं कुमुदिनी को वशीभूत कर लूँगा, लेकिन जल्दी नहीं। वह मेरे जाल में फँस जायगी। वह मेरी होगी और अवश्य होगी। वह जाल फैलाया है, जिसमें माधव बाबू, मुरारी, कुमुदिनी और चपला सब फँसे हैं। एक भी नहीं निकल सकते। माधव बाबू तो निरे काठ के उल्लू हैं। जो सबक़ पढ़ाओ, वही पढ़ेंगे। बस, उनकी हाँ में हाँ मिलाते जाओ। वह अपने हैं। मुरारी! मुरारी पर अपना

प्रभाव अभी कम है। छोकरा चालाक है। शायद उसको मेरे मन का आभास मिल गया है। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं बड़ी सावधानी से रहता हूँ। अच्छा, और सावधान रहूँगा, चारो तरफ़ से सचेत रहूँगा। अगर कहीं समय से पहले भंडाफोड़ हो गया, तो दोनो शिकार हाथ से चले जायँगे।

"मैं इलाहाबाद का ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हूँ। इँगलैंड का सार्टीफ़िकेट मेरे पास है। सुशिक्षित हूँ। अ...वि...वा...हि....त ही-सा हूँ। क्यों, कौन जानता है? नहीं, मैं अविवाहित हूँ। केट तो मर गई। समुद्र में गिरकर मर गई। मेरे सिवा इसका रहस्य कोई नहीं जानता। हयँ! फिर केट का ख़याल! आज बात क्या है? क्यों केट का चित्र मेरे नेत्रों के समक्ष आ जाता है। अच्छा, अब न सोचूँगा। उसका ख़याल करके अपने इस कल्पित स्वर्ण-संसार को चार-चार नहीं करूँगा!

"कौन बोल रहा—कोयल! आह! कितना मीठा स्वर है। हाय! वे दिन याद पड़ते हैं, जब मैं कभी चिढ़ाया करता था। क्या आज भी चिढ़ाऊँ, लेकिन इस समय शोभा न देगा। चपला का कंठ-स्वर इससे भी अधिक कोमल है। कितना मीठा स्वर है। अभी उस पर मेरा प्रभाव नहीं। करना पड़ेगा। मिस्टर माथुर भी बड़े अच्छे आदमी हैं। भोले हैं। उन पर मेरा रंग शीघ्र ही जम जायगा। जम गया है। आज शाम को उनके यहाँ निमंत्रण है। ज़रूर जाऊँगा। आज कौन दिन है। बुधवार, नहीं बृहस्पति है। बृहस्पति की शाम का निमंत्रण है। आज ही तो बृहस्पति है। अच्छा, माली से पूछूँ।

"माली! ओ माली!"

माली सामने आया।

मिस्टर वर्मा—"माली, आज कौन दिन है?"

माली ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर, आज बुध है।"

मिस्टर वर्मा ने भृकुटियाँ तनेनी करते हुए कहा—"हूं, बुध है। ग़लती तो नहीं करता?"

माली ने डरते हुए कहा—"नहीं हुज़ूर! आज बुध है। कल मैं हुज़ूर! बाज़ार गया था। बाज़ार मंगल के दिन लगता है।"

मिस्टर वर्मा—"तो आज बुध है?"

माली—"जी हाँ हुज़ूर, बंदापरवर!"

मिस्टर वर्मा—"आज तुम कितने गुलदस्ते तैयार कर सकते हो?"

माली—"ग़रीबपरवर, बीस तक तैयार हो सकते हैं।"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, ख़ूब बड़ा-बड़ा, जैसा साहब लोग मेम साहब को देता है।"

माली—"वैसे हुज़ूर, चार-पाँच हो जायँगे।"

मिस्टर वर्मा—"अच्छा, दो छोटे-छोटे बनाकर मेरी मेज़ पर रक्खो, और दो ख़ूब बड़े और ख़ूबसूरत बनाकर अभी घंटे-भर में ले आओ। अगर अच्छे हुए, तो इनाम मिलेगा।"

माली—"हुज़ूर, इस ग़ुलाम के हाथों से सैकड़ों बन चुके हैं, लेकिन आज वह गुलदस्ता तैयार करूँगा, जिससे मुर्दे भी जाग उठें!"

मिस्टर वर्मा ने झुंझलाकर कहा—"वेल, जाओ, हम बात नहीं सुनना माँगता।"

माली चला गया।

मिस्टर वर्मा फिर विचार-सागर में डूब गए—"तो आज बुध ही है। बृहस्पति कल है। अच्छा, कल ही सही। यह अच्छा किया, जो दो गुलदस्ते बनवाए! एक चपला को और एक कुमुदिनी को। पहले किसके यहाँ चलना चाहिए। चपला के यहाँ। उसके यहाँ जाने से फिर आने को मन न चाहेगा। तो चलो, पहले कुमुदिनी के यहाँ से

निपट आवें। कुमुदिनी कहाँ मिलेगी? बाहर तो होगी नहीं। बाहर बुलवा लेंगे। नहीं, बुलाना ठीक नहीं, क्योंकि अगर उसने कहीं इनकार कर दिया, तो फिर सब गुड़ गोबर हो जायगा। इसको भिजवा देंगे। नाम लिखना ठीक होगा। हर्ज क्या है। नहीं, कोई ज़रूरत नहीं। उसे आप मालूम हो जायगा।"

मिस्टर वर्मा न-मालूम कब तक अपने विचार-सागर में डूबे रहते कि उनके एक ख़ानसामा ने आकर कहा—"हुज़ूर! कोतवाल साहब हाज़िर हुए हैं।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"क्या बजा है?"

ख़ानसामा—"हुज़ूर, सात बज गया है।"

मिस्टर वर्मा—"ओहो, धूप भी बहुत चढ़ आई है।"

ख़ानसामा—"तो क्या हुकुम होता है, हुज़ूर।"

मिस्टर वर्मा ने बिगड़कर कहा—"जल्दी किस बात की पड़ी है। क्या मैं कोतवाल के बाप का नौकर हूँ। कमरे में बिठाओ। बोलो, साहब अभी ग़ुसल करने जाता है।"

ख़ानसामा चुपचाप चला गया।

मिस्टर वर्मा ग़ुसलख़ाने चले गए।

एक घंटे बाद मिस्टर वर्मा 'सूटेड' निकले। कोतवाल साहब ने उठकर सलाम किया। मिस्टर वर्मा ने सलाम का जवाब ज़रा गर्दन हिलाकर देते हुए कहा—"कहिए, आज सुबह कैसे?"

कोतवाल साहब—"यों ही हुज़ूर को सलाम करने चला आया। क्या हुज़ूर की तबियत कुछ नासाज़ है? चेहरे पर मलाल-सा नज़र आता है।"

मिस्टर वर्मा ने हँसकर कहा—"अजी नहीं कोतवाल साहब, तबियत बहुत अच्छी है, कहिए, आपका मिज़ाज ख़ुश है?"

कोतवाल साहब—"अल्हमदुलिल्लाह! हुज़ूर की मेहरबानी है।"

मिस्टर वर्मा—"क्या कुछ काम है ?"

कोतवाल साहब—"नहीं हुज़ूर, ज़रा तकलीफ़ देना था, मेरे भतीजे की सिफ़ारिश थोड़ी-सी कर दीजिए। बड़े साहब से ज़रा बोल-फ़र ठीक कर दीजिए।"

मिस्टर वर्मा—"अच्छा। और कुछ काम है ?"

कोतवाल साहब—नहीं "हुज़ूर, क्या हुज़ूर कहीं बाहर जा रहे हैं ?"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, ज़रा लाट साहब के यहाँ जाऊँगा।"

कोतवाल साहब—"अच्छा, तो हुज़ूर, ग़ुलाम रुख़सत होता है।"

कोतवाल साहब (मियाँ इनायतहुसेन) सलाम करके चल दिए।

मिस्टर वर्मा ने जमादार से कहा—"वेल, मोटर तैयार है ?"

शोफ़र ने आकर कहा—"जी हाँ हुज़ूर, तैयार है।"

मिस्टर वर्मा ने मोटर पर बैठकर कहा—"माली से बोलो, गुलदस्ता ले आवे।"

माली ने गुलदस्ता लाकर मोटर में रख दिया।

शोफ़र ने पूछा—"कहाँ ले चलना होगा हुज़ूर !"

मिस्टर वर्मा—"जॉर्जटाउन।"

जॉर्जटाउन कहते ही ड्राइवर समझ गया कि साहब कहाँ जाना चाहते हैं।

मिस्टर वर्मा गुलदस्ते उलट-पुलटकर देखने लगे। मोटर चल दी।

(४)

माधव बाबू चाय पान कर रहे थे। कुमुदिनी खड़ी थी। इनके अतिरिक्त, और कोई नहीं था। माधव बाबू ने चाय पीते-पीते कहा—"रानी, आजकल मिस्टर वर्मा नहीं आते क्या ?"

कुमुदिनी ने सिर झुकाए उत्तर दिया—"अभी कल ही तो आए थे। आप उस समय घर पर नहीं थे।"

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा बड़े अच्छे आदमी हैं।"

कुमुदिनी—"हाँ।"

माधव बाबू—"रानी, तू उनकी ठीक से ख़ातिर नहीं करती।"

कुमुदिनी—"बाबू! मैंने उनका कभी अपमान भी तो नहीं किया। आप और भैया दोनो उनकी बड़ी ख़ातिर करते हैं, फिर मेरी ख़ातिर की ज़रूरत?"

माधव बाबू रानी के इस शुष्क उत्तर से चुप हो गए, उसकी तरफ़ देखने लगे।

कुमुदिनी ने कहा—"क्या उन्होंने कभी शिकायत की है?"

माधव बाबू—"नहीं, एक मर्तबे कह रहे थे कि मैंने और मुरारी दोनो ने रानी से बहुत कहा कि हमारे साथ घूमने चले, लेकिन वह गई ही नहीं। मालूम होता है, मुझसे नाराज़ है।"

कुमुदिनी—"हाँ, मैंने इनकार ज़रूर कर दिया था। उस दिन मिस बैनरजी के आने की बात थी। इसीलिये कहीं गई नहीं।"

माधव बाबू—"तुम शाम को घूमने क्यों नहीं जातीं? मुरारी और तुम दोनो घूम आया करो। घूमने से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।"

कुमुदिनी—"जी हाँ, अभी कल भाभी, चपला, मिस बैनरजी और मैं घूमने गई थी।"

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा भी साथ थे?"

कुमुदिनी—"जी नहीं, उन्होंने यत्न तो बहुत किया, लेकिन हम सब लोगों ने टाल दिया। दूसरे, साथ में भाभी थी, वह उनके साथ कभी न जाती।"

माधव बाबू की भृकुटियाँ कुछ चढ़ीं।

कुमुदिनी—"फिर शायद वह और भैया सिनेमा गए थे।"

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा बड़े जेंटिलमैन हैं। उनके साथ भी कभी चली जाया करो।"

कुमुदिनी चुप रही।

माधव बाबू—"क्यों रानी, क्या हर्ज है ?"

कुमुदिनी—"हर्ज तो नहीं, लेकिन .....।"

माधव बाबू—"लेकिन के क्या माने ?"

कुमुदिनी—"मुझे न-मालूम क्यों बाहर के आदमी पसंद नहीं। जब तक आप या भैया साथ में न हों, डर मालूम होता है।"

माधव बाबू हँस पड़े। फिर कहा—"डर किस बात का ?"

कुमुदिनी—"मैं स्वयं नहीं जानती कि डर क्यों लगता है, लेकिन लगता ज़रूर है।"

माधव बाबू—"बात यह है कि तुम्हारी घूमने की आदत छूट गई है। क्या बताऊँ, उस गँवार से तुम्हारा विवाह करके मैंने बड़ी ग़लती की। उसने तुम्हारा मूल्य नहीं समझा। इसका कोई प्रति-कार करना ही होगा।"

इसी समय नौकर ने आकर कहा—"मिस्टर वर्मा आए हैं।"

मिस्टर वर्मा ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"सुप्रभात।"

माधव बाबू ने कहा—"आइए मिस्टर वर्मा, बैठिए। रानी, दूसरे कप में चाय दो।"

मिस्टर वर्मा ने देखा, कुमुदिनी के मुख पर एक विचित्र गंभी-रता थी। मिस्टर वर्मा ने एक बार कुमुदिनी की ओर देखा, और कहा—"जी नहीं, मैं चाय पीकर आया हूँ।"

शायद मिस्टर वर्मा को आशा थी कि कुमुदिनी उन्हें चाय पीने के लिये अनुनय-विनय करेगी। कुमुदिनी ने मिस्टर वर्मा का उत्तर सुनकर दूसरे कप में चाय नहीं डाली।

माधव बाबू ने कहा—"रानी, इस कप में चाय क्यों नहीं देती ?"

कुमुदिनी—"क्या ज़रूरत है, मिस्टर वर्मा नहीं पिएँगे।"

माधव वावू—"तब भी क्या हुआ। पिएँगे कैसे नहीं।"

मिस्टर वर्मा ने अभिमान-मिश्रित स्वर में कहा—"जी नहीं, धन्यवाद, मैं पीकर चला था। अब कोई आवश्यकता नहीं।"

कुमुदिनी जाने लगी।

माधव वावू ने कहा—"रानी, जाती है क्या?"

कुमुदिनी—"जी हाँ, ज़रा कुछ काम है।"

माधव वावू—"मिस्टर वर्मा के लिये कुछ मिठाई ले आओ।"

मिस्टर वर्मा की दोनो आँखें कुमुदिनी को खाए जा रही थीं। लेकिन उन्होंने माधव वावू के प्रस्ताव पर आपत्ति करते हुए कहा—"नहीं, रहने दीजिए, व्यर्थ में कष्ट होगा। मैं जल-पान करके चला हूँ।"

कुमुदिनी गर्व से मस्तक ऊँचा किए चली गई।

थोड़ी देर में एक नौकर मिठाई रख गया।

माधव वावू ने पूछा—"कहिए मिस्टर वर्मा, क्या ख़बर है?"

मिस्टर वर्मा—"सब कृपा है। कल पिताजी का पत्र आया है, उसमें मेरे विवाह की वातचीत लिखी है।"

इतना कहकर मिस्टर वर्मा हँस पड़े।

माधव वावू ने उत्सुकता से पूछा—"क्या लिखा है?"

मिस्टर वर्मा—"उन्होंने लिखा है, अगर तुम्हारी सम्मति हो, तो मैं यहाँ यानी देहली में विवाह तय कर लूँ। लड़की देखी-भाली है, अच्छी है। क़िस्सा मुख़्तसर मेरी राय माँगी है।"

माधव वावू—"आपने क्या निश्चय किया?"

मिस्टर वर्मा—"मैं तो अभी फ़िलहाल शादी नहीं करना चाहता।"

माधव वावू ने निश्चिंतता की एक लंबी साँस ली।

माधव वावू—"मेरी तो यह इच्छा है कि आप अपना विवाह

ऐसा करें, जो समाज के सामने एक नमूना हो। यानी, जिस तरह आप एक समाज-सुधारक हैं, उसी प्रकार एक विवाह भी करें।"

मिस्टर वर्मा—"तो आपकी राय है कि मैं किसी बाल-विधवा या उसी तरह किसी और से विवाह करूँ ?"

माधव बाबू—"बेशक, जब समाज के सुधारक स्वयं अपने घर में सुधार न करेंगे, तो आपकी बातों का प्रभाव कैसे पड़ेगा। एक सच्चे सुधारक के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि वह स्वयं एक उदाहरण होकर समाज के सम्मुख उपस्थित हो। यदि समाज के ठेकेदार उसके विरुद्ध आवाज़ उठावें, तो वह उनका वह मुँहतोड़ उत्तर दे, जिससे उनके होश ठिकाने आ जायँ।"

मिस्टर वर्मा—"वाक़ई, मुझको करना तो यही उचित है।"

माधव बाबू—"मैं भी एक बात विचार रहा हूँ, कुछ आज से नहीं, बहुत दिनों से। लेकिन अभी उसके लिये समय नहीं हुआ।"

मिस्टर वर्मा—"कौन-सी बात ?"

माधव बाबू—"मेरी इच्छा है कि मैं......"

माधव बाबू रुक गए। कहते-कहते वह न कह सके। वह इस तरह रुक गए, मानो किसी ने उनका गला दबा दिया हो।

मिस्टर वर्मा उत्सुक दृष्टि से माधव बाबू की ओर देख रहे थे। वह मुँह फैलाए ही रह गए।

मिस्टर वर्मा ने कहा—"आप रुक कैसे गए, कहिए न।"

माधव बाबू—"जाने दीजिए, फिर कभी कहूँगा।"

मिस्टर वर्मा हैरान थे। वह बार-बार सोचने लगे, न-मालूम कौन-सा गुप्त भेद वह खोलने जा रहे थे, फिर रुक क्यों गए।

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा, आप रानी के व्यवहार से असंतुष्ट तो नहीं ?"

मिस्टर वर्मा—"ओह, नहीं-नहीं, कभी नहीं। मैं कभी असंतुष्ट हो

ही नहीं सकता। मैं किसी के व्यवहार से असंतुष्ट नहीं होता, और फिर कु...मिसेज़ सिनहा के व्यवहार से! मेरी जान में तो उन्होंने कभी ऐसा व्यवहार नहीं किया, जिससे मैं असंतुष्ट होऊँ।"

माधव बाबू—"ख़ैर, मुझे जानकर बड़ा संतोष हुआ कि आपने कुछ बुरा नहीं माना।"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, मैं कभी बुरा नहीं मान सकता। अच्छा, तो अब विदा दीजिए। अभी मुझे मिस्टर माथुर के यहाँ जाना है; क्योंकि उनसे एक विषय में परामर्श करना है।"

माधव बाबू—"लेकिन आपने जल-पान नहीं किया?"

मिस्टर वर्मा—"मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि मैं घर से जल-पान करके चला था।"

माधव बाबू—"यह तो ठीक है, लेकिन ज़रा-सा खा लेना चाहिए।"

मिस्टर वर्मा अनुरोध न टाल सके।

थोड़ी देर बाद उठते हुए बोले—"कल शाम को मिस्टर माथुर के यहाँ भोज है, शायद आप जायँगे?"

माधव बाबू—"हाँ, ज़रूर। आप यहाँ आइएगा, हम दोनो साथ चलेंगे।"

मिस्टर वर्मा उठकर बाहर आए। वह बाग़ में आकर टहलने लगे और इधर-उधर देखने लगे। बीच में एक दीवार खड़ी थी, और उसके उस तरफ़ ज़नाना बाग़ था। वह दीवार के पास आए, चारो तरफ़ देखा। कहीं कोई न था। मिस्टर वर्मा का हृदय धड़क रहा था। उनका इरादा हुआ कि एक ही छलाँग में दीवार पार कर जायँ, लेकिन उनकी हिम्मत न हुई। वह उस पार देखने का प्रयत्न करने लगे। इसी समय पीछे से किसी ने हँसकर कहा—"मिस्टर वर्मा, यह चोरी क्यों हो रही है?"

मिस्टर वर्मा मारे शर्म के वहीं गड़ गए। उनका मुँह लाल

हो गया। उन्होंने पीछे सिर घुमाकर देखा, सामने हँसती हुई कुमुदिनी खड़ी थी। जिसके लिये यह आयोजन था, वह समीप खड़ी थी।

मिस्टर वर्मा ने शरमाए हुए कहा—"मेरी छड़ी उस तरफ़ गिर पड़ी थी, वही देख रहा था।"

कुमुदिनी ने कहा—"वाह, आपकी छड़ी तो आपके पास ही पड़ी हुई है। वह देखिए, क्या पड़ी है।"

मिस्टर वर्मा ने सोचा था कि शायद कुमुदिनी किसी को छड़ी उठाने के लिये भेजे, तो वह मौक़ा पाकर छड़ी फेंक देंगे। लेकिन कुमुदिनी के इस उत्तर से तो वह और शर्म से कट गए।

उन्होंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—"अरे, वह इसी ओर पड़ी है, मैं समझा था, उस तरफ़ गिर पड़ी। मैं हाथ हिलाता चला आ रहा था, आते वक़्त एक पेड़ पर मारा, छड़ी हाथ से छूट गई। मुझे मालूम हुआ, वह उस पार जा गिरी। देखिए, ज़रा-सी भूल से कितना अनर्थ हो गया।"

कुमुदिनी ने हँसते हुए कहा—"वह कुछ नहीं।"

मिस्टर वर्मा—"अच्छा, ज़रा देर ठहरिए, मैं अभी आता हूँ।"

कुमुदिनी ठहरी रही। मिस्टर वर्मा चले गए।

थोड़ी देर बाद मिस्टर वर्मा आए, उनके हाथों में फूलों का एक बड़ा भारी गुलदस्ता था।

मिस्टर वर्मा—"मैंने सुना था, आपको फूलों से बड़ा शौक़ है, मेरे यहाँ फूल के बहुत पेड़ हैं, और फूल भी अच्छे होते हैं, इसी-लिये आज आपके लिये यह गुलदस्ता ले आया हूँ। आशा है, आप इसे स्वीकार करेंगी।"

कुमुदिनी के मुख पर से हँसी चली गई, और मुख गंभीर हो गया। उसने बड़े शुष्क स्वर में कहा—"मिस्टर वर्मा, धन्यवाद! आप दुबारा

कष्ट न करें। मेरे यहाँ भी फूल बहुतायत से होते हैं। आप व्यर्थ कष्ट न उठावें।"

मिस्टर वर्मा सकुचा गए। उन्होंने बड़े ही विनीत स्वर में कहा—"क्या आप रुष्ट हो गईं?"

कुमुदिनी—"जी नहीं, लेकिन मैं यह पसंद नहीं करती।"

मिस्टर वर्मा—"क्षमा कीजिए मिसेज़ सिनहा।"

कुमुदिनी ने सोचा, उसने बात बड़ी कठोर कह दी है। इस-लिये उसने हँसते हुए कहा—"नहीं, क्षमा की कोई आवश्यकता नहीं। लेकिन मेरे यहाँ काफ़ी फूल होते हैं। मैं आपको कष्ट नहीं देना चाहती।"

मिस्टर वर्मा—"जी नहीं, मुझे कष्ट क्यों होगा। मैंने केवल इसलिये दिया था कि आपको पुष्पों से विशेष प्रेम है।"

कुमुदिनी ने फूल ले लिए।

मिस्टर वर्मा—"अच्छा, तो मैं चलता हूँ। क्षमा कीजिएगा।"

कुमुदिनी—"आप अब कष्ट न कीजिएगा। इस कृपा के लिये धन्यवाद!"

मिस्टर वर्मा उदास मन से चले आए। उनके ओठों पर वही मरोड़ थी। उनके मुख पर ग्लानि, क्षोभ, क्रोध की लालिमा थी। उनकी आशा में वह ठोकर लगी कि उनके मुख की श्री अंतर्हित हो गई।

उन्होंने विचित्र तरह से ओठों को मरोड़ कर स्वगत कहा—"गर्विणी! तेरा गर्व मैं अवश्य चूर करूँगा, तभी मुझे शांति मिलेगी। उफ़! यह अपमान! असह्य है। सबसे पहले मैं तुझे वशीभूत करूँगा, और फिर तुझे उसी तरह ठुकरा दूँगा, जिस प्रकार पुराना जूता ठुकरा दिया जाता है।"

मिस्टर वर्मा मोटर पर आकर बैठ गए।

शोफ़र ने पूछा—"कहाँ हुज़ूर?"

मिस्टर वर्मा ने जवाब दिया—"बँगले।"

मोटर धूल उड़ाती हुई चल दी। मिस्टर वर्मा अपने विचारों में मग्न थे।

(६)

नीरव संध्या का झिलमिलाता श्यामल प्रकाश धीरे-धीरे और गाढ़ होता जा रहा था। कृष्णपक्ष था। चंद्रदेव का कहीं पता न था। नील आकाश में केवल तारों की श्री विद्यमान थी। वे भी झिलमिला रहे थे, मानो अभी निर्वाण होकर समस्त संसार को घोर अंधकार में निरवलंब छोड़ देंगे। तारे इस प्रकार छिटके थे, मानो किसी निर्दय विरही ने कलंकी चंद्र के शत खंड करके आकाश में छितरा दिए हों, और वे टुकड़े तड़प-तड़पकर जान दे रहे हों। यद्यपि तारे अपने मौन संदेश से संसार को निविड़ कालिमा में डुबो देने की धमकी दे रहे थे, लेकिन मिस्टर माथुर के यहाँ का विद्युत्-प्रकाश तारों को चिनौती दे रहा था—"करो तुम अंधकार, लेकिन जब तक हम विद्यमान हैं, तब तक संसार में अंधकार न होने देंगे। हमारा जन्म मनुष्य-जाति के लिये है, हम उसके दास हैं।"

मिस्टर माथुर के यहाँ भोज था। भोज उनके लड़के के तिलक के उपलक्ष में था। भोज में नगर के सभी संभ्रांत व्यक्ति निमंत्रित थे। आयोजन भी बड़ा ज़बरदस्त था। लेकिन चपला न-मालूम क्यों आज अन्यमनस्क थी। वह किसी काम में भाग न लेकर बाग़ में मौन बैठी हुई प्रकृति-पूजा में लीन थी। आज उसकी सारी हँसी न-मालूम कहाँ चली गई थी। इस सुअवसर में भी उसके मुख पर हँसी न थी। हँसी तो दूर रही—हास्य की एक क्षीण रेखा भी न थी।

मेहमानों में सबसे पहले आनेवाले मिस्टर वर्मा थे। मिस्टर वर्मा का स्वागत मिस्टर माथुर ने किया। वह देखते ही बोले—"आइए मिस्टर वर्मा।"

मिस्टर वर्मा ने भीतर आकर कहा—"अरे, कोई अभी नहीं आया, मैं ही प्रथम व्यक्ति हूँ। मैं समय से शायद कुछ पहले चल पड़ा हूँ। हाँ, ख़याल आया, माधव बाबू ने कहा था कि मेरे यहाँ आना, हम तुम साथ चलेंगे, लेकिन रास्ते में ख़याल भूल गया, सीधे यहीं चला आया। अच्छा, मैं माधव बाबू को ज़रा लिवा लाऊँ।"

मिस्टर माथुर ने आपत्ति करते हुए कहा—"नहीं, आप अब न कष्ट कीजिए, मैं आदमी भेजकर माधव बाबू को सूचित किए देता हूँ कि आप यहाँ चले आए हैं, आप वहाँ मिस्टर वर्मा का इंतज़ार न करें।"

मिस्टर वर्मा—"हो आने में कुछ हर्ज नहीं। अभी यहाँ तो कोई आया ही नहीं।"

मिस्टर माथुर—"वाह, आप तो हैं! मैं आपको अब नहीं जाने दे सकता।"

मिस्टर वर्मा फिर नहीं गए।

थोड़ी देर बाद इधर-उधर देखकर मिस्टर वर्मा ने पूछा—"मिस माथुर नहीं दिखाई पड़ती।"

मिस्टर माथुर—"अभी-अभी तो यहीं थी, शायद बाग़ में होगी। बुलवाऊँ क्या?"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, ऐसी कोई ज़रूरत नहीं, यों ही पूछा। उनकी परीक्षा का फल कब तक आवेगा?"

मिस्टर माथुर—"यह मैं ठीक नहीं कह सकता। शायद दो-तीन सप्ताह में आ जाय। पेपर उसने सब अच्छे किए हैं। मिस्टर सिनहा के पेपर में तो पास है।"

मिस्टर वर्मा—"कौन मिस्टर सिनहा?"

मिस्टर माथुर—"मिस्टर सिनहा को आप नहीं जानते क्या? माधव बाबू के दामाद!"

मिस्टर वर्मा—"जी हाँ, एक बार ही उन्हें देखा है। मिस माथुर ने परिचय करवाया था।"

मिस्टर माथुर—"अच्छा, उन्होंने फ़िलासफ़ी पर एक बड़ी अच्छी किताब लिखी है, उस पर उन्हें डॉक्टर की उपाधि मिली है।"

मिस्टर वर्मा—"जी हाँ, मैंने वह किताब पढ़ी है। वाक़ई बड़ी अच्छी है।"

मिस्टर माथुर—"वह एक नई चीज़ है। उसने बड़े-बड़े फ़िलासफ़रों को चकाचौंध में डाल दिया है। वही मिस्टर सिनहा, इस साल फ़िलासफ़ी के परीक्षक थे।"

मिस्टर वर्मा ने बातों का रुख़ पलटते हुए कहा—"कहिए, शादी कहाँ तय हुई?"

मिस्टर माथुर—"आगरे में, बाबू रामप्रसाद के यहाँ।"

मिस्टर वर्मा—"बाबू रामप्रसाद सबजज?"

मिस्टर माथुर—"हाँ, क्या आप उन्हें जानते हैं?"

मिस्टर वर्मा—"जी हाँ, ब.ख़ूबी, मेरे पिताजी के घनिष्ठ मित्रों में हैं।"

मिस्टर माथुर—"ख़ानदान कैसा है?"

मिस्टर वर्मा—"बहुत अच्छा है। पुश्तैनी रईस हैं। मिस्टर कृष्णचंद्र कहाँ हैं?"

कृष्णचंद्र मिस्टर माथुर के पुत्र का नाम था।

मिस्टर माथुर—"भीतर हैं।"

मिस्टर वर्मा—"अच्छा, ज़रा मैं बाग़ में ही तब तक घूम आऊँ।"

मिस्टर माथुर—"हाँ-हाँ, जाइए, चपला भी शायद वहीं मिले।"

मिस्टर वर्मा बाग़ में चले गए। चपला ही से मिलने के लिये वह इतनी जल्दी आए थे। वह चपला की खोज में चल दिए।

चपला अपने ही विचारों में मग्न थी। उसे मालूम नहीं हुआ कि कब कौन आया, और उसके पीछे कितनी देर से खड़ा है। मिस्टर वर्मा चुपचाप उसके सौंदर्य को निरख रहे थे।

मिस्टर वर्मा ने धीरे से पुकारा—"मिस माथुर!"

चपला चौंक पड़ी। उसने डरकर पीछे देखा। मिस्टर वर्मा खड़े हुए मुस्किरा रहे थे।

मिस्टर वर्मा—"क्षमा कीजिए, मैंने आपको डरवा दिया।"

चपला ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"नहीं, मैं डरी नहीं।"

मिस्टर वर्मा—"आप चौंक तो गईं।"

चपला—"यों ही ज़रा-सा।"

मिस्टर वर्मा—"आप आज इतनी अन्यमनस्क क्यों हैं? आप आज के दिन यहाँ एकांत-वास कर रही हैं।"

चपला ने कहा—"एकांत-वास कैसा! वहाँ मन ज़रा घबरा गया था, इसलिये हवा खाने यहाँ चली आई।"

मिस्टर वर्मा—"आज की रात बड़ी अच्छी है, देखिए, तारे कैसे छिटके हैं, अगर कहीं चंद्र होता, तो क्या बात थी!"

चपला—"मालूम होता है, आप प्रकृति-भक्त भी हैं।"

मिस्टर वर्मा—"नहीं मिस माथुर, मैं ऐसी दुनिया में रहता हूँ, जहाँ प्रकृति-पूजा के लिये समय ही नहीं मिलता। लेकिन जो मनुष्य प्रकृति-सौंदर्य को सराह नहीं सकता, उसका हृदय पशु का हृदय है।"

चपला—"तो आप थोड़े-बहुत प्रकृति-पुजारी हैं।"

मिस्टर वर्मा—"यह मैं नहीं कह सकता।"

चपला—"मनुष्य को ज़रूर प्रकृति-पुजारी होना चाहिए।"

मिस्टर वर्मा ने हँसते हुए कहा—"आपके भाई साहब की शादी की दावत तो मिल रही है, यह कहिए, आपकी कब मिलेगी?"

चपला ने गंभीर होकर कहा—"शायद कभी नहीं।"

मिस्टर वर्मा ने आश्चर्य से कहा—"इसके माने आप कभी विवाह नहीं करेंगी।"

चपला—"इरादा तो मेरा ऐसा ही है।"

मिस्टर वर्मा—"क्यों, ऐसा इरादा क्यों?"

चपला—"विवाह एक बंधन है। मनुष्य विवाह के बाद स्वतंत्र नहीं रहता। मुझे संसार में बहुत काम करना है। हमारा देश बड़ा मूर्ख है, और ख़ासकर यहाँ की स्त्री-जाति! मैं आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर इस कठिन भार को अपने सिर उठाना चाहती हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"आपके विचारों में यह परिवर्तन कब से हुआ?"

चपला—"आपने कब जाना था कि मेरे विचार ऐसे नहीं थे।"

मिस्टर वर्मा—"पहले मुझे कभी नहीं मालूम हुआ कि आपके ये विचार हैं। एक मनुष्य, जो सदैव हँसता रहे, उससे यह आशा नहीं की जा सकती कि संसार को वह इस तरह इतनी जल्दी त्याग देगा। आपके हृदय में क्या कोई बड़ा आघात पहुँचा है?"

चपला ने अपने को बहुत सँभालकर कहा—"नहीं। मेरा विचार बहुत दिनों से है कि मैं देश की सेवा करूँगी। मिस्टर वर्मा, आप आँख उठाकर देखें, आपके सामने सैकड़ों बाल-विधवाएँ रोती हैं, सैकड़ों अपना धर्म छोड़कर मुसलमान हुई जा रही हैं, सैकड़ों बर्बर पुरुष उन पर अत्याचार करते हैं। उनके विरुद्ध कितनी आवाज़ें उठती हैं? कितने पुरुष उनकी रक्षा के लिये अपनी भुजाएँ फैलाते हैं? शायद दो-तीन। जब तक स्त्रियाँ स्वयं अपने आपको न बचाएँगी, कोई दूसरा उनकी रक्षा के लिये आगे नहीं बढ़ेगा। मैं हरएक स्त्री के पास संदेश पहुँचाऊँगी—हरएक स्त्री को उत्तेजित करूँगी—हरएक को अपनी लाज, अपनी संभ्रांति, अपना गौरव और धर्म बचाने के लिये उत्साह दूँगी—बस, यही संसार में मेरा काम होगा।"

मिस्टर वर्मा स्तब्ध दृष्टि से चपला की ओर देख रहे थे।

उन्होंने कहा—"मिस माथुर! आपके विचार, आपका उद्देश्य बड़ा उज्ज्वल है। मैं आपको बधाई देता हूँ।"

चपला—"धन्यवाद। मिस्टर वर्मा, मेरा हृदय बड़ा दुखी होता है, जब मैं देखती हूँ कि यहाँ के पुरुष पशुओं से भी अधिक निष्ठुर होकर स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं, और बेचारी स्त्रियाँ चुपचाप सहन करती हैं। क्यों? इसलिये कि वे अपनी मर्यादा, अपनी इज़्ज़त नहीं जानतीं। जहाँ उन्हें अपने अधिकार मालूम हो गए, वे ज़रा समर्थ हो गईं, फिर वे भी अपनी रक्षा कर सकेंगी। स्त्री का जन्म अपने पति की सेवा के लिये हुआ है, और पुरुष का जन्म उसकी रक्षा के लिये। दोनो को अपने-अपने कर्तव्य पालन करने चाहिए। अगर उन दोनो में से कोई भी नहीं करता, तो वह अपने धर्म से विचलित होता है।"

मिस्टर वर्मा—"आप एक ओर स्त्री-स्वाधीनता चाहती हैं, और दूसरी ओर उन्हें अपने पति की दासी बनाती हैं?"

चपला—"नहीं, सच्ची स्त्री-स्वाधीनता वही है, जहाँ स्त्री पर अत्याचार न हो। स्त्री-पुरुष दोनो एक होकर रहें। दोनो में मत-भेद न होने पावे। स्त्री को यह गर्व न हो कि मैं स्वामी से बड़ी हूँ और न स्वामी को अभिमान हो कि ईश्वर ने सब बुद्धि मेरे ही हिस्से में रक्खी है। स्त्री घर की मालकिन है और पुरुष बाहर का। लेकिन दोनो में मतैक्य हो। दोनो उस पवित्र प्रेम-सूत्र में बँधे हों, जहाँ न राग है, न अभिमान है, न द्वेष है और न कलह। असीम शांति है, अनंत प्रेम है। स्त्रियाँ इतनी स्वतंत्र हों कि वे हरएक से मिल सकें, अपनी रक्षा कर सकें, ख़ूब शिक्षा प्राप्त कर सकें। समय पड़े, तो अपनी जीविका का भी प्रबंध कर सकें। वे इतनी स्वतंत्र हों कि अगर पुरुष उन पर अत्याचार करें, तो वे उसका प्रतिकार भी कर सकें। इतनी स्वाधीन हों कि वे अपने वर के संबंध में अपना मत दे सकें। लेकिन इतना

नहीं कि वे गली-गली मारी-मारी फिरकर अपना स्वामी आप चुनें। मेरा तो यह विचार है कि एक स्त्री के स्वामी चुनने का भार उसके पिता पर ही होना चाहिए, लेकिन उसकी भी एक राय हो! अगर वह नापसंद करती है, तो उसके लिये दूसरा वर चुना जाय।"

इसी समय मिस्टर माथुर ने आकर कहा—"चपला, देखो, मिसेज़ सिनहा तुम्हें ढूँढ़ रही हैं।"

चपला—"अच्छा, मैं चलती हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"क्या माधव बाबू आ गए?"

मिस्टर माथुर—"हाँ, सब लोग आ गए, अब आप भी चलिए।"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, चलिए। मिस माथुर के उद्देश्य बड़े उज्ज्वल हैं।"

मिस्टर माथुर—"क्या बात हो रही थी?"

मिस्टर वर्मा—"नारी-स्वाधीनता की बात थी।"

मिस्टर माथुर—(हँसकर) "आजकल की सभी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ स्त्री-स्वाधीनता पर बातें करती हैं।"

माधव बाबू ने आकर कहा—"वाह मिस्टर वर्मा, आप तो ख़ूब आए। अगर मिस्टर माथुर का आदमी न आता, तो मैं आपका इंतज़ार ही करता रहता।"

मिस्टर वर्मा—"मुझे बड़ा शोक है, मैं आज ऐसे झंझट में फँसा रहा कि आपके यहाँ जाना ही भूल गया। जब यहाँ आया, तो याद आई। मैं जा रहा था, लेकिन मिस्टर माथुर ने जाने नहीं दिया।"

माधव बाबू ने रसिकता का परिचय देते हुए कहा—"आप ही अकेले-अकेले दावत पर हाथ साफ़ करना चाहते थे?"

मिस्टर वर्मा ने हँसकर उत्तर दिया—"नहीं, यह मेरा इरादा तो न था, लेकिन शायद अब कुछ होता-सा नज़र आता है।"

मेहमान क़रीब-क़रीब सभी आ गए थे। मिस्टर माथुर के यहाँ का बड़ा कमरा मेहमानों से भरा हुआ था। अभिमंत्रित लोगों के मनोरंजन के लिये काफ़ी सामान था। एक तरफ़ सिनेमा हो रहा था, दूसरी ओर कई मशहूर गवैए गा रहे थे। मिस्टर माथुर भी नाच के ख़िलाफ़ ही थे।

थोड़ी देर बाद, इधर-उधर देखकर, मिस्टर माथुर वहाँ गए, जहाँ कुमुदिनी, चपला और मिस बैनरजी वग़ैरह थीं।

मिस्टर माथुर ने चपला से पूछा—"चपला! मिस्टर सिन्हा अभी तक नहीं आए। तुमने देखा है?"

चपला ने एक निःश्वास लेकर कहा—"वह यहाँ नहीं हैं, तीर्थ करने गए हैं अपनी मा के साथ।"

कुमुदिनी का चेहरा एकदम पीला पड़ गया। लेकिन वह बहुत शीघ्र अपने को सँभालकर दूसरी ओर देखने लगी।

मिस्टर माथुर—"कब गए?"

चपला—"आज दोपहर को।"

कुमुदिनी की आँखों में दो आँसू छलक आए।

(७)

कुमुदिनी ने जिस दिन सुना कि निर्मल अपनी मा के साथ तीर्थ करने गए, तब से न-मालूम क्यों उसका मन मथने लगा। न-मालूम क्यों उसका मन बार-बार उसे धिक्कारने लगा। उसे बार-बार यह मालूम होने लगा कि वह निर्मल से शायद जन्म-भर के लिये अलग हो गई है। अब वह उसे न मिलेंगे! उस दिन शाम से कुमुदिनी का चित्त व्याकुल रहने लगा।

प्रातःकाल था। कुमुदिनी उद्विग्न मन से अपने बाग़ में घूम रही थी। वह घूमते-घूमते एक जूही के पेड़ के पास आकर खड़ी हो गई। कुछ फूल तोड़े और सूँघकर फेंक दिए। एक फूलों से लदी

डाल कुमुदिनी के कपोलों से लग रही थी, उसने उसे पकड़ा और तोड़कर फेंक दिया। अभिमान और क्रोध से उसका बुरा हाल हो रहा था। कुमुदिनी को अपने ही विचारों से छुट्टी न थी। संसार की सब चिंताएँ उसे घेरे हुए थीं। कुमुदिनी कहने लगी—"वह गए, तीर्थ करने गए! अपनी मा के साथ! और कौन उनका साथी चलेगा। वह किसको अपने साथ लेंगे? उनके है ही कौन? मैं उनकी कोई नहीं हूँ। अगर होती, तो क्या जाते-जाते एक पत्र भी न लिखते। किसी से कहला दिया होता। यहाँ आकर मिल जाते। यहाँ आने से क्या छोटे हो जाते? या उनकी इज़्ज़त चली जाती। वह मुझ पर नाराज़ हैं। बेहद नाराज़ हैं, नहीं तो क्या अब तक वह ठहर सकते थे?

"भाभी कहती हैं कि सारा अपराध मेरा था। मैंने ही अपने पैर में कुल्हाड़ी मारी! तो क्या यह बात सच है? हृदय धिक्कारता तो ज़रूर है। मन में ग्लानि तो ज़रूर पैदा होती है। जीवन में अशांति तो अवश्य है। तब मैं ही अपराधिनी हूँ। वास्तव में अपराध मेरा ही है। तब? नहीं, अकेली मैं ही अपराधिनी नहीं हूँ, उनका भी अपराध था। सासजी का भी अपराध था। सबका दोष था। वह मुझे क्यों तंग करते? क्यों व्यंग्य करते? वह ताना छोड़ते थे। वह ऐसा समझते थे, मानो मैं उनकी मोल ली हुई दासी हूँ। हैं-हैं, मन फिर उतावला होने लगा। फिर वही अभिमान आने लगा। मैंने प्रतिज्ञा की थी कि अब से सबकी दस बातें सहूँगी, उत्तर नहीं दूँगी, क्रोध को, अभिमान को अपने पास नहीं फटकने दूँगी—और फिर वही! कुमुदिनी, शांत हो!

"अच्छा, क्या मैं वास्तव में अपने आपे में नहीं रहती? नहीं रहती, तभी तो मेरे मुँह से अकथ्य बात निकलती है। लोग कहते हैं कि मैं अभिमानिनी हूँ! अभिमान मुझे ज़रूर है। जिस मनुष्य में

अभिमान नहीं, आत्मगौरव नहीं, वह पशु है—बल्कि उससे भी अधम है। मैं अपनी इज़्ज़त नहीं खोना चाहती! बस, इसी कारण लोग मुझे अभिमानिनी समझते हैं। मुझे इस बात का अभिमान नहीं कि मेरे पिता क्या हैं, भाई क्या हैं, लेकिन इस बात का कि मैं क्या हूँ। मैं एक साधारण गँवार, अनपढ़, फूहर स्त्री नहीं हूँ। पति और पत्नी के अधिकार बराबर हैं। कोई भी एक दूसरे पर अत्याचार नहीं कर सकता। पति को अधिकार नहीं है कि वह पत्नी का मज़ाक़ उड़ावे। बस, इसी बात पर मुझे गुस्सा आता है। लेकिन भाभी कहती हैं कि पति को सब बात का अधिकार है। यही बात मेरे दिल में नहीं बैठती।

"मैं उन्हें प्यार करती हूँ—अपने से भी अधिक प्यार करती हूँ। दिन-रात उनका ही प्रतिबिंब मेरे सम्मुख रहता है। उनके लिये मैं जान देने को तैयार हूँ, लेकिन.........! लेकिन मैं अपने को नत नहीं कर सकती। यही तो आफ़त है। शायद वह भी मुझे प्यार करते हैं, तभी तो जब मैं आ रही थी, उनकी आँखों में आँसू भर आए थे। लेकिन वह मिलने नहीं आए और चले गए! मैं जानती हूँ, जिस लिये वह गए हैं। वह भी अपने को नत नहीं करना चाहते। तब क्या होगा, इसका परिणाम क्या होगा? ईश्वर ही जाने!

"चपला उस दिन उदास थी। उसके मुँह पर हँसी न थी। क्यों? उसने उनके जाने की बात किस ढंग से कही थी, मानो उसे बड़ा रंज है। उसकी आँखों में आँसू भरे हुए थे। वह बार-बार उन्हें छिपाती थी, लेकिन चाहे दूसरों ने न देखा हो, लेकिन मैंने अवश्य देखा था। वह उनके जाने से दुखी हुई थी। वह उस दिन उदास ही रही। कल भी वह मिलने आई थी। कल भी उसके मुँह पर हँसी नहीं थी। उनके जाने से चपला क्यों उदास है? क्या वह भी उनसे...! मन सिहर उठता है। बात नहीं निकलती। शायद

मेरा ख़याल ग़लत है। वह कभी भी उन्हें प्यार नहीं करती, केवल मेरी धारणा है।

"मिस्टर वर्मा का ध्यान मेरी ओर क्यों है? मैं उनको बहुत दिनों से देख रही हूँ कि वह मेरे पीछे पड़े हैं। यद्यपि वह मेरी ओर से उदासीनता दिखलाते हैं, लेकिन तब भी उनका ध्यान मेरी ही ओर रहता है। जब कभी मैं उनके पास होती हूँ, वह मेरी तरफ़ घूरा करते हैं, और जहाँ मैं उनकी ओर देखती हूँ, वह अपनी दृष्टि फिरा लेते हैं। ऐसा क्यों है? मेरा मन उन्हें देखकर न-मालूम क्यों घबरा जाता है। मैं उनके पास नहीं ठहर सकती। उनको देखकर मेरा मन घृणा से भर जाता है। उनको देखते ही मेरा ख़ून उबलने लगता है। मैं उनसे घृणा करती हूँ।

"उस दिन उन्होंने एक गुलदस्ता भेंट दिया था। क्यों दिया था, मैं नहीं जानती। लेकिन मैंने उसका उत्तर भी ठीक दिया। क्यों वह मेरे लिये इतनी उत्सुकता दिखावें! मैं एक अपरिचित मनुष्य से सहानुभूति नहीं चाहती। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आदमी अच्छा नहीं है। उसके मन में कोई बुरी धारणा है। उससे मुझे सतर्क रहना चाहिए। उस दिन बाग़ की दीवार फाँदने के विचार में थे। मैंने उन्हें देख लिया, वह कितने शरमाए थे! अवश्य उनके मन में कोई बुरी धारणा है।

"बाबू उन्हें बहुत चाहते हैं। उसने बाबूजी के ऊपर जादू की लकड़ी फेर दी है। वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करते हैं। इतना तो वह भैया को भी शायद नहीं चाहते! भैया को क्या, किसी को भी नहीं। न-मालूम उस मनुष्य में कौन शक्ति है, जो सबको अपनी ओर खींचती है। इतना तो ज़रूर है कि मिस्टर वर्मा बड़े धूर्त हैं। उनकी बातों में एक विशेष आकर्षण है। उनके स्वर में एक अद्भुत कंपन है—वह कंपन बड़ा प्रभावोत्पादक है। लेकिन उसके साथ-साथ

ओठों की मरोड़ भी बड़ी विचित्र है। जब वह ओठों को मरोड़ते हैं, तो हृदय में एक भय का संचार होता है। उस दिन जब मैंने उन्हें दीवार फाँदते समय पकड़ा था, तब दो-तीन वार उन्होंने अपने ओठों को मरोड़ा था। बड़ा विचित्र मनुष्य है, लेकिन मुझे सावधान रहना चाहिए।

"चपला भी इनकी शिकायत करती थी। वह भी कहती थी कि मिस्टर वर्मा अच्छे आदमी नहीं मालूम पड़ते। उनसे हरएक को सतर्क रहना चाहिए। भाभी तो उन्हें बिलकुल ही पसंद नहीं करतीं। वह उन्हें फूटी आँखों नहीं देख सकतीं, बार-बार उनकी शिकायत किया करती हैं। लेकिन भैया से तो मित्रता है। हाँ, उतनी नहीं, जितनी बाबूजी से है। बाबूजी जहाँ कहीं भी जाते हैं, उनके साथ जाते हैं। उन्हें तब तक चैन नहीं मिलता, जब तक मिस्टर वर्मा नहीं आते। अच्छा, इसका कारण क्या है? इतनी मित्रता क्यों है? क्यों वह मुझे उनकी ख़ातिर के लिये बार-बार कहते हैं? मैं इसका कोई भी कारण नहीं खोज पाती। इसका सबब हो ही क्या सकता है। शायद इसलिये कि मिस्टर वर्मा एक बड़े आदमी हैं, और उनका मत उनसे मिलता है।"

कुमुदिनी अपने विचारों में इतनी मग्न थी कि उसे ज़रा भी पता न था कि उसकी भाभी कब से उसकी ओर देख रही है। जब कुमुदिनी की समाधि किसी प्रकार भी न टूटी, तो उसने कहा—"आजकल समाधि भी लगाई जाने लगी?"

कुमुदिनी ने चौंककर पीछे देखा, और कहा—"आप यहाँ कब से खड़ी हैं?"

लज्जा—"बहुत देर से। जब देखा कि योगिनी की समाधि नहीं टूटती, तब हारकर भंग करने का निश्चय किया।"

कुमुदिनी—"वाह! आप ख़ूब चुपचाप आकर खड़ी हो गईं, और मुझे मालूम भी नहीं होने पाया।"

लज्जा—"मालूम तो तब हो आपको, जब आप अपने आपे में हों। आप तो समाधि में मग्न थीं। कहिए, किसके बारे में इतना तन्मय होकर सोच रही थीं?"

कुमुदिनी—"किसके बारे में सोचूँगी? सोचो तुम!"

लज्जा—"मैं तो नहीं सोचती, सोच तो आप रही थीं।"

कुमुदिनी ने कोई उत्तर नहीं दिया। लज्जा कुमुदिनी के पास बैठ गई।

लज्जा—"तुमने सुना कि निर्मल बाबू तीर्थ करने गए हैं?"

कुमुदिनी ने सिर हिलाकर उत्तर दिया—"हाँ।"

लज्जा—"जानती हो, क्यों गए हैं?"

कुमुदिनी ने फिर सिर हिलाकर उत्तर दिया—"नहीं।"

लज्जा—"तुम इतनी भोली हो कि समझ नहीं सकतीं?"

कुमुदिनी—"नहीं।'

लज्जा—"तुम्हें भुलाने की ग़रज़ से। बहन, तुम्हें वह बहुत प्यार करते हैं, शायद प्राणों से भी अधिक, लेकिन......"

कुमुदिनी—"जाओ, तुम्हें हमेशा रात-दिन यही चिंता रहती है। तुम तिल का पहाड़ बनाती हो। वह गए हैं तीर्थ कराने अपनी मा को, और आप उसके यह अर्थ लगाती हैं। आप भी हैं पूरी गावदुम।"

लज्जा—"चाहे गावदुम कहो, चाहे जो कुछ, जो मैंने अर्थ निकाला था, वह तुमको बतला दिया। अच्छा, फिर यहाँ क्यों नहीं आए, तुम्हें एक पत्र नहीं लिखा, किसी को ख़बर नहीं दी, आख़िर इसके क्या मतलब हैं?"

कुमुदिनी—"उन्हें समय न मिला होगा। जल्दी में जा रहे होंगे। पहले से जाने का निश्चय न रहा होगा। एकदम से तैयारी की होगी। इसमें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तुम जानती हो कि वह मुझसे नाराज़ हैं। जब से मैं आई, तब से उन्होंने कोई पत्र नहीं लिखा।"

लज्जा—"उनका जाना क्या तुम्हें नहीं खटका ?"

कुमुदिनी—"मुझे क्यों खटकने लगा ?"

लज्जा—"अभी उस दिन स्वामी-वशीकरण पूछ रही थीं।"

कुमुदिनी—"यों ही पूछ रही थी, देखूँ तुम क्या कहती हो।"

लज्जा—"तो क्या तुम निर्मल बाबू को नहीं चाहतीं ?"

कुमुदिनी—"तुम भैया को नहीं चाहतीं ?"

लज्जा—"मेरी और तुम्हारी ~~बराबरी नहीं~~ हो सकती।"

कुमुदिनी—"यह बताइए, आप भैया को चाहती हैं या नहीं ?"

लज्जा—"मैं तो उन्हें अपने जीवन का ध्रुवतारा समझती हूँ।"

कुमुदिनी—"तो मैं उनको अपनी जीवन-रात्रि का निष्कलंक चंद्र समझती हूँ।"

लज्जा—(हँसकर) "वाह, खूब, आप तो मुझसे भी एक क़दम आगे हैं।"

इसी समय किसी ने पीछे से कहा—"कौन किससे आगे है भाई।"

दोनो चौंक पड़ीं। पीछे चपला खड़ी थी।

चपला ने हँसते हुए पूछा—"कुमुद ! क्या बातें हो रही थीं ?"

कुमुदिनी—"कुछ नहीं, ऐसी कोई विशेष बात नहीं थी। यह तो कहो, तुम्हारे भाई का विवाह कब है ?"

चपला—"अभी एक महीना बाक़ी है। और कहो, तुम्हारा क्या हाल-चाल है ?"

कुमुदिनी—"सब आपकी कृपा है। अभी तो कल ही आप मिज़ाज पूछकर गई हैं, क्या रात-भर में मिज़ाज दूसरे हो गए ?"

लज्जा—"आजकल तो घड़ी-घड़ी में मिज़ाज बदल जाते हैं, रात-भर की कौन कहे।"

चपला—"हाँ, आपका कहना तो ज़रूर कुछ सच मालूम होता है, क्योंकि हमसे ज़्यादा आपको ज़ाती अनुभव है।"

कुमुदिनी और चपला दोनो ख़ूब हँसीं।

कुमुदिनी—"आजकल चपला, तुम उदास क्यों रहती हो, पहले-वाली स्कूल की चपला नहीं रहीं।"

चपला—"इसके उत्तर में तो टेनीसन की यह लाइन काफ़ी है—
'The old order changeth yielding place to new!'
ज़हरे-इश्क़ की—हर घड़ी, मुनक़लिब ज़माना है—यही दुनिया का कारख़ाना है।"

कुमुदिनी—"आपको ज़हरे-इश्क़ का कब से शौक़ पड़ा?"

लज्जा—"जब से नयन लगे।"

कुमुदिनी—"क्या किसी से लग गई दिल की—क्यों?"

चपला—"नहीं, यह वह हृदय नहीं है। बात यह है कि आजकल मैं एक काव्य पर पुस्तक लिख रही हूँ, सुनने में आया था कि ज़हरे-इश्क़ उर्दू-साहित्य की एक ही चीज़ है, इसलिये उसे पढ़ा था।"

कुमुदिनी—"हूँ। चपला, तुम्हारा लेख कल रात को मैंने पढ़ा था। तुम बड़ा सुंदर लिखती हो। तुम्हें बधाई है!"

चपला—"धन्यवाद! तुम्हारे विचार उस लेख के विषय में क्या हैं?"

कुमुदिनी—"मैं तो समझती हूँ, तुमने बिलकुल ठीक लिखा था। वास्तव में भारतवर्ष की स्त्रियों में बड़ी भीरुता घुसी हुई है। इसको निकालना हम सबका कर्तव्य है।"

चपला—"मेरा तो यही विचार है कि जब तक स्त्रियाँ स्वयं अपनी रक्षा करना नहीं सीखेंगी, तब तक पुरुष उन पर अपना अत्याचार करते ही रहेंगे, और वह कभी बंद नहीं हो सकता। क्यों भावज साहबा, आपकी क्या राय है?"

लज्जा—"शायद आप मुसलमानों के विषय में कह रही हैं।"

चपला—"हाँ, ख़ासकर उसके लिये और यों भी घर की स्त्रियों पर भी तो पुरुष बड़ा अत्याचार करते हैं?"

लज्जा—"मैं दूसरी बात से ज़रा कम सहमत हूँ। पुरुष अत्याचार करते हैं उनके ऊपर, जो उस क़ाबिल होती हैं—यानी वे स्वयं बद-माश होती हैं। भाई, मेरा तो विचार है कि पुरुष चाहे जितना उद्दंड हो, उच्छृंखल हो, स्त्री उसे अपने वश में कर लेती है, लेकिन यह बात बड़ी आसानी से नहीं हो जाती। लोहे के चने चबाने पड़ते हैं। मान, अपमान, सब तहाकर ताक़ पर रख देना पड़ता है। केवल सेवा-रूपी निर्बल अस्त्र से स्वामी के सब वार बचाने पड़ते हैं। थोड़े दिनों में स्वामी आप-से-आप स्त्री के वश हो जाता है। स्त्री को पहले सहनशील बनना पड़ता है। फिर वही स्त्री उस पर शासन कर सकती है, लेकिन उस शासन में अहंकार न होना चाहिए। स्वामी के चलाने की नकेल जब अपने हाथों में आ गई, तब भी वही भाव, वही प्रेम, वही उत्सर्ग करना चाहिए, जो पहले किया था। बस, फिर तब स्वामी स्त्री के ऊपर अत्याचार नहीं कर सकता।"

चपला—"मालूम होता है, आपके हाथों में नकेल है, जिससे आप मुरारी भैया को जिधर चाहें घुमाती हैं।"

कुमुदिनी—"कुछ पूछो न चपला। आप न-मालूम कितना अत्याचार भैया पर करती हैं।"

चपला—"लेकिन आपकी बातों से मालूम होता है कि स्त्री को भी पुरुष पर अत्याचार न करना चाहिए।"

कुमुदिनी—"हाथी के दाँत खाने के और होते हैं, दिखावे के और।"

चपला—"हटाओ इन बातों को। यह कहो, मिस्टर वर्मा आज-कल आते हैं?"

कुमुदिनी—"रोज़ ही आते हैं। बाबू उनकी बड़ी ख़ातिर करते हैं।"

लज्जा—"सब कोई अपने दामाद की ख़ातिर करता है, अगर वह करते हैं, तो कौन ताज्जुब की बात है।"

कुमुदिनी का चेहरा लाल हो गया।

चपला—(हँसकर) "मिस्टर वर्मा डिप्टी साहब के दामाद किस तरह हुए?"

लज्जा—"यह नहीं जानती! इनसे पूछो!"

यह कहकर उसने कुमुदिनी की ओर देखा। लज्जा ने भी देखा। कुमुदिनी का चेहरा बार-बार लाल हुआ जा रहा था।

चपला—"जाओ, तुम तो मज़ाक़ करती हो।"

लज्जा—"अच्छा, यह बताओ चपला, कि स्त्री को तलाक़ देना उचित है?"

चपला—"नहीं, तलाक़ से स्त्री का जीवन दुःखमय हो जाता है।"

लज्जा—"अगर स्त्री अपने स्वामी से असंतुष्ट है, तो क्या वह तलाक़ दे सकती है?"

चपला—"ऐसा विवाह ही क्यों किया जाय, जिससे स्त्री या स्वामी असंतुष्ट हो।"

लज्जा—"लेकिन अगर ऐसा हो?"

चपला—"कैसे हो?"

लज्जा—"हमेशा होता है। ख़ैर, हम लोगों की बात जाने दीजिए, पश्चिम में तो स्त्रियाँ अपनी इच्छा से चुनकर विवाह करती हैं, लेकिन उनमें भी पति-पत्नी में खटक जाती है।"

चपला—"पश्चिम की समाज और हमारी समाज में बड़ा अंतर है। यहाँ विवाह एक वासना की तृप्ति है, एक क्षणिक आवेश है। और, वहाँ बहुत-से विवाह स्वार्थ-सिद्धि के लिये होते हैं, इस-

लिये वहाँ तलाक़ बहुत है। हमें तो अपने समाज को अच्छा और उपयोगी बनाना है, उसकी घुसी-हुई बुराइयों को दूर करना है, उसको पश्चिमीय समाज नहीं बनाना है। तलाक़ की प्रथा ख़राब है, पश्चिम के विद्वान् भी यह अनुभव करने लगे हैं। फिर हम इस प्रथा को क्यों अपनावें ?"

लज्जा—"लेकिन भारत में तो सैकड़ों विवाह ऐसे होते हैं, जो पति और पत्नी के जीवन में हमेशा कलह और अशांति का जन्म देते हैं, उनके लिये क्या प्रतिकार है ?"

चपला—"प्रतिकार के लिये हमको यह ज़रूरी है कि हम उसकी जड़ नाश करें, यह नहीं कि बीच में दवा देकर उस रोग को शांत करने का उपाय करें। इस अशांति की जड़ है अनमेल-विवाह। इसको रोकना चाहिए। स्त्रियों को शिक्षा दी जाय, और उनको भी यह अधिकार हो कि वे अपनी सम्मति या असम्मति निस्संकोच प्रकट कर सकें। हरएक लड़के-लड़की का जैसा भी चरित्र रहा हो, वह वहाँ लिखा रहना चाहिए, जहाँ उसने शिक्षा पाई है। लड़का और लड़की दोनो एक दूसरे का चरित्र-इतिहास देख जायँ, अगर दोनो की सम्मति हो, तो विवाह किया जाय, नहीं तो नहीं।"

लज्जा—"लेकिन यह बात तो बड़ी कठिन है।"

चपला—"हाँ, कठिन तो है, लेकिन इसका फल बड़ा अच्छा होगा। पहले हमारे यहाँ प्राचीन समय में यही प्राथा प्रचलित थी। लेकिन आजकल उसकी जगह जन्म-कुंडली का मिलान होता है। पहले जिस आश्रम में लड़कियाँ या लड़के शिक्षा पाते थे, वहाँ के गुरु अपना मत उनके बारे में देते थे, और जब एक का मिज़ाज दूसरे से मिल जाता था, तब उसके साथ उसका विवाह होता था। जब बाद में स्त्री-शिक्षा बंद हो गई, तो उसकी सुविधा के लिये जन्म-कुंडली काम में लाई जाने लगी। जन्म-कुंडली के ग्रह, चरित्र

और स्वभाव का बहुत कुछ परिचय देते हैं, लेकिन एक तो ज्योतिषी अच्छे नहीं हैं, दूसरे, जन्म-कुंडली भी ठीक नहीं बनती। इसलिये इतना उत्पात होता है।"

लज्जा—"तो आप भी अपने वैदिक काल की प्रथा की क़ायल हैं।"

चपला—"बेशक! स्वामी-स्त्री का संबंध प्रेम और शांति का संबंध है, इसलिये पवित्र है। इतना पवित्र कि शायद उसके बराबर कोई भी पवित्र वस्तु संसार में नहीं है। इसको तोड़ना, तलाक़ द्वारा, बड़ा जघन्य कर्म है! घोर पाप है। मेरे विचार से तलाक़ की कुप्रथा हमारे समाज में जहाँ तक न घुसे, वहीं तक अच्छा है।"

कुमुदिनी—"चपला, तुम तो सुधारक बन गई हो, लेकिन यह याद रहे कि तुमको भी विवाह करना है।"

चपला—"विवाह करना है! शायद मैं विवाह नहीं करूँगी कुमुद! मेरे भाग्य में विवाह का सुख नहीं बदा है।"

कहते-कहते चपला का गला भारी हो गया।

कुमुदिनी ने बड़े ध्यान से चपला की ओर देखा। फिर पूछा—"क्यों, क्या बात है?"

चपला—"बात कुछ नहीं है, ऐसा मालूम होता है कि मैं विवाह नहीं कर पाऊँगी।"

कुमुदिनी—(हँसकर) "शायद तुम्हारी ये कोरी बातें-ही-बातें हैं। विवाह कर लोगी, और किसी को कानोंकान ख़बर भी नहीं होगी।"

चपला—"नहीं कुमुद, मैं तुमसे फिर कहती हूँ कि विवाह मेरे भाग्य में नहीं है।"

लज्जा—"सभी लोग ऐसा कहा करते हैं पहलेपहल।"

चपला—"ख़ैर, देख लेना। कुमुद, कल एक बड़ी विचित्र बात हुई।"

कुमुदिनी—"क्या?"

चपला—"तुम मुझे बनाओगी।"

कुमुदिनी—"अरे, कहो भी तो।"

चपला ने साड़ी के भीतर से एक केस निकालकर कहा—"देखो, किसी ने यह अँगूठी मुझे भेजी है। भेजनेवाले का नाम नहीं लिखा।"

कुमुदिनी ने अँगूठी ले ली। उसे देखकर कहा—"अँगूठी में पन्ना सच्चा है।"

चपला—"हाँ, सच्चा ही मालूम होता है, और बड़ा भी काफ़ी है।"

लज्जा—"अँगूठी क़ीमती है? आख़िर किसने भेजी, किस पर शक है?"

चपला—"मैंने बहुत सोचा, लेकिन कुछ समझ में नहीं आता।"

कुमुदिनी—"और कुछ लिखा था?"

चपला—"कुछ भी नहीं, पता टाइप में छपा था, और मोहर यहीं की थी।"

कुमुदिनी—"तब तो शहर ही का कोई आदमी होगा।"

लज्जा—"आप कहती हैं, मैं विवाह नहीं करूँगी, और यह देखिए अँगूठियाँ उपहार में बग़ैर नाम जनाए आती हैं, क्यों चपला, हज़ारों की जान लोगी।"

चपला हँसने लगी।

(८)

सागर की ऊर्मि-माल निर्मल के मन को आकृष्ट नहीं कर सकी! लहरों का भीम-नाद निर्मल की तन्मयता भंग न कर सका। उनका

चित्त उदास ही बना रहा। पुरी का संध्या-दृश्य मशहूर है। वह आज इसी दृश्य को देखने आए थे, लेकिन यहाँ आकर वह और ही विचार-सागर में डूब गए। बालू में कई अँगरेज़ बालक और बालिकाएँ खेल रही थीं। उनकी नर्स, जो एक अँगरेज़ महिला थी, खड़ी हुई निर्निमेष नयनों से अस्ताचल पर स्थित सूर्य की ओर देख रही थी। उसका ध्यान उन खेलते हुए बालक और बालिकाओं की ओर न था। निर्मल कभी-कभी ललचाई हुई आँखों से उन बालकों की ओर देखते और रह-रहकर एक ठंडी निःश्वास लेते।

बालक खेल रहे थे। दो बालक थे और एक बालिका। बालिका बड़ी शांत थी और दोनो बालक बड़े चपल। वे दोनो उसको नहीं खिला रहे थे। खेलते-खेलते एक बालक कहने लगा—"लिज़ी, जाओ धाय के पास, हम नहीं खिलावेंगे। तुम हमें लेमनजूस नहीं दे रही थीं, और तुमने 'मामा' से मेरी शिकायत भी की थी।"

लिज़ी ने कहा—"बाबा! तुम न खिलाओगे, तो मैं फिर मामा से कह दूँगी।"

बाबा ने दौड़कर उसके कान मल दिए और कहा—"कहना मामा से, मैं तेरे प्राण ले लूँगा।" उसने मारने के लिये हाथ उठाया था कि निर्मल ने हाथ पकड़ लिया और कहा—"बस, अब अगर पीटा, तो मार खाओगे।"

बाबा निर्मल की ओर घूरने लगा। धाय का ध्यान भी इधर आकर्षित हुआ। उसने आकर कहा—"बाबा, तुम फिर लिज़ी को मार रहे हो, अगर अब की मारोगे, तो मैं भी पीटूँगी।"

लिज़ी रोती हुई निर्मल से चिपटी हुई थी।

धाय ने कहा—"धन्यवाद बाबू! आपने लिज़ी की रक्षा की, इसलिये धन्यवाद! यह लिज़ी को बहुत मारता है, बड़ा बदमाश है।"

धाय चली गई, लिज़ी और निर्मल में बातें होने लगीं—

लिज़ी बोली—"तुम सभ्य आदमी हो।"

निर्मल ने पूछा—"क्यों?"

लिज़ी—"क्योंकि तुमने बाघ के हाथ से मेरी रक्षा की है। मामा कहती है कि जेंटिलमैन वह है, जो वीर हो, सच्चा हो और लोगों की रक्षा करे। तुमने मेरी रक्षा की, इसलिये तुम जेंटिलमैन हो।"

लिज़ी की इस 'लाजिक' से निर्मल को हँसी आ गई।"

निर्मल—"तुम्हारा घर कहाँ है?"

लिज़ी ने हाथ उठाकर कहा—"यहाँ से थोड़ी दूर है। आप चलिएगा। मामा आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्न होंगी। पापा आजकल बाहर गए हुए हैं।"

निर्मल—"कहाँ?"

लिज़ी—"बांबे।"

निर्मल—"तुम पढ़ती हो?"

लिज़ी—"वर्णमाला पढ़ा है। सौ तक गिनती मालूम है। आप पढ़ते हैं, आपने वर्णमाला ख़त्म कर दी?"

निर्मल ने हँसकर कहा—"अभी नहीं, मैं अभी पढ़ रहा हूँ। तुम पढ़ाओगी?"

लिज़ी—(ताली बजाकर) "हाँ, तुम्हें मालूम है, ए माने क्या हैं?"

निर्मल—"नहीं। अच्छा, तुम बताओ।"

लिज़ी—(हँसकर) "अरे, तुम्हें यह भी नहीं मालूम, 'ए' माने क्या हैं? 'ए' माने एक्स (कुल्हाड़ी)।"

निर्मल—"अच्छा, बी माने क्या हैं?"

लिज़ी—"बी माने बक्स।"

निर्मल—"तुम्हें तो बहुत याद है।"

लिज़ी ने कहा—"अभी कहाँ बहुत मालूम है, अगले साल से मैं स्कूल जाऊँगी।"

निर्मल—"बाबा क्या करता है?"

लिज़ी—"वह बदमाश है, कुछ नहीं पढ़ता। देखो, बाबा समुद्र के किनारे जा रहा है। मामा ने मना किया है कि पानी के पास मत जाना, लेकिन बाबा किसी की बात नहीं मानता। बड़ा दुष्ट है! पापा ख़ूब मारते हैं।"

निर्मल—"तुमको नहीं मारते?"

लिज़ी—"नहीं, मैं कोई ख़राब काम नहीं करती। बाबा, तुम नहीं मानते, इधर आओ, नहीं तो मैं मामा से कह दूँगी।"

बाबा ने मुँह चिढ़ाकर कहा—"जा कह दे। ले।"

यह कहकर बाबा शेख़ी से पानी के भीतर चला गया। बाबा पीछे बराबर चला जा रहा था। पानी उसकी कमर तक पहुँच गया था, लेकिन वह रुकता न था। बाबा चिल्लाया और आँखों से ओझल हो गया।

लिज़ी ने निर्मल से कहा—"बाबा को बचाओ, बाबा डूब रहा है।"

नर्स का भी ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। वह भी दौड़ी।

निर्मल दौड़कर पानी में कूद पड़े। थोड़ी देर बाद बाबा उतराया। निर्मल तैरकर उसकी ओर बढ़े। समुद्र शांत था, लेकिन उसकी छोटी-से-छोटी लहर बाबा के लिये काफ़ी थी। वह डूबता-उतराता था। निर्मल उसके पैर पकड़कर किनारे की ओर घसीटने लगे। बाबा उनके हाथ से चिपट गया। किसी तरह निर्मल उसे किनारे पर ले आए।

किनारे पर धाय की बुरी दशा थी। वह स्थिर दृष्टि से निर्मल की ओर देख रही थी। बाबा का छोटा भाई जॉन और लिज़ी दोनो खड़े हुए थे।

किनारे पर पहुँचकर निर्मल ने बाबा को बालू पर लिटा दिया। बाबा चुपचाप पड़ा था। साँस बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। निर्मल ने उसके पेट से पानी निकाला।

नर्स ने कहा—"वेल बाबू, मैं आपको किस प्रकार धन्यवाद दूँ। आपने आज दो जानें बचाईं। एक तो मेरी, और दूसरे बाबा की।"

निर्मल ने हँसकर कहा—"आप कष्ट न कीजिए, मैंने मनुष्य-धर्म पालन किया है।"

नर्स ने कृतज्ञता-पूर्वक कहा—"मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ हूँ। मैं नहीं जानती थी कि हिंदोस्तानी आदमी इतने सहृदय भी होते हैं। मेरी तो धारणा थी कि वे बड़े धोकेबाज़ होते हैं।"

निर्मल—"आपने कैसे जाना कि वे धोकेबाज़ होते हैं?"

नर्स—"मेरा निज का अनुभव है।"

निर्मल—"अच्छा, आप इन्हें अब ले जायँ। डॉक्टर का इलाज जल्द होना चाहिए।"

नर्स—"इसको अब ले किस तरह चलना चाहिए, ठहरिए, मैं एक आदमी खोज आऊँ।"

यह कहकर नर्स चली गई।

थोड़ी देर बाद आकर उसने कहा—"आस-पास तो कोई आदमी नहीं दिखाई पड़ता। मैं अब क्या करूँ?"

निर्मल ने कहा—"आप उद्विग्न न हों, मैं लिए चलता हूँ।"

निर्मल ने बेहोश बाबा को गोद में ले लिया।

नर्स—"आप कष्ट करेंगे, बँगला यहाँ से नज़दीक है।"

बहुत जल्द निर्मल बाबा को लिए बँगले पहुँच गए। लिज़ी पहले ही पहुँच गई थी। लिज़ी और उसकी मा दोनो दरवाज़े पर खड़ी थीं।

निर्मल ने ले जाकर बाबा को एक कोच पर लिटा दिया।

लिज़ी की मा मिसेज़ उड ने कहा—"बाबू, मैं आपको बड़ा धन्यवाद देती हूँ।"

निर्मल ने हँसकर कहा—"कुछ आवश्यकता नहीं, यह तो हर-एक मनुष्य का धर्म है। आप डॉक्टर बुलवाइए।"

मिसेज़ उड—"व्वॉय को भेजा है। अभी आता होगा। आपका शुभ नाम?"

निर्मल—"मेरा नाम निर्मलचंद्र सिनहा।"

मिसेज़ उड—"आप कहाँ रहते हैं—पुरी में?"

निर्मल—"नहीं, मैं इलाहाबाद में रहता हूँ। मा को तीर्थ कराने आया हूँ।"

मिसेज़ उड—"आप वहाँ क्या करते हैं?"

निर्मल—"मैं वहाँ इलाहाबाद-युनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हूँ।"

मिसेज़ उड—"किस विषय के?"

निर्मल—"फ़िलासफ़ी।"

मिसेज़ उड—"ओहो, आप ही ने वह पुस्तक लिखी है, जिसकी चर्चा हरएक पत्र में हो रही है—क्या आप ही मिस्टर एन्० सी० सिनहा हैं?"

निर्मल—"हाँ, मैंने एक फ़िलासफ़ी पर किताब तो ज़रूर लिखी है।"

मिसेज़ उड—"आपको डॉक्टर की भी उपाधि मिली है?"

निर्मल—"हाँ।"

मिसेज़ उड—"घटना-चक्र इसे कहते हैं, मेरी बड़ी इच्छा थी कि आपसे मिलूँ। मुझे आपके विचार बहुत पसंद आए। अभी आप जाते कहाँ हैं, बैठिए।"

निर्मल ने कहा—"कल मैं हाज़िर होऊँगा। इस समय आप वाबा की देख-भाल कीजिए।"

मिसेज़ उड—"उसे तो मैं बिलकुल भूल ही गई थी।"

"अच्छा, कल ज़रूर आइएगा।" यह कहकर मिसेज़ उड ने निर्मल से हाथ मिलाया। निर्मल चुपचाप चले आए।

(६)

निर्मल और 'उड'-परिवार में घनिष्ठता बढ़ती ही गई। मिस्टर उड से भी उनका परिचय हुआ। मिस्टर उड पुरी में एक अँगरेज़ी दूकान के मैनेजर थे। वेतन लगभग साढ़े सात सौ के मिलता था। परिवार भी बहुत बड़ा न था। मिस्टर उड निर्मल से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें प्रसन्नता और भी हुई, जब उन्होंने सुना कि निर्मल ही उस पुस्तक के रचयिता हैं, जिसकी प्रशंसा में अँगरेज़ी और हिंदोस्तानी दोनो पत्र एक स्वर से अपने पत्रों के कालम-पर-कालम रँग रहे हैं। प्रायः रोज़ ही शाम को निर्मल उनके यहाँ जाया करते थे।

वावा बिलकुल स्वस्थ हो गया था। उसके पिता ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि अगले साल वह ज़रूर वावा को वोर्डिंग हाउस में भेज देंगे। लिज़ी और निर्मल में बड़ी मित्रता थी। नर्स मिस स्मिथ से भी ख़ूब आलाप था।

एक दिन संध्या-समय निर्मल समुद्र के किनारे उसी स्थान पर बैठे थे, जहाँ की घटना ने उन्हें 'उड'-परिवार से परिचित कराया था। वही समय था, और वही शिला-खंड था, लेकिन आज वह अकेले थे। वहाँ और कोई नहीं था।

निर्मल ध्यान में मग्न बैठे थे कि मिस स्मिथ लिज़ी को साथ लिए आ पहुँची। लिज़ी दौड़कर उनसे लिपट गई। निर्मल ने बड़े प्रेम से उसका मुख चूम लिया।

लिज़ी ने कहा—"तुम आए क्यों नहीं मेरे यहाँ, पापा और मामा बैठी हुई तुम्हारा इंतज़ार कर रही हैं। मैं भी तुम्हारी राह देख रही थी, जब तुम नहीं आए, तब मैं मिस स्मिथ के साथ यहाँ चली आई, क्योंकि मैं जानती थी कि तुम यहाँ मिलोगे।"

निर्मल—"मैं आ ही रहा था। अच्छा, लिज़ी, मैं कल जाने-वाला हूँ।"

लिज़ी मानो आकाश से गिर पड़ी। उसने विस्फारित नयनों से निर्मल को देखते हुए कहा—"तुम कल जाओगे, क्यों जाओगे, क्या तुम्हारे पापा ने तुमको मारा है?"

निर्मल के उदास चेहरे पर हँसी आ ही गई।

लिज़ी—"तुम बोलते क्यों नहीं? मैं तुमको नहीं जाने दूँगी।"

निर्मल—"नहीं लिज़ी, मेरे पापा ने तो नहीं मारा, लेकिन जाना पड़ेगा।"

लिज़ी—"कैसे जाओगे, मैं मामा से कहकर तुम्हें पिटवाऊँगी। जो मैं कहती हूँ, वही मामा करती हैं, क्योंकि मैं अच्छी लड़की हूँ।"

निर्मल—"लिज़ी, तुमको मेरी याद रहेगी?"

लिज़ी—"हाँ, मैं तुमको हमेशा याद रक्खूँगी, जब मैं पढ़ने के लिये बांबे जाऊँगी, तो तुम्हारे लिये केले लाया करूँगी, लेकिन तुम बदमाश हो।"

निर्मल—(हँसकर) "क्यों, मैं बदमाश क्यों हूँ?"

लिज़ी—"इसलिये कि तुम जा रहे हो।"

निर्मल—"लेकिन तब तक मैं आ जाऊँगा। तुम मेरे लिये केले रखना, मैं आकर खा जाया करूँगा।"

लिज़ी ने नर्स की तरफ़ देखकर कहा—"मिस स्मिथ, देखो, मिस्टर निर्मल कल जा रहे हैं।"

मिस स्मिथ ने कहा—"क्यों, कल क्या आप जा रहे हैं?"

निर्मल—"हाँ, मेरा इरादा ऐसा ही है। मा अब और जगह जाना चाहती हैं।"

मिस स्मिथ—"यह तो आपने बड़े दुख की बात कही। आप हम लोगों में इतने मिल गए थे, मानो बरसों से आप यहाँ रह रहे हैं। आपकी जुदाई हम सबों को कष्टकर होगी।"

निर्मल—"हाँ, लेकिन आदमी आते हैं और चले जाते हैं। दुनिया में यही होता आया है और हमेशा रहेगा।"

मिस स्मिथ—"हाँ, लेकिन थोड़े दिन और रह जाइए।"

निर्मल—"नहीं, अब समय नहीं रहा।"

मिस स्मिथ—"क्या आप किसी मिस्टर देवदत्त वर्मा को जानते हैं?"

निर्मल चौंक पड़े। उन्हें इलाहाबाद के मिस्टर वर्मा का ख़याल हो आया।

मिस स्मिथ—"वह इँगलैंड से अभी हाल ही में लौटे हैं, आई० सी० एस्० पास हैं।"

निर्मल—"हाँ, एक मिस्टर देवदत्त वर्मा इलाहाबाद में ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं।"

मिस स्मिथ—"अच्छा! उनका क़द, चेहरा-मोहरा, गढ़न, नख-शिख कैसा है?"

निर्मल—"रंग गोरा, चेहरा लंबा, आँखों पर चश्मा लगाते हैं, कोई साढ़े पाँच फ़ीट लंबे हैं। आवाज़ मीठी और सुरीली है।"

मिस स्मिथ ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"हाँ, ठीक है, क्या उनके मस्तक पर बाईं तरफ़ एक लंबा दाग़ है?"

निर्मल ने कुछ देर सोचकर कहा—"हाँ, है। बाईं तरफ़ एक दाग़ है, मालूम होता है, किसी चाक़ू या तलवार का निशान है।"

मिस स्मिथ—"ऑपरेशन हुआ था। इँगलैंड में उनके वहाँ पर

एक फोड़ा हुआ था, तब उनका ऑपरेशन हुआ था। अच्छा, आपने कभी उनके ओठों में कोई विचित्र बात देखी है?"

निर्मल—"हाँ, वह विचित्र तरह से कभी-कभी अपने ओठों को मरोड़ते हैं।"

मिस स्मिथ—"ठीक है, वही मिस्टर देवदत्त हैं, जिनसे मुझे काम है। मिस्टर सिनहा, आज आपने वह उपकार मेरे साथ किया है, जिससे मैं कभी उऋण नहीं हो सकती। धन्यवाद देना आपका उपहास करना है। मुझे वह शख़्स मिल गया, जिसके लिये मैं ३००० मील चलकर आई हूँ।"

निर्मल—"आप उनसे क्यों मिलना चाहती हैं?"

मिस स्मिथ—"अभी मैं नहीं कहूँगी, आपको स्वयं मालूम हो जायगा।"

निर्मल—"अच्छा, अगर कोई जल्दी का काम हो, तो मैं इलाहाबाद जाकर वह कर सकता हूँ।"

मिस स्मिथ—"नहीं मिस्टर सिनहा, धन्यवाद! आपसे वह काम नहीं हो सकता। मुझे ही इलाहाबाद जाना होगा। आपसे एक प्रार्थना है।"

निर्मल—"कहिए, मैं आपकी हरएक बात मानूँगा।"

मिस स्मिथ—"आप मिस्टर वर्मा से कभी ज़िक्र न कीजिएगा कि कोई स्त्री उनके बारे में पूछ रही थी, आप मेरा परिचय न दीजिएगा।"

निर्मल—"अच्छा, मैं किसी से न कहूँगा।"

मिस स्मिथ—"मिस्टर सिनहा, आपके कई एहसान मेरे ऊपर हैं। मैं बड़ी कृतज्ञ हूँ। आप बड़े सज्जन हैं।"

निर्मल—"मिस स्मिथ, जिस दिन पहलेपहल आपसे परिचय हुआ था, उस दिन आपने कहा था कि हिंदोस्तानी बड़े स्वार्थी होते हैं, धूर्त होते हैं। आपने यह धारणा कैसे कर ली थी?"

मिस स्मिथ के मुख का रंग बदल गया। शांत चेहरे पर क्रोध का ज्वार-भाटा आ गया। उसने अपने को सँभालकर कहा—"मिस्टर सिनहा, अभी आप यह बात न पूछें, मैं कभी आपसे सविस्तर यह बात कहूँगी। भारत में आप ही मेरे एक बंधु हैं। मैं आपका भाई के समान विश्वास करती हूँ।"

निर्मल—"धन्यवाद! मिस स्मिथ, जब आपको किसी बात की आवश्यकता आ पड़े, आप मुझे लिखिएगा। जिस तरह भाई भगिनी की सहायता करता है, उसी तरह मैं आपकी सहायता करूँगा।"

मिस स्मिथ ने गद्गद कंठ से कहा—"सिनहा, मैं आपको फिर धन्यवाद देती हूँ!"

निर्मल ने अपनी जेब से एक कार्ड निकालकर दिया और कहा—"मिस स्मिथ, इसमें मेरा पता लिखा है। समय पड़ने पर इसी पते से मुझे लिखिएगा, मैं आपकी सहायता करूँगा। जब कभी आप इलाहाबाद आवें, मेरे यहाँ ज़रूर आइएगा। मैं इलाहाबाद शहर में नहीं रहता, शहर से थोड़ी दूर एक गाँव है 'रामनगर', वहाँ रहता हूँ।"

मिस स्मिथ ने पेंसिल से निर्मल का पता उनके कार्ड के पीछे लिख लिया।

पता लिखकर मिस स्मिथ ने कहा—"सिनहा, तो कल तुम जा रहे हो?"

निर्मल—"हाँ, मैं कल जाऊँगा। यहाँ से सीधे बनारस जाऊँगा, और वहाँ से हरद्वार जाने का विचार है। मैं बीच-बीच में आपको लिखता रहूँगा।"

मिस स्मिथ—"अच्छा, मैं इलाहाबाद ज़रूर आऊँगी, मैं शायद यहाँ अधिक दिन न रहूँ, क्योंकि अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं

रहेगी। लड़के सब बोर्डिंग में रहने चले जायँगे। मैं जहाँ जाऊँगी, वहाँ का पता आपको लिखूँगी।"

मिस स्मिथ निर्मल से बातें कर रही थी, और लिज़ी खड़ी हुई समुद्र की ओर देख रही थी। उसने दौड़कर मिस स्मिथ से कहा—"मिस स्मिथ, अब आप घर चलें। मिस्टर निर्मल, आप भी चलें। क्या आप पापा से विदा नहीं लीजिएगा?"

निर्मल—"हाँ, मैं भी चलता हूँ लिज़ी।"

यह कहकर उन्होंने लिज़ी को सस्नेह गोद में उठा लिया।

घर पहुँचकर मिसेज़ उड ने कहा—"लिज़ी, तू इतनी बड़ी हो गई और अब भी गोद में चढ़ने की हविस बाक़ी है?"

निर्मल ने हँसते हुए कहा—"मैंने ही अपनी इच्छा से उसे गोद में ले लिया था।"

मिसेज़ उड—"तो भी क्या हुआ।"

लिज़ी—"मामा, मिस्टर निर्मल कल घर जा रहे हैं।"

मिसेज़ उड—(आश्चर्य से) "क्यों मिस्टर सिनहा, क्या यह ठीक है?"

निर्मल—"हाँ, कल मैं घर जा रहा हूँ।"

मिसेज़ उड—"इतनी जल्दी। अभी और कुछ दिन रहिए।"

निर्मल—"नहीं, क्योंकि मा जल्दी कर रही हैं।"

मिसेज़ उड—"मिस्टर उड से तो मिल लीजिए।"

निर्मल—"हाँ, वह कहाँ हैं?"

मिसेज़ उड—"अभी तक तो वह आपका इंतज़ार कर रहे थे, लेकिन अब दूकान चले गए हैं।"

निर्मल—"अच्छा, जाने के पहले कल मैं फिर आऊँगा। बाबा कहाँ है?"

मिसेज़ उड—"बाबा और जॉन दोनो सिनेमा गए हैं।"

निर्मल—"मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ कि आपने एक विदेशी के साथ ऐसा व्यवहार किया। मैं आपको सदैव याद रक्खूँगा।"

मिसेज़ उड—"यह हम लोगों का भाग्य था, जो आपसे अनायास परिचय हो गया, नहीं तो शायद मिस्टर उड आपसे मिलने के लिये इलाहाबाद जाते।"

निर्मल ने हँसकर कहा—"ख़ैर, ईश्वर ने ही आप सबों से मेरा परिचय करवा दिया!"

मिसेज़ उड—"आपने यों भी मेरे साथ बड़ा उपकार किया है। मैं आपके उपकार के लिये सदैव कृतज्ञ रहूँगी। आपने बाबा की रक्षा की।"

निर्मल—"मैंने क्यों, ईश्वर ने रक्षा की।"

मिसेज़ उड—"लिज़ी नें क्या आपको आज्ञा दे दी है?"

निर्मल—"लिज़ी ने अभी तो आज्ञा नहीं दी, लेकिन शीघ्र ही मैं ले लूँगा।"

मिसेज़ उड—"आप इलाहाबाद जाकर हम लोगों को भूल न जाइएगा। यदि कभी आना हुआ, तो आपसे ज़रूर मिलूँगी।"

निर्मल—"ज़रूर! मैं सदैव आपकी राह देखा करूँगा।"

मिसेज़ उड—"मिसेज़ सिनहा से भी मिलूँगी, वह यहाँ नहीं आईं।"

निर्मल—"नहीं, वह आजकल अपने मायके में हैं।"

मिसेज़ उड—"उनके पिता क्या करते हैं?"

निर्मल—"अभी तक इलाहाबाद में ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट थे, लेकिन इस साल उनको 'सर' का टाइटिल मिला है, और इंपीरियल सर्विस में चले गए हैं।"

मिसेज़ उड—"उनका नाम क्या है?"

निर्मल—"सर माधवचंद्र।"

मिसेज़ उड—"मैंने गज़ट में उनका नाम पढ़ा था।"

निर्मल—"अच्छा, तो मैं अब चलूँगा।"

मिसेज़ उड—"मिस्टर सिनहा, आप जा तो रहे हैं, लेकिन हम सबको दुखी करके। आपसे इतना प्रेम हो गया था कि मानो आप घर के आदमी हैं। आपकी अनुपस्थिति सबको कसकेगी। याद रखिएगा, भूल न जाइएगा।"

निर्मल ने चलते-चलते कहा—"नहीं मिसेज़ उड, मैं आपको कभी भूल नहीं सकता। अच्छा, गुडनाइट।"

(१०)

निर्मल उदास चित्त से अपने घर लौटे। उड-परिवार से उनकी काफ़ी घनिष्ठता हो गई। लिज़ी से उनका बहुत आलाप था। वह उन्हें हिल गई थी। उसे छोड़ने में उन्हें कष्ट हो रहा था, लेकिन वह उसे छोड़ रहे थे, क्योंकि एक दिन तो छोड़ना ही होगा। लिज़ी उनकी नहीं हो सकती!

निर्मल पुरी में एक पंडे के यहाँ ठहरे हुए थे। उसके यहाँ उनको सब आराम था। शांता ने कई बार कहा था कि यहाँ से चलो, लेकिन निर्मल टालते ही रहे। वह आज लौटकर चारपाई पर लेट गए। श्रांति और दुःख से उनका बुरा हाल था। शांता दूसरे कमरे में बैठी हुई भोजन बना रही थी। निर्मल की आहट पाकर वह उन्हें देखने के लिये उनके कमरे में आई। निर्मल को उदास देखकर कहा—"नन्हे, कैसी तबियत है?"

निर्मल लेटे ही रहे। उन्होंने मंद स्वर में कहा—"तबियत अच्छी है।"

शांता—"यहाँ का जल-वायु अच्छा नहीं है, तुम्हारा भी मन यहाँ नहीं लगता, तब क्यों नहीं चलते?"

निर्मल ने उसी भाँति कहा—"हाँ मा, कल यहाँ से चलेंगे।"

शांता—"अब यहाँ से कहाँ चलोगे?"

निर्मल—"क्यों, काशी न देखोगी?"

शांता—"फिर काशी के बाद?"

निर्मल—"हरद्वार में गंगा-स्नान करेंगे और वहीं कुछ दिन रहेंगे।"

शांता—"इलाहाबाद कब चलोगे?"

निर्मल—"अभी इलाहाबाद की कौन जल्दी है, चलेंगे।"

शांता—"देखो, मेरा मन तीरथ-बीरथ में नहीं लगता, और न मेरी श्रद्धा ही है। मेरे लिये तुम गृह-त्यागी न बनो। यहाँ से सीधे इलाहाबाद चलो।"

निर्मल—"अभी इलाहाबाद में गरमी बहुत होगी। हरद्वार में दो-तीन महीने रहेंगे। हरद्वार का जल-वायु बड़ा अच्छा है और फिर वहाँ गंगा-स्नान है।"

शांता—"मुझे मेरी त्रिवेणी ही अच्छी है। अब यहाँ से इलाहाबाद चलो।"

निर्मल चुप रहे।

शांता—"कुछ सुनते हो। नन्हे, अब तुम मेरी बात नहीं सुनते।"

निर्मल—"मा, तुम तो वह बात कहती हो, जो मुझसे किए हो नहीं सकता। मैं निकला हूँ तीर्थ करने और तुम मुझे घर में बंद करना चाहती हो। भला तुम्हीं बताओ, इलाहाबाद में क्या रक्खा है। सिवा गरमी, लू और धूल के वहाँ है ही क्या? ज़रा बाहर घूमो, घर तो चलना ही है।"

शांता ने जाते हुए कहा—"अच्छा, जो तुम्हारे मन में आवे, करो।"

शांता रुष्ट होकर चली गई।

निर्मल ने मा के चले जाने के बाद कहा—"पुरी छोड़ने में मुझे दुख होता है। लिज़ी के छोड़ने को मन नहीं होता। लिज़ी कितनी सुंदर और भोलीभाली बालिका है! कैसी मधुर बातें हैं। कितना सुंदर उसका मुख है। कितना भावमय उसका

मुख-मंडल है। लिज़ी सचमुच एक सुंदरी बालिका है। जब मैं जाता हूँ, वह दौड़कर लिपट जाती है। आह! उस समय कितना आनंद मिलता है, कैसी शांति मिलती है, कुछ कहा नहीं जाता। संतान-प्रेम शायद ऐसा ही होता है या शायद इससे भी बढ़कर। मेरी भी ऐसी ही संतान होती, लेकिन ईश्वर ने वह सुख मेरे भाग्य में नहीं लिखा। जो बात नहीं है, न कभी हो सकती है, उसका सोचना कैसा? न संतान मेरे है, और न होना बदा है, फिर क्यों मैं उसका सोच करूँ? मुझे तो अकेले इस संसार में जीवन व्यतीत करना है। यही ईश्वर की इच्छा है—यही हो।"

शांता ने फिर आकर कहा—"चलो भोजन करने।"

निर्मल—"मा, आज मुझे भूख नहीं है। तुम खा आओ जाकर।"

शांता ने सस्नेह कहा—"चलो नन्हे, खा आओ। जितनी भी भूख हो, खा आओ चलकर।"

निर्मल बग़ैर कुछ कहे खाने चले गए।

शांता ने थाली परोसकर हरखू को बुलाकर कहा—"हरखू, पानी दे।"

हरखू पानी रख गया। निर्मल चुपचाप भोजन करने लगे।

शांता ने निस्तब्धता भंग करके कहा—"नन्हे, तुम बाबा के दर्शनों को एक दिन भी नहीं गए, और तीर्थ करने निकले ही हो।"

निर्मल—"मा, मैं तो रोज़ शाम को उनकी आरती देखकर घर आता था।"

शांता ने एक मलिन हँसी से कहा—"मैं देखती हूँ, तुम झूठ बोलना बहुत सीख गए हो।"

निर्मल—"नहीं, मैं झूठ नहीं बोलता। शाम को जब मैं घूमकर लौटता हूँ, तो रोज़ बाबा, परबाबा, नगड़बाबा के दर्शन करता, उनका प्रसाद-आशीर्वाद लिए आता हूँ। आज बाबा ने कहा था कि

बच्चा, अब तुम पुरी को छोड़ दो, लेकिन इलाहाबाद कभी न जाना, नहीं तो मैं तुम्हें वह शाप दूँगा, जिससे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।"

शांता ने भय-विह्वल कंठ से कहा—"चुप-चुप, तीर्थ-स्थान में कोई ऐसी बात नहीं कहता। अरे भाई, तुम इलाहाबाद न चलना, न चलना, न चलना। लो बस। जहाँ जी आवे, चलो।"

निर्मल—"अब तुमने एक बात कही है मा। देखो, बाबा भी प्रसन्न हो गए। वह देखो, आशीर्वाद दे रहे हैं। मा, वर माँगो।"

शांता—"किससे ?"

निर्मल—"मुझसे ! मैं ही बाबा बनकर मंदिर में वास करता हूँ, निर्मल बनकर मा के सामने भोजन करता हूँ, भक्त बनकर तीर्थ-भ्रमण करता हूँ, और निर्दय बनकर मा को सताता हूँ। हे मा, मेरा प्रकाश सर्वत्र है। घर में, बाहर, सब जगह मेरा प्रकाश है, और जो लोग संसार की सब भावनाएँ छोड़कर मेरे बताए हुए रास्ते पर चलते हैं, वे बहुत शीघ्र सुखी होते हैं।"

शांता—"मेरे तीर्थ तुम्हीं हो। मैं तुम्हारे पीछे-पीछे मारी-मारी फिरूँगी, जहाँ भी तुम जाओगे, मैं तुम्हें स्नेह के आँचल से सदैव ढके रहूँगी। मैं तुम्हारे ही प्रकाश से देखती हूँ।"

निर्मल—"तो बस, हे मा, तुम्हें शीघ्र ही सुख प्राप्त होगा।"

शांता ने हँसकर कहा—"बस, अब आशीर्वाद न देना।"

निर्मल—"तो बस, हे मा, तुम दो सौ वर्ष तक जीवित रहो।"

शांता—"नहीं, यह आशीर्वाद मुझे न चाहिए।"

निर्मल—"तुम्हारा लड़का तुम्हें बहुत तंग करे।"

शांता—"यह आशीर्वाद ठीक है, मैं इसको सिर झुकाकर ग्रहण करती हूँ।"

निर्मल—"बाबा क्रुद्ध हो गए, तुम्हें शाप देते हैं, तुम अपनी बहू का मुख कभी न देख पाओगी।"

शांता—"बस बाबा, यही शाप न दो, और चाहे सब दे दो।"

निर्मल ने उठते हुए कहा—"तो बस, अब सामान बाँधो। कल दस बजे की गाड़ी से चलना है, नहीं तो बाबा क्रुद्ध होंगे।"

प्रातःकाल उठकर निर्मल उड-परिवार से मिलने चले गए। जाते समय रास्ते में वही समुद्र-तट मिलता था, जहाँ लिज़ी के साथ उनका प्रथम परिचय हुआ था। वहाँ आकर उसी पूर्व-परिचित शिला-खंड पर बैठ गए। निर्निमेष नयनों से वह विशाल, गंभीर, अथाह जल की ओर देखने लगे। उदयाचल पर स्थित सूर्य की किरणें लहराते हुए जल में पड़कर झिलमिली पैदा कर रही थीं। लोग समुद्र-स्नान के लिये आ रहे थे, और उस प्रशांत वक्षःस्थल पर भी सैकड़ों नावें उतराने लगी थीं। बड़ा ही सौंदर्य-पूर्ण दृश्य था। उन्होंने मन-ही-मन प्रणाम करके समुद्र से विदा ली।

लिज़ी अभी तक सो रही थी। निर्मल ने बँगले के भीतर घुसकर देखा, मिस्टर और मिसेज़ उड, दोनो चाय पी रहे हैं। निर्मल को देखते ही मिस्टर उड ने कहा—"गुडमार्निंग मिस्टर सिनहा! मैंने सुना है, आप आज एक दुःखमय समाचार सुनाने आए हैं।"

निर्मल—"गुडमार्निंग मिस्टर उड! हाँ, आज मैं आपसे विदा लेने आया हूँ।"

मिस्टर उड—"आइए, बैठिए। इस तरह अचानक क्यों जा रहे हैं? क्या कोई विशेष आवश्यक काम आ पड़ा है?"

निर्मल—"कोई विशेष काम तो नहीं, लेकिन यहाँ भी तो रहते बहुत दिन हो गए हैं।"

मिस्टर उड—"अभी बहुत दिन कहाँ हुए, मुश्किल से दो हफ़्ते हुए होंगे।"

निर्मल—(हँसकर) "एक यात्री के लिये इतना समय बहुत है।"

मिसेज़ उड—"नहीं मिस्टर सिनहा, आप यात्री नहीं हैं, आप हमारे मेहमान हैं।"

निर्मल—"लेकिन तब भी मैं एक यात्री ही हूँ। मिसेज़ उड, मैं आपका सदैव आभारी रहूँगा—आपके प्रेम, सत्कार और आदर के लिये!"

मिस्टर उड—"हम लोग आपकी ख़ातिर कुछ भी नहीं कर सके मिस्टर सिनहा, यही अफ़सोस हमेशा रहेगा। आपने हमारे बाबा की प्राण-रक्षा की। इसका बदला हम लोग किसी प्रकार नहीं दे सकते। मिस्टर सिनहा, आप हमारे अनन्य मित्र और उपकारी बंधु हैं। मेरे अनुरोध से दो-तीन दिन और रह जाइए।"

निर्मल—"क्षमा कीजिए मिस्टर उड! मा यहाँ से जाने के लिये बड़ी आकुल हैं। सब असबाब वग़ैरह बँध गया है, आज ही दस बजे की गाड़ी से जा रहा हूँ। इस समय मैं आपका अनुरोध नहीं रख सकता। लिज़ी कहाँ है?"

मिसेज़ उड—"अभी उठी नहीं। कल आपके बारे में बड़ी रात तक बात करती रही। वह आपके जाने से बड़ी दुखी होगी।"

निर्मल—"उसको छोड़ने में मुझे भी दुःख हो रहा है। लेकिन किया क्या जाय?"

मिस्टर उड—"न-मालूम क्यों लिज़ी आपको बहुत चाहती है।"

निर्मल—"यही मुझे भी नहीं मालूम। बाबा और जॉन कहाँ हैं?"

मिस्टर उड—"वे घूमने गए हैं।"

निर्मल ने उठते हुए कहा—"मिस्टर उड, तो अब विदा दीजिए। यदि कभी समय मिला, तो फिर पुरी आऊँगा।"

मिस्टर उड—"लिज़ी से न मिलिएगा?"

निर्मल—"लिज़ी से अब न मिलूँगा, उससे मिलने में मुझे कष्ट होगा। उससे मेरा गुडबाई कह दीजिएगा।"

मिसेज़ उड उठकर चली गईं, और थोड़ी देर में एक टिपारी लाकर निर्मल को देते हुए कहा—"मिस्टर सिनहा, आप मेरी ओर से मिसेज़ सिनहा को यह भेंट दे दीजिएगा।"

निर्मल ने पूछा—"इसमें क्या है मिसेज़ उड ?"

मिसेज़ उड—"इसमें कुछ भी हो, आपसे कुछ मतलब नहीं। आप मिसेज़ सिनहा को मेरी ओर से यह भेंट दीजिएगा। उन्हें यह मेरा प्रेमोपहार है।"

निर्मल—"आप ही उन्हें दीजिएगा।"

मिसेज़ उड—"नहीं, आप मेरी ओर से दे दीजिएगा। न-मालूम कब मेरा आना हो।"

निर्मल ने वह मख़मली टिपारी ले ली।

मिस्टर उड ने जेब से एक अँगूठी निकालकर कहा—"मिस्टर सिनहा, यह आपके लिये है। आप मेरी प्रेम-भेंट स्वीकार करें।"

निर्मल—"मिस्टर उड, आप क्या कर रहे हैं ?"

मिस्टर उड ने बड़ी शांति से कहा—"आपको एक तुच्छ प्रेम-चिह्न भेंट कर रहा हूँ। मिस्टर सिनहा, आप इसे अस्वीकार न कीजिए, हमें बड़ा दुख होगा।"

निर्मल ने ले लिया। फिर कहा—"अगर मैं जानता होता कि यह होगा, तो मैं कभी आपसे मिलने न आता।"

मिसेज़ उड—"तब तो आप हमें और दुखी करते! मिस्टर सिनहा, आप परिवार के मनुष्य हैं, विदेशी, अपरिचित नहीं। आज मुझे उतना ही दुख हो रहा है, जितना एक प्यारे भाई के विदा करने में।"

निर्मल ने कहा—"आपसे भी एक प्रार्थना है, यदि समय मिले, तो आप इलाहाबाद ज़रूर आवें। यह मेरा कार्ड है, और साथ में लिज़ी को ज़रूर लावें।"

मिस्टर उड—"मैं ज़रूर आऊँगा।"

निर्मल ने दोनों से कर-मर्दन कर विदा ली। दोनों उन्हें बँगले के बाहर तक पहुँचाने आए।

निर्मल के चले जाने के बाद मिसेज़ उड ने कहा—"इस भारतीय ने मेरे हृदय में घर कर लिया है।"

मिस्टर उड ने भी उत्तर दिया—"मिस्टर सिनहा बड़े ही सज्जन हैं। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम हैं। मैं उन्हें भाई की तरह प्यार करता हूँ।"

निर्मल मलीन मुख से घर की ओर चले। समुद्र-तट पर मिस स्मिथ खड़ी हुई इनकी प्रतीक्षा कर रही थीं।

मिस स्मिथ ने आगे बढ़कर कहा—"मिस्टर सिनहा, आप जा रहे हैं?"

निर्मल ने रुककर कहा—"हाँ, आज जा रहा हूँ। मिस स्मिथ, आप इलाहाबाद ज़रूर आइएगा। मैं हमेशा आपकी सहायता के लिये तैयार रहूँगा।"

मिस स्मिथ—"आप देवदत्त वर्मा से कुछ न कहिएगा।"

निर्मल—"नहीं, आप विश्वास रक्खें। आप लिज़ी से मेरा 'गुड-बाई' कहिएगा।"

मिस स्मिथ—"इस समय आप कहाँ जा रहे हैं?"

निर्मल—"काशी। मैं आपको वहाँ से पत्र लिखूँगा।"

मिस स्मिथ—"धन्यवाद, अच्छा।"

निर्मल ने आज पहलेपहल मिस स्मिथ से हाथ मिलाया। मिस स्मिथ द्रुत गति से बँगले की ओर चली गईं।

निर्मल ने पहले मिस स्मिथ की ओर देखा, फिर आकाश की ओर और फिर अथाह नीलांबुराशि की ओर, और एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"जीवन के क्षणिक सुख-स्वप्न! तुम्हें प्रणाम।"

(११)

शाम को चपला जब टेनिस खेलकर लौटी, तो उसका मन उदास था। मिस्टर माथुर अपने बँगले के सामने लान पर बैठे हुए धूम्र-पान कर रहे थे। चपला घर के अंदर जाने लगी। मिस्टर माथुर ने उसे बुलाकर कहा—"चपला, यहाँ आओ। कुछ काम है।"

चपला आकर उनके पास खड़ी हो गई। मुख गंभीर था, एक विषाद-छाप लगी हुई थी। मिस्टर माथुर ने बड़े ध्यान से उसकी ओर देखा। चपला ने अपना मस्तक नीचा कर लिया।

मिस्टर माथुर—"चपला, तुम्हें कौन-सा दुःख है?"

चपला—"मुझे कोई दुख नहीं।"

मिस्टर माथुर—"तब तुम इतनी उदास और मलीन क्यों रहती हो। दिन-भर लिखा करती हो, घूमती और खेलती बिलकुल नहीं। तुम इतनी विरक्त क्यों हो गईं?"

चपला ने मस्तक नत किए उत्तर दिया—"अभी-अभी तो खेलकर आ रही हूँ। अब खेलने में मेरा मन नहीं लगता।"

मिस्टर माथुर—"क्यों?"

चपला—"मैं स्वयं नहीं जानती बाबूजी, मैं देश-सेवा करना चाहती हूँ।"

मिस्टर माथुर—"देश-सेवा के लिये बहुत वक्त पड़ा है। अभी तुम बच्ची हो।"

चपला—"बच्ची तो हूँ, लेकिन हमारी बहनों की दशा बड़ी ख़राब है। उन्हें देखकर मुझे नींद नहीं आती, खाना हज़म नहीं होता।"

मिस्टर माथुर ने ज़ोर से हँसकर कहा—"वाह! चपला अन्य के दुखों से इतनी कातर है। देखता हूँ, मिस्टर वर्मा का कहना ठीक है। मैं तो समझता था, यह नौजवानी की एक उमंग

है, जो थोड़े दिन रहेगी, और फिर चली जायगी। लेकिन चपला पर तो पूरा रंग चढ़ा दिखाई देता है।"

चपला शरमा गई। उसका मुख लाल हो गया।

मिस्टर माथुर—"चपला, अभी तुम बच्ची हो, निरी बच्ची हो। अभी तक तुम्हारे मुख से दूध की महँक नहीं गई। अभी कल तो तुमने मा की गोद छोड़ी, और आज से ऐसी कठिन कल्पना करती हो। यह तुम्हारा लड़कपन नहीं, तो क्या है? देश-सेवा आदमी तब करता है, जब उसके लायक़ हो जाता है। यह उम्र खेलने-खाने की है। अभी तुम्हारा विवाह करना है, विवाह के बाद तुम देश-सेवा करना, तभी उचित भी होगा, और अच्छा भी लगेगा।"

चपला के मन में आया कि वह कह दे कि वह विवाह नहीं करेगी, लेकिन उसके मुख से बात न निकली, वह चुप रही।

मिस्टर माथुर कहते गए—"मिस्टर वर्मा को तुम जानती हो। उन्होंने तुम्हारे साथ विवाह के लिये प्रस्ताव किया है। कल उनके बड़े भाई आए थे, उन्होंने यह बात कही है। तुम्हारी मा से पूछा, तो उन्होंने सम्मति दे दी है, अब तुम कहो, तुम्हारी क्या राय है?"

चपला का मुख लाल हुआ जा रहा था। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

मिस्टर माथुर—"मैं कोई ऐसा काम नहीं करना चाहता, जिसकी वजह से मेरी संतान को दुख पहुँचे। तुम सुशिक्षित हो—अपना भला-बुरा समझ सकती हो। मिस्टर वर्मा को भी तुम अच्छी तरह जानती हो। यदि उनके विषय में तुम्हारा अभी तक विचार दृढ़ नहीं हुआ है, तो अभी और देख लो। यदि वह तुम्हारे उपयुक्त हों, तो वैसा कहो, मैं विवाह पक्का कर लूँ, नहीं तो इनकार कर दूँ। चपला, तुम मेरी लाड़ली लड़की हो, मैं तुम्हें प्राणों से भी प्रिय मानता हूँ। तुम्हारे सुख से सुखी और तुम्हारे

दुख से दुखी होऊँगा। मुझे इसी में प्रसन्नता है कि तुम सुखी हो। मिस्टर वर्मा सज्जन हैं, इँगलैंड से आई० सी० एस्० पास हैं, यहाँ के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं, अच्छे ख़ानदान के हैं। मेरी राय मे वह हर तरह से तुम्हारे उपयुक्त हैं, लेकिन अगर तुम पसंद करो।"

चपला के मुख का रंग अधिकतर लाल होता जा रहा था। उससे उत्तर न बन पड़ा।

मिस्टर माथुर—"चपला, क्या कहती हो, क्या मैं तुम्हारी अनुमति समझूँ?"

चपला ने अब की बार बड़े साहस के साथ कहा—"बाबूजी, मैं विवाह नहीं करूँगी।"

मिस्टर माथुर ने चपला की ओर देखते हुए कहा—"यह क्या चपला, क्या तुम्हारा यह सचमुच विचार है?"

चपला ने दृढ़ता से उत्तर दिया—"हाँ, मेरा यह दृढ़ निश्चय है। मैं आजन्म कुमारी रहूँगी।"

मिस्टर माथुर थोड़ी देर तक चुप रहे, फिर बोले—"चपला, यह हिंदू-समाज है, इसमें स्त्रियाँ कुमारी नहीं रह सकतीं। विवाह करना ही पड़ेगा। न करने से जानती हो, इसका परिणाम क्या होगा?"

चपला ने अपना मस्तक नीचे कर लिया।

मिस्टर माथुर—"चपला, अगर तुम जीवन-भर कुमारी रहोगी, तो पुरुष तुम्हारे नाम पर कलंक लगावेंगे। जहाँ से तुम निकल जाओगी, वहीं के लोग तुम्हारी ओर उँगलियाँ उठावेंगे, और अकथ्य बातें कहेंगे। चपला, हिंदू-समाज में जन्म लेने के अभिशाप की मुक्ति है विवाह।"

चपला ने बड़ी धीरता से कहा—"तो इसी के लिये मैं अपना जीवन नष्ट कर दूँ? मैं अपना कर्तव्य छोड़ दूँ, अपनी आत्मा की पुकार को ठुकरा दूँ?"

मिस्टर माथुर—"अवश्य ! समाज में रहकर समाज के अनुसार काम करना आवश्यक है।"

चपला—"लेकिन इस समाज की दशा कब परिवर्तित होगी ?"

मिस्टर माथुर—"ठीक है, लेकिन समय सब कुछ करा लेता है। जब समय आवेगा, तब इसकी दशा आप-से-आप बदल जायगी। किसी को भी सुलझाना नहीं पड़ेगा, जटिल-से-जटिल गुत्थियाँ आप-से-आप सुलझ जायँगी।"

चपला—"यह कैसे हो सकता है बाबूजी ! प्रयास करने से ऐसा होगा। जब समाज के विरुद्ध आदमी खड़े होंगे, तब समाज की गर्दन पर जूँ रेंगेगी, अन्यथा नहीं।"

मिस्टर माथुर—"तुम्हारा कहना ठीक नहीं चपला ! समय की स्थिति सब कुछ करा लेती है। देख लो, आज से सौ वर्ष पूर्व के हिंदू-समाज और अब के हिंदू-समाज में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। यही नहीं, अन्य-अन्य समाज आप-से-आप पैदा हो गए हैं—मिसाल के लिये बंगालियों का ब्रह्म-समाज।"

चपला—"लेकिन ब्रह्म-समाज का जन्म कभी न होता, अगर केशवचंद्र सेन और राजा राममोहन राय प्रभृति समाज-द्रोही अपनी आवाज़ न उठाते।"

मिस्टर माथुर—"ठीक है, लेकिन वह समय था, जिसने उन्हें बाध्य किया कि वे अपनी आवाज़ उठावें।"

चपला—"तो उसी तरह यह भी समय है कि यहाँ भी कोई आवाज़ उठावे। स्त्रियों के पास यह संदेश पहुँचावे कि तुम आत्म-रक्षा के लिये सन्नद्ध हो। अपने मान, संभ्रम, अपनी इज़्ज़त-आबरू के लिये प्राण ले लो, और प्राण दे दो।"

मिस्टर माथुर—"लेकिन यह काम एक मनुष्य के किए नहीं हो

सकता। अकेले तुम्हीं इस भार को नहीं ग्रहण कर सकतीं।"

चपला—"सबसे पहले मुश्किल यह पड़ा करती है कि कोई रास्ता दिखलावे, जहाँ रास्ता दिखा दिया गया कि सैकड़ों मनुष्य उसके पीछे रहते हैं।"

मिस्टर माथुर—"तो इसके माने हैं, तुम विवाह नहीं करोगी?"

चपला—"मेरा तो इरादा यही है। आप पिता हैं, मैं पुत्री, आपकी आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिए।"

मिस्टर माथुर—"चपला, तुम जानती हो, मेरा व्यवहार तुम्हारे साथ पिता-पुत्री का-सा नहीं, बल्कि मित्र का-सा है। मुझे आंतरिक प्रसन्नता तभी होगी, जब तुम प्रसन्न और सुखी होओगी। मैं तुम पर बेजा भार नहीं डालना चाहता।"

चपला—"मेरी तो इच्छा विवाह करने की नहीं।"

मिस्टर माथुर—"तो क्या चपला, तुम हम दोनो को निराश कर दोगी? तुम्हीं एक मेरी लड़की हो। तुमको पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया है। क्या इसी दिन के लिये कि तुम संसार से वैराग्य ले लो। जब तुम्हारी मा यह सुनेंगी, तो, जानती हो, उन्हें कितना कष्ट होगा?"

चपला ने अपना मुख फिर नत कर लिया।

मिस्टर माथुर—"चपला, ऐसा इरादा न करो। मैं तुम्हें विरागिनी नहीं, सुहागिनी देखना चाहता हूँ।"

चपला के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए।

मिस्टर माथुर—"चपला, मैं तुम्हारे ऊपर कोई दवाव नहीं डालता, लेकिन मेरा अनुरोध है कि तुम ऐसा इरादा न करो। चपला, मैं तुम्हें वधू-वेष में देखना चाहता हूँ।"

चपला रो पड़ी। उसने आवेग-भरे कंठ से कहा—"बाबूजी, वह सुख मेरे भाग्य में नहीं।"

यह कहकर चपला वायु-वेग से घर में घुस गई। उसके नेत्रों से अश्रु-धारा उमड़ी चली आ रही थी। हृदय धधक रहा था, लेकिन अश्रु-धारा बुझाने में असमर्थ थी। वह अपने कमरे में आकर, ख़ूब जी भरकर रोई। उसने थोड़ी देर बाद कहा—"अवश्य ही वैवाहिक जीवन का सुख मेरे भाग्य में नहीं।"

(१२)

मिस्टर माथुर किसी भी तरह चपला की उस दशा का कारण न जान सके। उनके अनुमान में कोई बात नहीं आई। वह उसकी उस दशा का कारण महज़ एक लड़कपन समझे। मिस्टर माथुर ने अनुमान किया कि शायद चपला का मन बाहर जाकर बदल जाय। वह कई दिनों से नैनीताल या मंसूरी जाने का इरादा कर रहे थे। लेकिन इधर कृष्णचंद्र (उनके पुत्र) के विवाह के कारण नहीं जा सकते थे, लेकिन कई कारणों से विवाह इस साल के लिये रुक गया था। अब उनके जाने में कोई बाधा नहीं थी। मिस्टर माथुर ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अगले सप्ताह में वह अवश्य चल देंगे।

मिस्टर वर्मा चपला पर अनुरक्त थे ही। वह उससे विवाह करना चाहते थे। इसी अवसर में उनके बड़े भाई भी आ पहुँचे। उन्होंने बड़े भाई से अपना विचार प्रकट किया। बड़े भाई को कोई आपत्ति नहीं थी। वह मिस्टर माथुर के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गए। मिस्टर माथुर ने कोई निश्चय रूप से उत्तर नहीं दिया।

प्रातःकाल था। मिस्टर माथुर का बैठका मुवक्किलों से भरा हुआ था। मिस्टर माथुर की प्रैक्टिस ख़ूब ज़ोरों से चलती थी। तीन-तीन मुंशी थे, लेकिन एक को भी दम मारने की फ़ुरसत न मिलती थी। मुवक्किल-पर-मुवक्किल चले आ रहे थे। लोगों का अनुमान था कि आधे से ज़्यादा मामले पहले मिस्टर माथुर के वहाँ जाते हैं, फिर जब वहाँ जगह नहीं मिलती, तो किसी दूसरी जगह जाते हैं।

मिस्टर माथुर बैठे हुए एक मिसिल देख रहे थे। सामने कई मिसिलें रक्खी हुई थीं। मिस्टर माथुर बड़े ध्यान से मिसिल देखने में तन्मय हो रहे थे। उनके नौकर ने एक कार्ड उनके हाथों में दे दिया। कार्ड में लिखा था—'मिस्टर बी० डी० वर्मा, देहली।' मिस्टर माथुर ने कार्ड पढ़कर नौकर से कहा—"उनको मेरे कमरे में सम्मान-पूर्वक ले जाओ, मैं अभी आता हूँ।" फिर मुवक्किलों से कहा—"आप लोग ज़रा इंतज़ार करें, मैं अभी आता हूँ।"

मिस्टर माथुर भी उठकर चले गए।

मिस्टर बी० डी० वर्मा बैठे हुए इंतज़ार कर रहे थे। मिस्टर माथुर को देखकर कहा—"कहिए, मिस्टर माथुर, क्या निश्चय हुआ है?"

मिस्टर माथुर ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"अभी मैं निश्चय के साथ नहीं कह सकता मिस्टर वर्मा!" फिर नौकर से कहा—"एक तश्तरी में पान ले आ।"

मिस्टर बी० डी० वर्मा—"मैं आज शाम को देहली वापस जा रहा हूँ। आपका उत्तर जान पाता, तो बहुत अच्छा होता।"

मिस्टर माथुर—"देखिए मिस्टर वर्मा, इन दिनों में मैंने चपला से पूछा था, अभी तक उसका मत नहीं मिला। मैं बग़ैर उसकी सम्मति के विवाह तय नहीं कर सकता। आप थोड़े दिन धैर्य धरें। यदि चपला का मन मिल गया, तो विवाह करने में मुझे कोई आपत्ति न होगी। यों मैं मिस्टर वर्मा को चपला के उपयुक्त समझता हूँ।"

मिस्टर बी० डी० वर्मा—"अभी तक आप अपनी लड़की का मत नहीं जान सके?"

मिस्टर माथुर—"जी नहीं। आजकल उसके मन पर देश-सेवा का रंग चढ़ा हुआ है। जब वह लहर कम होगी, तब शायद विवाह के लिये सम्मति दे।"

नौकर पानों की तश्तरी लिए आ पहुँचा।

मिस्टर माथुर ने पान देते हुए कहा—"मैं थोड़े ही दिनों में, कोर्ट बंद होते ही, नैनीताल या मंसूरी जानेवाला हूँ। वहाँ से लौटकर अगर चपला का मत होगा, तो आपको सूचना दूँगा।"

मिस्टर वी० डी० वर्मा ने कहा—"अच्छा, तो मैं अब विदा होता हूँ। आप निश्चय करके उत्तर दीजिएगा। मैं आपका इंतज़ार करूँगा।"

यह कहकर मिस्टर वर्मा चले गए। मिस्टर माथुर भी जाकर अपने मुवक्किलों से बातें करने लगे।

संध्या को कोर्ट से लौटकर मिस्टर माथुर ने चपला से कहा—"चपला, आज तुम्हें एक सुसंवाद सुनाता हूँ।"

चपला ने अपना गंभीर और मलीन मुख उठाकर कहा—"कहिए।"

चपला के मुख पर वह हर्ष की श्री नहीं दौड़ी, और न उसकी आम की फाँक-जैसी आँखों में सहज ज्योति ही जगमगा उठी, जब मिस्टर माथुर ने उसे एक सुसंवाद सुनाने को कहा। उसके मुख पर विषाद की अगाढ़ छाया और गाढ़ी हो गई।

मिटटर माथुर ने चपला का हाथ सस्नेह लेते हुए कहा—"चपला, पहाड़ पर चलोगी?"

चपला ने साल-भर पहले से पहाड़ पर चलने के लिये मनसूबे बाँध रक्खे थे। वह कई बार कह भी चुकी थी, लेकिन मिस्टर माथुर हमेशा टालते ही रहे थे।

चपला के मुख की विषाद-छाया कम होने लगी। उसने उत्फुल्ल स्वर से पूछा—"कब चलिएगा?"

मिस्टर माथुर ने चपला की ओर स्नेह-दृष्टि से देखते हुए कहा—"जब तुम कहो।"

चपला—"मेरा मन इलाहाबाद से ऊब उठा है। जितना जल्दी हो सके, यहाँ से चल दीजिए।"

मिस्टर माथुर—"कल चलोगी ?"

चपला—"इतनी जल्दी ? तैयारी तो कर लेने दीजिए, कपड़े सिलवा लें, एक सप्ताह बाद चलिए।"

मिस्टर माथुर—"तब तक कोर्ट भी बंद हो जायगा।"

चपला—"और कौन जायगा ?"

मिस्टर माथुर—"अभी तक तो कोई नहीं जा रहा है, शायद माधव बाबू जायँ तो जायँ।"

चपला—"शायद इस साल वह नहीं जायँगे।"

मिस्टर माथुर—"क्यों, तुम कैसे जानती हो ?"

चपला—"मैंने कुमुदिनी से कहा था, तो वह कह रही थीं कि बाबूजी का विचार है कि वह इस साल नहीं जायँगे, क्योंकि उनको किसी आवश्यक काम से इलाहाबाद में रुक जाना पड़ेगा।"

मिस्टर माथुर—"तुम्हारे प्रोफ़ेसर मिस्टर सिनहा ने भी वादा किया है कि वह भी मंसूरी में आकर कुछ दिन रहेंगे।"

न-मालूम क्यों चपला के मुख पर एक लालिमा छा गई। उसकी दृष्टि ऊँची न हो सकी। उसने नत मस्तक से कहा—"क्या आपके पास कोई पत्र आया है ?"

मिस्टर माथुर—"हाँ, कल एक पत्र आया है, वह आजकल हरद्वार में हैं, वहाँ से मंसूरी जायँगे। शायद वहीं मिलें।"

चपला का मुख प्रफुल्लित हो उठा। उसका गया हुआ हास्य फिर लौट आया।

वह पहले की तरह दौड़ती हुई घर के भीतर घुस गई। मिस्टर माथुर मुग्ध दृष्टि से अपनी प्रिय कन्या की ओर देख रहे थे। उनके भी चेहरे पर एक मंद हँसी आ गई। उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"चपला प्रसन्न है !"

चतुर्थ खंड

(१)

बाल-सूर्य की मयूखें संसार-रंगमंच पर फ़ोकस छोड़ने लगीं। पक्षियों के कलरव-मधुर रागिनी से वायु-मंडल-नाट्यशाला ध्वनित हो उठी। प्रकृति-नटी अपने सहायकों के साथ नित्य की भाँति आज भी नाट्य करने लगी। मनुष्य दर्शक की भाँति देखने लगे। मिस्टर देवदत्त आँख मलते हुए उठ बैठे। एक मधुर हास्य उनके मुख पर क्रीडन कर रहा था। आशा और उत्साह उस हँसी से बह रहे थे! वह मसहरी से नीचे उतरकर पास ही बाग़ में टहलने लगे।

प्रेम का प्याला किसने नहीं पिया? लेकिन इस प्याले में दो गुण हैं। यह दो गुण हैं—एक अमृत और दूसरा विष। पीनेवाला इसी प्याले को अमृत बना सकता है, और इसी को विष। यही विचित्रता है! प्रेम सबके हृदय में है, किंतु यह कहीं उत्साह और हँसी प्रदर्शित करता और कहीं निराशा और तड़फन। कहीं उत्सर्ग और सौंदर्य की छटा दिखलाता है, और कहीं स्वार्थपरता और लोलुपता दिखलाता है। कहीं प्रेम है, कहीं आसक्ति। कहीं अनुराग है, कहीं तीव्र आकर्षण-सहित मोह। पहला अमृत है, और दूसरा मरात्मक विष। पहला शांति है, और दूसरा अशांति का घर। यही तो भेद है।

मिस्टर वर्मा प्रेम-पाठशाला के छात्र थे। बड़े रँगीले थे। बड़ी तबीयत के थे। साधारण-से-साधारण सुंदरी के नयन-बाणों से विद्ध होकर छटपटाने लगते थे। रमणी में मनमोहकता होती ही है। चाहे जितनी साधारण स्त्री हो, चाहे वह आफ़्रिका की नीग्रो जाति की हो और चाहे वह जार्जिया के कोहक़ाफ़ की परी हो, चाहे कोल-

भिल्ल हो, चाहे शुद्ध पेरेसियन ! किंतु हरएक में अपने-अपने ढंग की मनमोहकता होती है। गँवार-से-गँवार और कुरूप-से-कुरूप स्त्री में मनमोहकता मौजूद है। यही एक बड़ा भारी आश्चर्य है! ईश्वर ने किसी को भी सौंदर्य-विहीन नहीं पैदा किया !

प्रेम-पाठशाला में सब नहीं प्रवेश हो सकते। प्रवेश होने के लिये यह ज़रूरी है कि वह अपना सुख, आशा, उत्साह और जीवन सब उस प्रतिमा पर चढ़ा दे, जिसको वह प्यार करता है। प्रेम का प्रत्युत्तर बिना उत्सर्ग के नहीं मिलता ! फ़रहाद और मजनूँ इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। किसी कवि ने कहा है—

"इस इश्क़ के मकतब में मिलता है सबक़ पहले ;
गर वस्ल की ख़्वाहिश हो, हस्ती को फ़ना करना।"

प्रकृति के कण-कण में सुंदरता भरी हुई है। लेकिन देखने के लिये आँखें चाहिए। सौंदर्य-भक्त एक मिट्टी के ढेले में भी सौंदर्य देखता है, लेकिन एक रूप-भिखारी केवल स्त्री में। किंतु सौंदर्य भी कई तरह से देखा जाता है। कोई आँखों पर मुग्ध है, तो कोई सुराहीदार गरदन पर। कोई बालों पर निसार है, तो कोई हाथों पर। सब सौंदर्य-पुजारी एक ही अंग पर मुग्ध होते हैं। एक अंग-विशेष पर मुग्ध होना मोह है, और संपूर्ण पर मुग्ध होना प्रेम है। पहला विष है, और दूसरा अमृत है।

मिस्टर वर्मा कुमुदिनी का गर्व चूर्ण करना चाहते थे। वह हज़ार जान से उसकी रानी-जैसी अदाओं पर फ़िदा थे। चपला पर मुग्ध थे वह उसकी हँसी के कारण। चपला की हँसी इतनी मन भा गई थी कि वह उससे विवाह तक करना चाहते थे। लेकिन इस विवाह में चिरस्थायी मोह भी न था। एक कुवासना, एक पिपासा शांत करने की उत्कट इच्छा थी। फिर इसको क्या कहा जाय, अमृत या विष ? या उससे भी अधिक प्राणांतकारी कोई वस्तु !

मिस्टर वर्मा बाग़ में टहल रहे थे। वह आज चिंतित-से थे। इन दिनों वह चिंतित रहते ही थे। चपला पहाड़ पर चली गई थी। कुमुदिनी उन्हें घृणा की दृष्टि से देखती थी। और विशेषकर उनके मन में एक डर और चिंता सदैव लगी रहती थी। वह सदा फाँसी का झूलता हुआ फंदा देखा करते थे, लेकिन आज की रात में उन्होंने फाँसी का फंदा न देखकर कोई और स्वप्न देखा था। स्वप्न शायद सुख-कर था। तभी चेहरे पर हँसी थी, लेकिन साथ ही में चिंता भी थी।

मिस्टर वर्मा का मन घूमने में न लगा। वह ऊबकर स्नान-घर में चले गए। स्नान करके वह शीशे में मुख देखने लगे। मुख पर आँखों के नीचे कालिमा थी। चेहरे पर एक अजीव शुष्कता थी। आँखें झूम रही थीं, लेकिन उनमें चमक नहीं थी। सुरूर घट जाने पर जो प्रति-क्रिया की दशा में आँखें होती हैं, वैसी ही अलसमय, निस्तेज आँखें थीं। इसी समय ख़ानसामे ने एक कार्ड लाकर मिस्टर वर्मा को दिया।

मिस्टर वर्मा ने कार्ड उठाकर पढ़ा—"मिस्टर जे० सी० विलसन।"

नाम पढ़कर मिस्टर वर्मा सोचने लगे—यह मिस्टर विलसन कौन? नाम तो अवश्य कुछ परिचित-सा मालूम होता है, लेकिन कौन हैं? अच्छा, देखा जायगा।

मिस्टर वर्मा ने कपड़े पहने, और वह बाहर बैठके की ओर चले। दरवाज़े की ओर पीठ किए एक अँगरेज़ सज्जन बैठे हुए थे। वह बड़े आराम से बैठे थे, मानो यह उन्हीं का घर है। दोनो पैर एक दूसरी कुरसी पर रक्खे हुए थे। मिस्टर वर्मा धीरे-धीरे कमरे के अंदर घुसे। मिस्टर विलसन ने पैरों की आहट पाकर सिर घुमाया। मिस्टर वर्मा को देखकर वह उठ खड़े हुए, और हाथ बढ़ाते हुए बोले—"वेल मिस्टर वर्मा, गुडमार्निंग।"

मिस्टर वर्मा ने उत्तर देकर कहा—"मैंने आपको अभी पहचाना नहीं।"

मिस्टर विलसन—"आप इतनी जल्दी भूल गए! मिस्टर वर्मा, मुझे आपका पता बड़ी मुश्किलों से लगा है। आप 'डायमंड' जहाज़ के मित्र को भूल गए?"

मिस्टर वर्मा ने हाथ बढ़ाकर कहा—"ओह, मिस्टर विलसन! आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है।"

मिस्टर विलसन—"आपसे मिलने के लिये तो मैंने न-जाने कितना सिर मारा! आपने कहा था कि मैं आगरे में रहता हूँ, लेकिन वहाँ पर तो आपका पता ही नहीं लगा।"

मिस्टर वर्मा—"उन दिनों हम लोग आगरे में ही रहते थे, लेकिन आजकल यहाँ चले आए हैं।"

मिस्टर विलसन—"जब मैं आगरे पहुँचा, तो दिल में आया कि आपसे भी भेंट करता चलूँ, लेकिन वहाँ जब पता न लगा, तो 'गवर्नमेंट गज़ट' की ज़रूरत पड़ी, क्योंकि मुझे मालूम था कि आप कहीं-न-कहीं गवर्नमेंट सर्विस में होंगे। बड़ी मुश्किलों से यहाँ पहुँचा। यही मेरी कहानी है।"

मिस्टर वर्मा—"मैं तो आपको बिलकुल भूल गया था।"

मिस्टर विलसन—"लेकिन मैं तो अपने पुराने मित्रों को नहीं भूला।"

मिस्टर वर्मा—"धन्यवाद! आप यहाँ क्या कर रहे हैं?"

मिस्टर विलसन—"अभी कुछ नहीं, लेकिन अगर रुपया मिले, तो कोई कारबार शुरू करूँ।"

मिस्टर वर्मा—"आप तो बड़ी आसानी से किसी भी दफ़्तर में नौकर हो सकते हैं।"

मिस्टर विलसन—"ठीक है, लेकिन मैं अपने को बंधनों में बाँधना नहीं चाहता। सदा से खाया और घूमा हूँ। उसी तरह रहना चाहता हूँ।"

मिस्टर वर्मा ने हँसकर कहा—"यह भी ढंग अच्छा है।"

मिस्टर विलसन—"जो कुछ भी हो, आपसे मैं एक बड़े भेद की बात कहने आया हूँ। या यों कहिए, आपको सचेत करने।"

मिस्टर वर्मा ज़रा कुछ चौंके, लेकिन इतनी जल्दी सँभाला कि मिस्टर विलसन की तेज़ निगाह भी धोका दे गई। उन्होंने गंभीर स्वर में कहा—"कौन-से भेद की बात है मिस्टर विलसन ?"

मिस्टर विलसन ने कुछ देर तक मिस्टर वर्मा की ओर देखकर कहा—"मिस्टर वर्मा, आपको शायद वह काली भयंकर रात याद होगी, जब हम दोनो भारत को एक ही जहाज़ पर आ रहे थे। उस दिन दोपहर ही से काले-काले बादलों ने आकाश घेर लिया था। सर्वत्र अँधेरा छा गया था। तूफ़ान भी बड़े ज़ोरों से था। वह तूफ़ान दूसरे दिन तक भी रहा था। उस तूफ़ान के बाद ही हम दोनो मित्र हुए हैं। उसके पहले न मैं आपको जानता था, और न आप मुझे।"

मिस्टर वर्मा के चेहरे का रंग बार-बार बदल रहा था, लेकिन बड़ी सावधानी से अपने को सँभाले हुए थे।

मिस्टर विलसन भी तेज़ निगाह से मिस्टर वर्मा की ओर देख रहे थे।

मिस्टर वर्मा—"हाँ, याद आया, वह तूफ़ान तो हमको 'मध्य-सागर' में ही मिला था।"

मिस्टर विलसन—"हाँ, और उसके छ घंटे पहले मैं जहाज़ पर सवार हुआ था।

मिस्टर वर्मा—"आपका इससे मतलब क्या है ? शीघ्र कहिए।"

मिस्टर विलसन—"अभी आप धैर्य धरें। आप सुनते जाइए! हाँ, आपके कमरे के पास या आपके ही कमरे में एक स्त्री रहती थी, उसका भला-सा नाम था, केट......केट......ऐसा ही कुछ नाम था। जो उस तूफ़ान में डेक से गिर पड़ी थी।"

मिस्टर वर्मा धीरे-धीरे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने धीरता से

कहा—"कहिए, आपका मतलब क्या है? वह मेरे बग़ल में रहती थी। मैं उसको नहीं जानता। हाँ, सुना था कि वह डेक पर से समुद्र में गिर पड़ी है। इससे आपका क्या मतलब है?"

मिस्टर विलसन—"मिस्टर वर्मा, आप अधीर न हों। हाँ, उस तूफ़ान में एक स्त्री अपने को लबादे से ढके हुए निकली और जन-शून्य डेक की ओर जाने लगी। सर्वत्र अंधकार छाया हुआ था। लेकिन न-मालूम क्यों, वह डेक की रेलिंग पकड़कर समुद्र की ओर एकटक देख रही थी। उसी समय कोई दूसरा व्यक्ति भी उसके पास........।"

मिस्टर वर्मा का चेहरा एकदम से सफ़ेद पड़ गया। वह उठ पड़े। मिस्टर विलसन ने अपनी कहानी बंद करके कहा—"मिस्टर वर्मा, आपको शायद कष्ट हो रहा है?"

मिस्टर वर्मा ने अपने को रोककर कहा—"कष्ट कुछ नहीं। कभी-कभी मेरे हृदय में दर्द पैदा हो जाता है, उसी की वजह से कभी-कभी बहुत अस्थिर हो जाना पड़ता है। अच्छा होगा, आप यह कहानी बंद करें और अपना मतलब कहें।"

मिस्टर विलसन ने एक हल्की मुस्कान-सहित कहा—"हाँ, शीघ्र ही कहता हूँ, आप थोड़ी देर और ठहरें। उस स्त्री के पास वह मनुष्य बहुत ही आहिस्ता-आहिस्ता पहुँचा। वह स्त्री बेख़बर खड़ी हुई थी। थोड़ी देर में एक हल्की चीख़ सुनाई दी, और दूसरे क्षण समुद्र में बड़े ज़ोर से आवाज़ हुई, लेकिन वह चीख़ और गिरने का शब्द, दोनो तूफ़ान की आवाज़ में मिल गए। उसी समय बिजली चमकी......।"

मिस्टर वर्मा की दशा बड़ी ख़राब हो गई। आकृति बिलकुल बिगड़ गई; वैसी हो गई, जैसे एक मृत मनुष्य की होती है।

मिस्टर वर्मा ने बड़ी बेचैनी से कहा—"मिस्टर विलसन, अब बस कीजिए।"

मिस्टर विलसन—"अच्छा, बिजली चमकी, और वह व्यक्ति

अकेला था। स्त्री नहीं थी। उस व्यक्ति ने बड़ी होशियारी से अपने को छिपाते हुए अपने कमरे में आकर दरवाज़ा बंद कर लिया। दूसरे दिन मालूम हुआ कि 'केट ट्रैंसम' नाम की एक लड़की ग़ायब है! अनुमान किया गया कि वह कल शायद तूफ़ान में समुद्र में गिर पड़ी।"

मिस्टर वर्मा उठकर टहलने लगे थे। वह ठहरकर बोले—"बस, कह चुके आप?"

मिस्टर विलसन—"आप स्वस्थ होकर बैठें। आपसे और कुछ कहना है।"

मिस्टर वर्मा—"कहिए, मैं सुनता हूँ। आज मुझे ज़रूरी काम है, जल्दी कहिए।"

मिस्टर विलसन—"मैंने सब देखकर यह धारणा की थी कि 'केट' गिरी नहीं, बल्कि उसे उस व्यक्ति ने ढकेल दिया था—और वह व्यक्ति आप थे।"

मिस्टर वर्मा खड़े हो गए। वह स्थिर दृष्टि से विलसन की ओर देखने लगे। उनका चेहरा बिलकुल श्वेत हो गया था। आँखों की सब चमक चली गई थी। उनके मुँह पर भय के चिह्न साफ़-साफ़ प्रकट हो रहे थे।

मिस्टर वर्मा ने लड़खड़ाती ज़बान से कहा—"मैं...मैं था...? नहीं, आप भूल कर रहे हैं, मैं न था।"

मिस्टर विलसन—"मुझे विश्वास है कि आप थे। मैंने अपनी आँखों से स्वयं देखा था। मिस्टर वर्मा, आप झूठ बोल रहे हैं। आपने केट से पिंड छुड़ाने के लिये उसकी हत्या की थी।"

मिस्टर वर्मा ने अपने को सँभालकर कहा—"चुप-चुप, मैं न था। केट अपने से गिर पड़ी थी। कहिए, आपका मतलब क्या है? आपका मतलब पुलिस में यह मामला देना नहीं है, यह तो साफ़

ही है, क्योंकि अगर ऐसी कुछ बात होती, तो आप कब के पुलिस में रिपोर्ट कर दिए होते।"

मिस्टर विलसन बैठे हुए हँस रहे थे। उनके चेहरे पर विजय की वह हँसी थी, जब कोई अपने विकट शत्रु को हरा देता है।

मिस्टर विलसन ने कहा—"हाँ, सत्य कह रहे हैं। मैं पुलिस में मामला नहीं देना चाहता। तब तक, जब तक आप मेरी सहायता करेंगे, नहीं तो हारकर देना ही पड़ेगा।"

मिस्टर वर्मा—"आप कितना रुपया चाहते हैं?"

मिस्टर विलसन—"यही छोटी-सी रक़म, कोई दस हज़ार होने से मेरा काम चल जायगा।"

मिस्टर वर्मा ने आँखें फाड़कर कहा—"दस हज़ार?"

मिस्टर विलसन ने कहा—"हाँ, सिर्फ़ दस हज़ार।"

मिस्टर वर्मा—"यह तो बड़ी रक़म है।"

मिस्टर विलसन—"लेकिन एक हत्या के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं। आप अमीर हैं, ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं, यह रक़म बहुत थोड़ी है।"

मिस्टर वर्मा—"लेकिन इतना रुपया तो मेरे पास नहीं है।"

मिस्टर विलसन—"अभी पाँच हज़ार दे दीजिए, बाद में बाक़ी रक़म दे दीजिएगा।"

मिस्टर वर्मा—"लेकिन मैं अभी इतना भी नहीं दे सकता।"

मिस्टर विलसन—"आपका कोई सात हज़ार रुपया बैंक में जमा है, उसमें से अभी पाँच हज़ार की चेक लिख दें, बाक़ी इंतज़ाम करके दीजिएगा।"

मिस्टर वर्मा—"मैं बिलकुल ग़रीब हो जाऊँगा। अभी मुझे और भी काम करना है।"

मिस्टर विलसन—"यह मैं कुछ नहीं जानता। आपको दस हज़ार देना पड़ेगा, नहीं तो मैं यह मामला पुलिस में दे दूँगा।"

मिस्टर वर्मा—"देखिए, पुलिस में मामला देने से आप मेरा कुछ कर नहीं सकते। आपके पास कोई सुबूत नहीं कि मैंने केट की हत्या की है। इसके अतिरिक्त केट को मरे हुए कई महीने बीत गए। उसकी हड्डियों तक का पता नहीं है। तीसरे, आप ख़ुद पकड़े जायँगे जुर्म को इतने दिन छिपा रखने के लिये। चौथे, मैं ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हूँ, मेरे विरुद्ध मामला चलाने में सुबूत पक्के और बहुत होने चाहिए। पाँचवें, आपका यह व्यवहार साबित करता है कि आप भी पुलिस से डरते हैं, या दूसरे शब्दों में आप भी एक डाकू या चोर हैं। इँगलैंड से भागकर हिंदुस्थान में अपना स्वार्थ साधन करने आए हैं। हाँ, याद आया, आपकी सूरत इँगलैंड के मशहूर डाकू 'डिक' से मिलती है, शायद आप वही हैं। मैं आपको अभी गिरफ़्तार करके इँगलैंड की पुलिस के हाथों में दे सकता हूँ। इसलिये आपको उचित है कि आप अपनी माँग कम करें, नहीं तो मैं आपको एक पैसा भी नहीं दूँगा।"

मिस्टर विलसन का चेहरा तमतमाने लगा। वह बोले—"मिस्टर वर्मा, आपकी ये दलीलें एक भी नहीं चल सकतीं। मेरे पास पूरे और साफ़ सुबूत हैं कि आप केट के हत्याकारी हैं। मेरे साथ एक मेरा मित्र और था। दूसरे, मेरे पास सबसे बड़ा सुबूत है, उसको आप कभी काट नहीं सकते।"

मिस्टर वर्मा ने उत्सुकता से मिस्टर विलसन की ओर देखा।

मिस्टर विलसन—"यानी केट मरी नहीं, अभी जीवित है।"

मिस्टर वर्मा उछलकर विलसन के पास जा पहुँचे, और उनकी गर्दन पकड़कर कहा—"चुप बदमाश, केट मर गई।"

मिस्टर विलसन ने बड़ी धीरता से अपनी गर्दन छुड़ाकर कहा—"शांत होइए मिस्टर वर्मा! हाँ, केट ज़िंदा है। मैं उससे

मिल चुका हूँ। वह आपको खोज रही है। उसी रात में एक दूसरे जहाज़ ने उसकी रक्षा की।"

मिस्टर वर्मा ने भर्राए हुए स्वर से कहा—"केट कहाँ है ?"

मिस्टर विलसन—"यहीं भारत में है।"

मिस्टर वर्मा—"विलसन! मैं तुमको दस हज़ार रुपया दूँगा उस शर्त पर, जब तुम केट को वहीं पर भेज दो, जहाँ से वह जाते-जाते लौट आई है। डिक! तुमको यह काम करना पड़ेगा। मैं तुमको पंद्रह हज़ार दूँगा।"

विलसन नामधारी डिक ने कहा—"अच्छा, मैं तैयार हूँ, लेकिन अभी इसी वक़्त पाँच हज़ार दो।"

मिस्टर वर्मा—"लेकिन यह सुबूत दो कि केट अभी ज़िंदा है।"

विलसन ने जेब से एक फ़ोटो निकालकर दिखाया और कहा—"यह देखिए मिस्टर वर्मा, यही केट है। इस समय यह पुरी में धाय का काम करती है। इस चित्र में एक भारतीय, एक बालिका और केट खड़ी हुई है। समुद्र का किनारा है। केट और वह भारतीय दोनो खड़े हुए बातें कर रहे हैं। मैंने ख़ासकर तुम्हारे लिये यह 'स्नैप शाट' खींचा था। भारतीय को मैं नहीं जानता। लड़की का नाम लिज़ी है, और पुरी के मिस्टर उड की कन्या है। आप स्वयं जाकर दरियाफ़्त कर सकते हैं।"

मिस्टर वर्मा ने चित्र देखा। चित्र देखकर वह सहमकर पीछे हट गए। उन्होंने फिर चित्र देखा, और अब की ग़ौर से देखा। फिर पूछा—"डिक! यह भारतीय कौन है, जानते हो?"

डिक—"नहीं, मैं नहीं जानता। यह उन दिनों मिस्टर उड के यहाँ बहुत आता-जाता था। पहले मैंने यत्न किया था कि इसका कुछ पता लगावें, तो बस इतना मालूम हुआ कि यह एक प्रोफ़ेसर हैं, मिस्टर उड के लड़के को डूबते हुए बचाया था, तब से उड-

परिवार से इनका बड़ा मिलाप है। इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं जान पाया।"

मिस्टर वर्मा ने एक संतोष की निःश्वास खींचकर कहा—"हाँ, मुझे विश्वास हो गया कि केट अभी जीवित है। यह केट ही का चित्र है, लेकिन यह भी पता लगाना पड़ेगा कि केट ने इस भारतीय से तो यह भेद नहीं कहा।"

डिक ने उत्तर दिया—"मुझे विश्वास नहीं होता कि केट यह सब बातें कहेगी। वह तुम्हारी खोज में है। तुम होशियार रहना। क्या इस भारतीय को तुम जानते हो?"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, नहीं, मैं जानता नहीं, लेकिन वह मुझे जानता है।"

डिक—"तुम्हारे विरुद्ध सबसे बड़ा सुबूत है केट! उसको उठा देने से फिर कोई डर नहीं रह जायगा, लेकिन १९ हज़ार रुपया देना पड़ेगा।"

मिस्टर वर्मा—"हाँ, मैं १९ हज़ार रुपया दूँगा, तुम केट को साफ़ कर दो!"

डिक—"यह तो मेरे बाएँ हाथ का खेल है। इँगलैंड में ऐसे-ऐसे काम तो वहाँ के नौसिखिए लड़के किया करते हैं।"

मिस्टर वर्मा—मैं भी तुम्हें १९ हज़ार रुपया दे रहा हूँ, जो तुम्हारे देश के एक हज़ार पौंड से भी ज़्यादा हुए।"

डिक—"अभी इतना तो दो, फिर देखा जायगा। अब इंडिया छोड़कर कौन विलायत जाता है। यहाँ पर न पुलिस का डर है, और न लोगों का। पिस्तौल-बंदूक़ कोई हिंदुस्थानी रख ही नहीं सकता। यों ही गोरा चमड़ा देखकर सब डरते हैं। यहाँ पर सब चीज़ सस्ती है, और फिर सदा हरियाला देश है। बड़ी प्रसन्नता से और छिपकर बेधड़क अपना कारबार चला सकता हूँ। तुम-ऐसे

ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट मेरे दोस्तों में हैं। फिर सूखे देश इँगलैंड कौन जाय! मिस्टर वर्मा, मैं भारत को बहुत पसंद करता हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"नहीं डिक, तुम्हारा कारबार यहाँ नहीं चल सकता। भारत बड़ा ग़रीब देश है।"

डिक—"तुम्हारे लिये ग़रीब होगा, मेरे लिये तो बड़ा अमीर है। सेठों को ठग लेना बहुत सहल है। फिर यहाँ पर पता भी लगना मुश्किल है। मेरे व्यापार के लिये भारत से बढ़कर दूसरी जगह नहीं है। अच्छा, जल्दी से चेक लिख दीजिए।"

मिस्टर वर्मा ने मेज़ की दराज़ से चेक-बुक निकालकर ४,००० रुपए की चेक विलसन के नाम लिख दी।

विलसन नामधारी डिक ने मिस्टर वर्मा को अभिवादन किया और मुस्किराता हुआ निकल गया।

(२)

उड-परिवार में एक उदासीनता उस दिन से छा गई, जिस दिन से निर्मल ने वहाँ से विदा ली। बाबा और जान की बदमाशी से मिस्टर और मिसेज़ उड तंग आ गए। उन्होंने उन दोनो को बोर्डिंग भेजना ही उचित समझा। लिज़ी भी पढ़ने जायगी। बांबे में एक स्कूल से तय कर लेने के बाद यह निश्चय हुआ कि अगले सप्ताह दोनो बांबे चले जायँ। मिस्टर उड उनको ले जाकर वहाँ स्कूल के अधिकारियों को सौंप आएँगे।

संध्या हो चुकी थी। पुरी की स्त्रियाँ सांध्य प्रदीप जला चुकी थीं। आकाश उस दिन मेघाच्छन्न था। नील समुद्र और अंधकारमय प्रतीत होता था। मिस स्मिथ निर्निमेष दृष्टि से उसी काली सुंदरता को एकटक देख रही थीं। लिज़ी पास में खड़ी हुई थी।

लिज़ी ने मिस स्मिथ से कहा—"मिस स्मिथ, मिस्टर निर्मल नहीं आए।"

मिस स्मिथ अपनी ही चिंता में विलीन थी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

लिज़ी फिर कहने लगी—"मिस स्मिथ, मैं मिस्टर निर्मल को प्यार करती थी। क्यों, वह बड़े अच्छे आदमी थे कि नहीं? देखो, बाबा को उन्होंने बचाया, मुझे बाबा के हाथों से बचाया। वह भी मुझे प्यार करते थे।"

मिस स्मिथ ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया।

लिज़ी ने अब की बार मिस स्मिथ को हिलाकर कहा—"तुम क्या सोच रही हो मिस स्मिथ! मेरी बात क्यों नहीं सुनतीं?"

मिस स्मिथ ने जागकर कहा—"क्या कहती हो लिज़ी!"

लिज़ी—"मैं मिस्टर निर्मल के बारे में कह रही थी। उनकी कोई चिट्ठी आई है?"

मिस स्मिथ—"नहीं।"

लिज़ी—"मेरे पास तो आई है, मेरे लिये खिलौने भेजे हैं; तुमने देखे हैं मिस स्मिथ। उनकी चिट्ठी मैं पढ़ नहीं पाई। तुम पढ़ देना। मामा ने पढ़ा था। उसमें लिखते हैं कि मैं तुमको भूला नहीं हूँ। तुमसे मिलने के लिये जल्दी आऊँगा।"

मिस स्मिथ फिर ध्यान में मग्न हो गई थीं।

इसी समय एक अँगरेज़ ने आकर कहा—"गुड ईवनिंग मिस स्मिथ!"

मिस स्मिथ ने चौंककर देखा, सामने एक अपरिचित मनुष्य खड़ा था।

मिस स्मिथ—"माफ़ कीजिए, मैंने आपको पहचाना नहीं।"

अपरिचित—"मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ। आपका नाम यह असली नहीं है, असली नाम है केट ट्रैंसम।"

मिस स्मिथ ने चौंककर कहा—"आपने यह कैसे जाना?"

अपरिचित और कोई नहीं, विलसन नामधारी डिक था।

डिक ने कहा—"मैं आपका हाल उस समय से जानता हूँ, जब एक अँधेरी रात में मध्यसागर में आपके प्रेमिक ने आपको अथाह जल-राशि में ढकेल दिया था। आपकी जिस प्रकार रक्षा हुई; वह भी मुझे विदित है। आपको एक दूसरे जहाज़ ने उठाकर भारत पहुँचा दिया था। एक दिन बंबे की बाज़ार में घूमते हुए तुमको देखकर तब से तुम्हारे पीछे लगा हुआ हूँ। तुम मिस्टर उड के साथ यहाँ पर चली आईं, तब मैं भी तुम्हारे उस पुरुष की खोज में चला, जिसने तुम्हारे साथ ऐसा नीच व्यवहार किया था।"

मिस स्मिथ ने उत्कंठित स्वर से पूछा—"धन्यवाद मि......"

डिक ने कहा—"विलसन, जे० सी० विलसन।"

मिस स्मिथ—"धन्यवाद मिस्टर विलसन! इस विदेश में आप-सरीखा स्वदेशी बंधु पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। हाँ, उसका पता लगा। लेकिन आप उसको क्या जानें।"

डिक—"मैं उसे अच्छी तरह जानता हूँ, उससे मिल भी आया हूँ।"

मिस स्मिथ—"वह कहाँ है?"

डिक—"इलाहाबाद में ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट है, लेकिन मिस ट्रैसम, तुम उसके साथ क्या करोगी।"

मिस स्मिथ का चेहरा लाल हो उठा—"आप पूछते हैं कि मैं क्या करूँगी, सुनिए, उसको पुलिस में दूँगी।"

डिक—"लेकिन तुम्हारे पास सुबूत कहाँ है?"

मिस स्मिथ—"अभी तक सुबूत की ज़रूरत थी, लेकिन तुमने तो अपनी आँखों से वह घटना देखी थी, फिर दूसरे सुबूत की क्या ज़रूरत है?"

डिक—"लेकिन मैं तो उसके विरुद्ध गवाही नहीं दूँगा।"

मिस स्मिथ—"क्यों, उसके साथ तुम्हारी इतनी सहानुभूति क्यों है ?"

डिक—"सहानुभूति तो कुछ नहीं है, लेकिन ऐसा करने से मेरा लाभ ?"

मिस स्मिथ—"आपने जो मेरे पीछे इतनी तकलीफ़ उठाई है, उससे क्या लाभ पहुँचा ? मेरी समझ में आपने मनुष्य-धर्म समझकर ऐसा किया है।"

डिक—"हाँ, अभी तक तो ऐसा ही था, लेकिन अब लाभ हो सकता है।"

मिस स्मिथ—"कैसे, मैं तो तुमको एक पाई भी दे नहीं सकती, क्योंकि मेरे पास एक पैसा भी नहीं है। कल-परसों मुझे जवाब मिलनेवाला है।"

डिक—"तुमसे मैं एक पैसा भी नहीं चाहता। यदि ज़रूरत हो, तो सौ-दो सौ रुपए मैं तुम्हें दे सकता हूँ। मैं रुपया वसूल करूँगा उस बदमाश से, जिसने तुम्हारे साथ यह दग़ा की है।"

मिस स्मिथ—"कैसे ?"

डिक—"बहुत ही सहल रीति से। तुम उसे धमकी दो कि मैं तुम्हें पुलिस में देती हूँ, और कहो कि अगर वह लाख-दो लाख रुपया दे, तो मैं उसको छोड़ सकती हूँ। फिर हम-तुम दोनो हिस्सा बाँट कर लेंगे। इसके बाद सुख से जीवन व्यतीत करेंगे।"

मिस स्मिथ ने घृणा-पूर्ण दृष्टि से डिक की ओर देखा।

डिक—"क्यों, मेरा प्रस्ताव तुम्हारे पसंद आया ? इसमें कितना लाभ है। जन्म-भर मिस्टर वर्मा तुम्हारे हाथों की कठपुतली बनकर रहेंगे, और तुम्हें कभी भी रुपए की तकलीफ़ न होगी।"

मिस स्मिथ—"मिस्टर विलसन, मैं अपने को कुछ रुपयों के लोभ से बेच नहीं सकती। मेरे हृदय में प्रतिशोध की आग जल रही है।

वह तभी बुझेगी, जब मिस्टर वर्मा फाँसी पर लटकेंगे। मेरे प्रेम का यह प्रतिफल मिला है! मैंने उसे अपना हृदय तक भेंट कर दिया था। मैंने उसके लिये देश छोड़ा, बंधु छोड़े, उसके साथ बग़ैर किसी को सूचना दिए चल पड़ी थी। उसका यह बदला मिला! मैं उसको दिखला दूँगी कि अगर स्त्री प्रेम कर सकती है, तो बदला भी ले सकती है। वह अपना मूल्य भली भाँति जानती है। स्त्री यदि देवी है, तो समय पर राक्षसी भी हो सकती है। यदि स्त्री प्रेम करना जानती है, अपना सब कुछ अपने प्यारे के चरणों पर न्योछावर कर सकती है, तो वह सब भूलकर विषम प्रतिशोध भी ले सकती है! मिस्टर विलसन, मैं रुपया नहीं चाहती, मैं बदला चाहती हूँ।"

डिक ने कहा—"मिस ट्रैंसम, यह ठीक, बदला मैं भी चाहता हूँ। यह भी तो बदला है! उसको घुला-घुलाकर, डरा-डराकर सुख की नींद न सोने दो। यही बदला है।"

मिस स्मिथ—"मैं यह नीच काम नहीं कर सकती। और न उसका एक पैसा मैं ग्रहण करूँगी। मैं उससे घृणा करती हूँ। स्त्री जिसे घृणा की दृष्टि से देखती है, वह उसका एक पैसा भी नहीं ग्रहण कर सकती।"

डिक—"मिस ट्रैंसम, अभी आपकी बुद्धि ठिकाने नहीं है, आप उत्तेजित हैं। मैं किसी दूसरे समय मिलूँगा।"

यह कह मिस्टर विलसन चले गए। लिज़ी खड़ी हुई उन दोनो की बातें सुन रही थी।

उसने पूछा—"मिस स्मिथ, यह कौन आदमी था?"

मिस स्मिथ—"मैं नहीं जानती लिज़ी!"

लिज़ी—"वह तुम्हें मिस ट्रैंसम कहता था।"

मिस स्मिथ—"नहीं, हाँ, मेरे लड़कपन का नाम है मिस ट्रैंसम। लिज़ी, देखो यह बात किसी से कहना नहीं।"

लिज़ी—"अच्छा, मैं मामा से भी नहीं कहूँगी।"

मिस स्मिथ ने लिज़ी का मुख चूमकर कहा—"लिज़ी, तू बड़ी अच्छी लड़की है।"

लिज़ी ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम भी बड़ी अच्छी लड़की हो मिस स्मिथ!"

मिस स्मिथ ने आकाश की ओर देखकर कहा—"लिज़ी, बादल तो चले गए, आओ हम-तुम भी घर चलें।"

लिज़ी और मिस स्मिथ दोनो चले गए।

बँगले पहुँचकर मिसेज़ उड ने कहा—"मिस स्मिथ, यहाँ आना, तुमसे कुछ काम है।"

मिस स्मिथ मिसेज़ उड के साथ चली गई।

मिसेज़ उड ने सौ रुपए के दो नोट निकालकर मिस स्मिथ को देते हुए कहा—"मिस स्मिथ, यह लो अपना दो महीने का वेतन। कल मिस्टर उड तीनो लड़कों को ले जाकर बांबे जायँगे। कल से तुम्हारी ज़रूरत न रहेगी। तुम्हें छोड़ते हुए मुझे बड़ा अफ़सोस होता है, तुम तब तक यहीं रहो, जब तक तुम्हें दूसरी जगह काम न मिल जाय। मैंने तुमको बग़ैर किसी सिफ़ारिश के रक्खा था केवल तुम्हारा मुख देखकर। तुम वैसी निकलीं भी, यही बड़ी ख़ुशी की बात है।"

मिस स्मिथ ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"मिसेज़ उड, मैं आपका उपकार कभी नहीं भूल सकती। आपने एक अनाथिनी की विदेश में सहायता की है। मुझे छोड़ते हुए स्वयं दुख है, लेकिन क्या किया जाय।"

मिसेज़ उड—"जब कभी तुम्हें घर की ज़रूरत मालूम पड़े मिस स्मिथ, तुम निस्संकोच यहाँ चली आना। मैं तुम्हारी हमेशा मदद करूँगी।"

मिस स्मिथ अश्रु-पूर्ण नेत्रों से चली आई ।

अपने कमरे में पहुँचकर मिस स्मिथ बड़ी देर तक रोती रही । जब उसका आवेग शांत हुआ, तो उठकर, मुँह धोया । फिर उसके बाद अपनी चीज़ें एक छोटे-से बैग में बंद करने लगी । उसने एक लंबी साँस लेकर कहा—"चलो, यहाँ से भी छुटकारा मिला । अब बदला लेना है । मिस्टर वर्मा, मैं तुमको प्राणों से भी अधिक प्यार करती थी, मैंने तुमको सब कुछ भेंट कर दिया था देशी-विदेशी का विचार नहीं किया था, और तुमने उन सबका यह बदला दिया ! मैं तुम्हें दिखला दूँगी कि देखो, स्त्रियाँ यों बदला लिया करती हैं । अगर तुम उनके साथ विश्वासघात करोगे, तो वे तुम्हारे प्राणों को इस प्रकार ले लेंगी । वे अपना मूल्य जानती हैं । वे पुरुषों के विलास की सामग्री नहीं हैं । वे अगर प्राण देना जानती हैं, तो प्राण लेना भी जानती हैं ! देवदत्त ! तुम समझते होगे कि मैं अब निश्चित हो गया, मैं केट को समुद्र में फेंककर निश्चित हो गया हूँ, लेकिन वही केट ईश्वर की कृपा से जीवित है !

"तुमने उस अंधकारमय और तूफ़ानी रात में उतने ऊँचे से ढकेल दिया था ! मैं जानने भी न पाई थी, तुमने मौत को सौंप दिया, लेकिन मैं बच गई, यही तो आश्चर्य है ! मिस्टर वर्मा, मैं तुमको कुत्तों की मौत से मारूँगी । मेरा हृदय तब शांत होगा, जब तुम्हारे गले में फाँसी का फंदा झूलेगा । जब तुम मेरी ओर देखोगे और मैं हँसूँगी ।

"यह विलसन कौन है ? क्यों मेरे पीछे अब तक लगा है ? इसने शायद मिस्टर वर्मा से रुपया वसूल किया हो । शायद किया है, तभी तो मुझे यह रास्ता बतलाता है । मैं उसका एक पैसा स्वप्न में भी नहीं ले सकती । मैं उससे घृणा करती हूँ ।

"यहाँ से अब कहाँ जाना होगा । इलाहाबाद ही ठीक है ।

मिस्टर सिनहा का कोई पत्र नहीं आया। एक आया था, उसमें लिखा था कि वह हरद्वार में हैं। हरद्वार न-मालूम कहाँ है? इलाहाबाद में कहाँ ठहरूँगी। मुझे ज़्यादा दिन तो वहाँ रहना नहीं है। काम करके बस चल देना है। इस समय मेरे पास पाँच सौ रुपया है। बहुत है।

"पुलिस में केस देना ठीक न होगा। मैं ही बदला लूँगी। मैं ही उसे अपनी गोली का शिकार करूँगी। लेकिन इस तरह तो मैं पकड़ी जाऊँगी। मेरा मरना ही ठीक है। मैं अब भी उसको प्यार करती हूँ। उसके बग़ैर मेरा जीवन वृथा है। मैं उसको प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ, लेकिन तिस पर भी उसकी हत्या करूँगी। उसने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं उसका फल उसको दूँगी। मैं भी मर जाऊँगी, लेकिन उसको मारकर।

"मैं क्यों मरूँ? मैं नहीं मरूँगी। मैं उसे मारूँगी, लेकिन एक विदेशी के लिये अपने प्राण क्यों दूँ। मैं उसे प्यार नहीं करती, कौन कहता है कि मैं उसे प्यार करती हूँ। मैं घृणा करती हूँ, घृणा! मुझे उसके नाम से घृणा है। जहाँ घृणा है, वहाँ प्रेम नहीं हो सकता।

"मिस्टर सिनहा भी एक भारतीय हैं, मिस्टर वर्मा भी एक भारतीय हैं, लेकिन दोनो में कितना अंतर है। एक में सज्जनता कूट-कूटकर भरी हुई है, और एक में कुटिलता और विश्वासघात भरा हुआ है। मिस्टर सिनहा सज्जन हैं, और वर्मा बदमाश चालबाज़। न-मालूम क्यों, मैं उस पुरुष को प्यार करती हूँ... नहीं, करती थी। यही मुझे नहीं मालूम।"

केट सोचते-सोचते सो गई। स्वप्न में भी वही वर्मा की मूर्ति घूम रही थी। सवेरे उठकर केट ने अपना सामान फिर सँभाला और मिस्टर और मिसेज़ उड से विदा लेने चली गई।

मिसेज़ उड ने अपने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से विदा दी। लिज़ी तो मिस स्मिथ से चिपट गई। बड़ी मुश्किलों से छूटी।

मिसेज़ उड ने पूछा—"मिस स्मिथ, कहाँ जा रही हो?"

केट ने आँसुओं को पोंछते हुए कहा—"अभी निश्चय नहीं है।"

मिसेज़ उड—"फिर क्यों जाती हो? जब कहीं जगह मिल जाय, तब जाना।"

केट—"अभी-अभी मैं यू० पी० के किसी शहर में जाऊँगी, क्योंकि मुझे वहाँ कुछ काम है। बाद में काम की खोज करूँगी।"

मिसेज़ उड—"मैं तुम्हारा काम नहीं जानना चाहती, लेकिन देखो, सावधानी से रहना। अभी तुम्हारी उम्र कम है, सावधानी से रहना, अच्छा होगा।"

केट—"धन्यवाद, मैं बहुत सावधानी से रहूँगी। अच्छा, मैं चलती हूँ, आप अपनी चीज़ें सँभाल लें।"

मिसेज़ उड ने हँसकर कहा—"मिस स्मिथ, मैंने सब देख लिया।"

यह कहकर दोनो ने कर-मर्दन किया। केट ने लिज़ी का मुख चूमकर कहा—"लिज़ी, मुझको भूल मत जाना। मैं तुमसे मिलने आऊँगी।"

लिज़ी ने रोते-रोते कहा—"मिस स्मिथ, मैं तुमको नहीं भूलूँगी। तुम भी मिस्टर निर्मल की तरह मुझे पत्र लिखा करना। अब मैं पढ़ना सीख रही हूँ, मैं तुम्हारे पत्रों का जवाब दिया करूँगी।"

मिस स्मिथ ने फिर लिज़ी का मुख चूमकर कहा—"मैं ज़रूर तुमको लिखा करूँगी।"

केट अपना वेग लेकर बँगले के बाहर निकल पड़ी। सामने ही मिस्टर विलसन थे। मिस्टर विलसन ने अभिवादन किया, और कहा—"कहाँ मिस ट्रैंसम?"

केट ने रूमाल से आँखें पोंछकर कहा—"अपने लक्ष्य की ओर।"

डिक—"कहाँ, इलाहाबाद?"

केट ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ।"

डिक ने पास आकर कहा—"तुमने मेरे प्रस्ताव पर सोचा था ?"

केट ने घृणा-पूर्वक कहा—"हाँ, मुझे वह तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकार नहीं।"

डिक—"ठीक है, मैंने तुम्हें जाँचना चाहा था कि तुम्हारा मन कैसा है। मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।"

केट—"धन्यवाद ! मैं किसी की सहायता नहीं चाहती।"

डिक—"एक समय आवेगा, जब तुम सहायता चाहोगी।"

डिक भी केट ट्रैसम के साथ हो लिया।

(२)

सुख एक छलमय स्वप्न है। मरु-भूमि की मरीचिका है। सुख एक वह वस्तु है, जो सबको अपनी ओर खींचता है, लेकिन दूर-ही-दूर रखता है। अपनी छाया तक नहीं छुआता। संसार के सभी जीव सुखी होना चाहते हैं, लेकिन सुखी कोई नहीं होता। एक भूल करके यह सोचते हैं कि अगर यह भूल न की जाती, तो हम अवश्य सुखी होते, लेकिन कौन जानता है कि भूल न करके भी वही कठिनाइयाँ होतीं या उनसे भी अधिक! सुख एक स्वप्न है। सभी सुख का स्वप्न देखा करते हैं, लेकिन कर्मशील संसार में सुख की छाया तक नहीं है।

माधव बाबू के मन में सदैव एक-न-एक नई चिंता लगी रहती थी। वह कुमुदिनी को सुखी करना चाहते थे। वह दवा देना चाहते थे, लेकिन मर्ज़ न जानते थे। वह एक उस डॉक्टर की तरह दवा देना चाहते थे, जो प्रत्येक रोगी को, चाहे वह किसी मर्ज़ का हो, पहले एक ही दवा देता है और उसी से आराम करना चाहता है। अथवा उस डॉक्टर की तरह, जो मरीज़ को देखकर ही, बग़ैर 'सिपटम्स' देखे अपनी एक धारणा कर लेता है और दवा देकर सेहत का उम्मीदवार होता है।

माधव बाबू ने कुमुदिनी के रोग का निरूपण नहीं किया था। उसको देखकर ही अनुमान से काम लिया था। वह जानते थे कि कुमुदिनी इस विवाह से सुखी नहीं है। यह पहले उनकी धारणा-मात्र थी, लेकिन साल-भर बीत जाने पर भी कुमुदिनी ने जब कोई उत्सुकता, चिंता या उद्विग्नता ससुराल जाने की या ससुरालवालों के प्रति नहीं दिखलाई, तब उनकी धारणा विश्वास-रूप में बदल गई। अनुमान का अंतिम रूप विश्वास है।

जब माधव बाबू को यह विश्वास हो गया कि कुमुदिनी अपने ससुरालवालों से रुष्ट है, इतनी रुष्ट है कि वह भूलकर भी उनका नाम कभी नहीं लेती, तब कैसे उसे ससुराल भेज सकते थे। वह समझते थे कि ससुराल भेजना 'अपनी रानी को फाँसी पर लटकाना है!' उनकी समझ से तो निर्मल बाबू एक गँवार और दंभी मनुष्य थे। वह काँच और मणि का भेद नहीं जानते थे। वह पढ़े-लिखे गँवार थे। वह रानी के उपयुक्त स्वामी कभी नहीं हो सकते? उनके साथ विवाह करके यह बड़ी भारी भूल की थी। इस भूल का उपाय क्या था? निर्मल और कुमुदिनी का विवाह-विच्छेद करवा देना और कुमुदिनी का दूसरा विवाह! मन-ही-मन इस औषध को वह साल-भर से सोच रहे थे, लेकिन न-जाने क्यों उसको प्रयोग करने से हिचकते थे! मुरारी ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया। लेकिन उन्होंने अपना विचार छोड़ा नहीं। बल्कि वह और दृढ़ होते गए।

मिस्टर वर्मा का प्रभाव माधव बाबू पर बहुत था। उनकी मिस्टर वर्मा से उतनी ही प्रीति थी, जितनी पिता को प्यारे पुत्र से होती है। वह मिस्टर वर्मा के हरएक काम में, चाहे वह साधारण-से-साधारण क्यों न हो, एक विचित्रता, सादगी और बुद्धि-चमत्कार देखते थे। उनकी प्रशंसा वह मित्र-मंडली में खूब करते। हरएक

बात मिस्टर वर्मा के मनोनुकूल होने से उनके भी मनोनुकूल होगी। जिस ढंग से मिस्टर वर्मा कोई काम करते हैं, वही ढंग उस काम के करने का है, यदि कोई दूसरी रीति से करता है, तो वह ज़रूर ग़लती करता है। मिस्टर वर्मा ने अपनी लच्छेदार बातों से बूढ़े के ऊपर वह जादू की लकड़ी घुमा दी थी, जिससे माधव बाबू मोहित ही नहीं, बल्कि ग़ुलाम हो गए थे। मिस्टर वर्मा के व्यवहार से भी वह प्रसन्न थे। क्योंकि उनके सभी आचार-विचारों पर विलायती मोहर लगी थी। माधव बाबू को दृढ़ विश्वास था कि कोई भी विलायती वस्तु ख़राब हो ही नहीं सकती, और जो वहाँ जाकर रह आए, वह तो स्वर्ग से च्युत देवता की भाँति हैं। उनकी राय से मिस्टर वर्मा एक बड़े ही सज्जन, बड़े ही बुद्धिमान्, आचारों के देवता, सरलता के अवतार थे। माधव बाबू की नज़र में जो मिस्टर वर्मा की इज़्ज़त थी, वह मुरारी के लिये भी न थी।

संध्या-समय की चाय पीते हुए माधव बाबू ने कुमुदिनी से पूछा—"रानी, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ, तुम उसका ठीक-ठीक और सत्य उत्तर देना।"

कुमुदिनी ने प्रेम से पिता की ओर देखकर कहा—"बाबूजी, मैंने आपसे कभी कपट नहीं किया है। मा के बाद मैं आप ही को जानती हूँ।"

माधव बाबू का स्नेह उमड़ आया। कुमुदिनी की मा को याद करते ही उनके नीरस नेत्रों में दो आँसू भर आए।

उन्होंने बड़े स्नेह और ममत्व से कुमुदिनी का हाथ पकड़कर कहा—"रानी, तुम्हारी मा के मरने के बाद से मैंने तुमको अपने हृदय से लगाकर रक्खा है। रानी! मैंने एक दिन भी उनका अभाव तुम्हें खटकने नहीं दिया है। रानी, तुम उसकी बड़ी साध की लड़की थीं, वैसे ही मैंने भी तुम्हें रक्खा है।"

कुमुदिनी—"बाबूजी, वह मैं जानती हूँ।"

माधव बाबू—"रानी, तेरी ही चिंता रात-दिन सवार रहती है। तेरे ही कारण से मैं रात में सो नहीं सकता, दिन में किसी काम में मन नहीं लगता। एक साल-भर की छुट्टी ली थी, सोचा था कि इस बार बहुत दूर तक घूम आऊँगा, लेकिन इस समय कुछ नहीं अच्छा लगता। छुट्टी के छ महीने यों ही बीत गए। इस बार पहाड़ भी नहीं जा सका। मिस्टर माथुर ने बड़ा आग्रह किया, लेकिन मैंने साफ़-साफ़ इनकार कर दिया। रानी, बता तू क्या सुखी है?"

कुमुदिनी—"बाबूजी, मेरे संबंध में आप सोच-सोचकर क्यों अपना स्वास्थ्य ख़राब करते हैं। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मैं सुखी हूँ। इस दशा में अपने पिता की गोद में, मैं पूर्ण सुखी हूँ।"

माधव बाबू ने कुमुदिनी की ओर एक तीक्ष्ण दृष्टि से देखा, रानी ने अपना सिर झुका लिया।

माधव बाबू—"रानी, तू झूठ बोलती है।"

कुमुदिनी—"नहीं बाबूजी, मैं सत्य कहती हूँ कि मैं सुखी हूँ, जितनी आजकल सुखी हूँ, उतना कभी नहीं थी।"

माधव बाबू—"उस बेवक़ूफ़ निर्मल ने तो शायद तुझे एक पत्र तक नहीं लिखा है!"

कुमुदिनी का मुख लाल हो गया। उसने अपना मस्तक झुका लिया।

माधव बाबू—"मैं जहाँ तक समझता हूँ, शायद उसने तुमको चिट्ठी नहीं लिखी है?"

कुमुदिनी ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

माधव बाबू—"तुमको यहाँ भेजकर उसने तेरी ख़बर तक नहीं ली। एक बार बुलाने भी नहीं आया। न किसी को भेजा ही।"

कुमुदिनी चुप रही।

माधव बाबू—"रानी, मैं जानता हूँ कि तुम इस विवाह से सुखी नहीं हो। रानी, झूठ न बोल, तू सुखी नहीं है। तू अपने मित्रों के सामने अपना सिर गर्व से ऊँचा नहीं कर सकती। रानी, तू दुखी है।"

कुमुदिनी—"बाबूजी, मैं तुम्हें किस तरह विश्वास दिलाऊँ कि मैं दुखी ज़रा भी नहीं हूँ। मैं नहीं जानती कि क्यों मैं अपना सिर अपने दोस्तों के सामने नहीं उठा सकती। मैंने तो यह कभी अनुभव नहीं किया।"

माधव बाबू—"तू मुझसे अपना दुख छिपाती है रानी! अपने पिता को तू धोका नहीं दे सकती! मुझे विश्वास है कि तू दुखी है।"

कुमुदिनी—"नहीं बाबूजी, मैं फिर कहती हूँ, मैं दुखी नहीं हूँ।"

माधव बाबू—"अच्छा, तू पहाड़ चलेगी?"

कुमुदिनी—"नहीं, मेरी इच्छा बिलकुल नहीं है।"

माधव बाबू—(हँसकर) "रानी, तू आ गई गिरफ़्त में, पहले तू पहाड़ की रट लगा-लगाकर मुझे परेशान कर डालती थी, तू तब तक चैन नहीं लेती थी, जब तक मैं चलने के लिये तैयार न हो जाता था। लेकिन इस साल तूने पहाड़ का एक बार भी नाम न लिया, और पूछे जाने पर भी तू साफ़ इनकार करती है। रानी, दुखी मनुष्य को कुछ नहीं अच्छा लगता। न पहाड़ ही और न घर ही। रानी, इन दिनों तू बहुत ज़्यादा गंभीर हो गई है। हमेशा कुछ-न-कुछ सोचा करती है। न बायस्कोप, न थिएटर, न घूमने जाती है। किसी सखी-सहेलियों के यहाँ भी नहीं जाती, केवल चिंतित रहा करती है। यह क्यों? क्योंकि तू दुखी है?"

कुमुदिनी—(हँसकर) "क्या मैं हमेशा आठ वर्ष की ही बनी रहूँगी?"

माधव बाबू—"नहीं, लेकिन तेरी स्फूर्ति का तो पता ही नहीं मिलता। अगर तू आठ वर्ष की न बनी रहेगी, तो क्या अस्सी वर्ष की हो जायगी?"

कुमुदिनी—"बाबूजी, आप किसी बात की चिंता न कीजिए, मैं बहुत सुखी हूँ।"

माधव बाबू—"मिस्टर वर्मा मुझसे कई बार पूछ चुके हैं कि निर्मल यहाँ क्यों नहीं आता? मैं उनको क्या उत्तर दूँ?"

कुमुदिनी—"बाबूजी, यह मुझे पसंद नहीं कि एक बाहरी मनुष्य हमारे घरेलू मामलों में पूछ-ताँछ करे।"

माधव बाबू—"अरे, मिस्टर वर्मा बाहरी आदमी हैं! अपने ही घर के हैं। ऐसा मिलनसार, सरल प्रकृति का आदमी होना मुश्किल है!"

कुमुदिनी—"आपके लिये वह घर के आदमी होंगे, लेकिन मेरे लिये नहीं।"

माधव बाबू—"रानी, मिस्टर वर्मा पर तू इतनी रुष्ट क्यों है?"

कुमुदिनी—"मैं रुष्ट नहीं हूँ, लेकिन मैं यह उचित नहीं समझती कि मिस्टर वर्मा हमारे निजी घरेलू मामले में दस्तंदाज़ी करें।"

माधव बाबू—"उन्होंने कभी नहीं किसी मामले में दस्तंदाज़ी की है। वह बड़े सुशील और सज्जन हैं। पक्के रिफ़ॉरमर हैं। पूरे साधु हैं। शराफ़त का ख़ून उनकी नसों में बहता है। पुश्तैनी रईस हैं। बादशाह अकबर के ज़माने में इनके बुज़ुर्ग पंचहज़ारी मनसबदार थे, उनको वह मनसब मिला था, जो बादशाहों के लड़कों को मिला करता था। आजकल भी परमेश्वर की कृपा से पुराने जवाहरातों का ज़ख़ीरा हिंदुस्थान में सबसे बड़ा है। इतने बड़े रईस होकर भी उनमें अभिमान छू तक नहीं गया है। वह मेरी उतनी इज़्ज़त करते हैं, जितनी मुरारी भी नहीं करता। कोई बात बग़ैर मुझसे पूछे नहीं करते। रानी! तूने उनके बारे में पहले ही से मिथ्या धारणा कर ली है। वह सदा तेरे बारे में पूछा करते हैं।"

कुमुदिनी—"बाबूजी,............।"

कुमुदिनी और न कह सकी। शीघ्रता से कमरे के बाहर हो गई।

माधव बाबू स्थिर दृष्टि से दरवाज़े की ओर देखने लगे। उनका चेहरा गंभीर था और कुछ चिंतित। वह न जान सके कि क्यों कुमुदिनी इस तरह चली गई। माधव बाबू ने एक नौकर को बुलाकर कहा—"जा, रानी को यहाँ भेज दे।"

थोड़ी देर बाद रानी आकर पिता के सामने खड़ी हो गई।

माधव बाबू—"रानी, तेरा हाल-चाल कुछ समझ में नहीं आता?"

कुमुदिनी—"मैंने क्या किया।"

माधव बाबू—"अभी तू क्या कहते-कहते रुक गई, और इस तरह भाग क्यों गई?"

कुमुदिनी—"कुछ नहीं, मचली उठ रही थी। अब ठीक है।"

माधव बाबू—"देखो, मनुष्य के संबंध में पहले से धारणा कर लेना बड़ी भारी भूल है। जो ऐसा करते हैं, वे बड़ी भूल करते हैं। (माधव बाबू! आपमें तो यह दुर्गुण स्वयं मौजूद है, लेकिन मनुष्य अपनी कमज़ोरियाँ तो देखता ही नहीं।) मिस्टर वर्मा-ऐसा हितैषी, परोपकारी संसार में न मिलेगा।"

कुमुदिनी—"तो मैं क्या करूँ?"

माधव बाबू—"मैं वह बुरी धारणा दूर कर देना चाहता हूँ, जो उनके विरुद्ध तेरे मन में घुस गई है।"

कुमुदिनी—मेरे मन में कोई भी बुरी धारणा उनके प्रति नहीं है।"

माधव बाबू—"ज़रूर है। अभी उस दिन उन्होंने कितना आग्रह किया था कि सिनेमा देख आओ, लेकिन तुमने इनकार कर दिया। मुरारी और मैं भी तो साथ जा रहा था।"

कुमुदिनी—"मैंने आपसे कह दिया है कि पुरुषों के साथ घूमना

.. अच्छा लगता। फिर भाभी को छोड़कर मैं अकेले कैसे

कुमुदिनी-

बहुत - माधव बाबू—"यही तो मुश्किल है। तुम्हारी भाभी ही सबकी जड़ है।"

कुमुदिनी—"नहीं, भाभी को इन बातों मे क्या पड़ी है?"

माधव बाबू—"देखो रानी, मैं एक बड़ा उत्तरदायित्व-पूर्ण काम करनेवाला हूँ। मुमकिन है, हमें सब लोग हँसें, लेकिन तू न हँसना। वह काम तेरे लिये हितकर होगा, और मेरी एक बड़ी भारी भूल का प्रायश्चित्त होगा।"

कुमुदिनी माधव बाबू की ओर देखनी लगी।

माधव बाबू—"रानी, मैं जानता हूँ, तू सुखी नहीं है। मैं तुझे सुखी करना चाहता हूँ। मेरे जीवन का यही लक्ष्य है कि तुझे सुखी कर जाऊँ। तेरी मा ने तुझको मेरी गोदी में देते हुए कहा था—'देखो, मेरी रानी को कोई दुःख न पहुँचने पावे। मैं तो जाती हूँ, लेकिन अपने जिगर का टुकड़ा तुम्हें दिए जाती हूँ।' रानी, मैं सदा उसी बात को गाँठ में बाँधे रहा हूँ। मैंने तुझे कभी भी ज़रा-सी तकलीफ़ नहीं पहुँचने दी है। रानी, मैं तुझे सुखी करना चाहता हूँ।"

उसी समय कमरे के बाहर जूतों की आवाज़ मिली। पिता-पुत्री दोनो ने सिर घुमाकर देखा। सामने मुस्किराते हुए मिस्टर वर्मा चले आ रहे थे।

मिस्टर वर्मा को देखकर माधव बाबू की बाछें खिल गईं। वह एक मीठी मुस्कान से स्वागत करते हुए बोले—"आइए मिस्टर वर्मा, आप इन दिनों अचानक कहाँ चले गए थे?"

मिस्टर वर्मा ने एक तिरछी नज़र से कुमुदिनी की ओर देखा। कुमुदिनी की आँखों से ज्वाला निकलने लगी। कुमुदिनी धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गई।

मिस्टर वर्मा कनखियों से कुमुदिनी की मराल-गति को देख रहे थे।

(४)

मिस्टर वर्मा—"मैं एक आवश्यक कार्य से बाहर गया था। क्षमा कीजिएगा। काम इतना ज़रूरी था कि मैं आपसे मिल भी नहीं सका। इसीलिये इलाहाबाद पहुँचकर सबसे पहले आपसे मिलने आया हूँ।"

माधव बाबू—"धन्यवाद! लेकिन आप गए कहाँ थे?"

मिस्टर वर्मा—"यों ही ज़रा पुरी तक गया था।"

माधव बाबू—"एकदम से पुरी, इतनी दूर! वहाँ पर आपका कौन काम था?"

मिस्टर वर्मा—"वहाँ पर मेरे एक पुराने मित्र रहते हैं। जब मैं इँगलैंड में था, तो मेरी मित्रता उनसे हुई थी। तीन-चार रोज़ हुए उनका एक पत्र आया था कि मैं पुरी में ठहरा हुआ हूँ, और बीमार हूँ, तुमसे मिलना चाहता हूँ। यह ख़बर पाते ही मैं उसी दिन चल दिया। मुझे यहाँ तक अवकाश न मिला कि आपको ख़बर देता। क्या बताऊँ, यह कुछ मेरी कमज़ोरी है कि मैं किसी का दुःख देख नहीं सकता। किसी को बीमार या दुखी देखकर मेरे हृदय को कष्ट पहुँचता है।"

माधव बाबू—"यह कमज़ोरी नहीं है, बल्कि ईश्वर-दत्त एक बड़ा भारी गुण है। जिस मनुष्य में मनुष्य-जाति के प्रति सहानुभूति नहीं होती, मैं उसे मनुष्य कहने के लिये तैयार नहीं हूँ। पराए दुःख से दुखी सब लोग नहीं हुआ करते, कुछ ही लोग होते हैं, जिनके हृदय में ममता है, दया है, और सज्जनता है।"

मिस्टर वर्मा—"आप तो मुझे लज्जित करते हैं!"

माधव बाबू—"नहीं, मैं सत्य का पक्षपाती हूँ, सदा सत्य कहना

और सुनना पसंद करता हूँ। मैंने आपके विषय में सची ही बात कही है। आप उस मित्र से मिले थे?"

मिस्टर वर्मा—"कहाँ मिल पाया, वह एक रोज़ पहले ही वहाँ से चल दिए थे। लेकिन यह मुझे विश्वास हो गया है कि वही सज्जन थे...... ।"

माधव बाबू—"कौन ?"

मिस्टर वर्मा—"वही मेरे मित्र। देखिए, बात यह थी कि मैं इनको अभी तक मृत समझता था, लेकिन अचानक उस दिन उनका पत्र पाकर मैं ताज्जुब में आ गया कि यह कहाँ क़ब्र से निकल पड़े। मैं यह जाँचने के लिये कि यह वही हैं या दूसरे, या किसी ने भूल से या धोके से लिख मारा है, मैं पुरी गया था। वहाँ जाकर यह पता लगा कि वही थे, लेकिन उनसे मिल नहीं सका। वह मेरे पहुँचने के एक दिन पहले ही वहाँ से चल दिए थे।"

माधव बाबू—"मुझे दुःख है कि आप उनसे नहीं मिल पाए। यह तो मालूम ही होगा कि वह कहाँ गए हैं ?"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, यह नहीं मालूम हो सका। वह जहाँ ठहरे थे, वहाँ से बग़ैर कुछ अपना पता दिए ही चल दिए हैं, लेकिन इतना तो ज़रूर मालूम हुआ कि वह इसी तरफ़ आए हैं। शायद मुझी को ढूँढ़ने के लिये निकले हों।"

माधव बाबू—"यह बतलाइए पहले कि आप चाय पी चुके हैं या नहीं ?"

मिस्टर वर्मा—"अभी कहाँ, अभी-अभी तो मैं चला आ रहा हूँ।" बँगले तक तो गया नहीं। स्टेशन से सीधे यहाँ चला आ रहा हूँ।"

माधव बाबू—"अरे, आपने अभी तक चाय नहीं पी, और कहा भी नहीं। क्या यह दूसरा घर है? मिस्टर वर्मा, आप यह दूसरे का घर समझते हैं!"

मिस्टर वर्मा—"नहीं, मैं इसे अपना ही घर समझता हूँ।"

माधव बाबू ने सिर उठाकर कहा—"रानी, ज़रा चाय तो बना...। हैं, रानी कहाँ गई, अभी-अभी तो यहाँ थी !"

मिस्टर वर्मा—"वह तो उसी समय चली गईं, जब मैं आया था। क्या आपने ख़याल नहीं किया ?"

माधव बाबू—"नहीं, मैंने ध्यान नहीं दिया। मैं समझता था कि वह खड़ी है।"

मिस्टर वर्मा—"जी नहीं, वह चली गईं। न-मालूम क्यों वह मुझसे रुष्ट रहती हैं, इसीलिये मुझे अपने ऊपर बड़ा क्रोध आता है, लेकिन क्या करूँ।"

माधव बाबू—(हँसकर) "मिस्टर वर्मा आपका ख़याल ग़लत है, रानी आपसे रुष्ट नहीं रहती। वह आजकल कुछ उदासीन-सी रहती है।"

मिस्टर वर्मा—"उनके लिये मैं एक सौग़ात लाया हूँ, वह मेरी नहीं है, उनकी है, जिनके यहाँ मेरे मित्र ठहरे हुए थे। उनका नाम है मिस्टर उड। उनकी स्त्री मिसेज़ उड ने मिसेज़ सिनहा के लिये एक उपहार भेजा है।"

माधव बाबू—"वह रानी को क्या जानें ?"

मिस्टर वर्मा—"जानती हैं। एक बड़ी अच्छी ख़बर आपको सुनाना चाहता हूँ।"

माधव बाबू—"अभी ठहर जाइए, पहले आप कुछ थोड़ा जल-पान कर लें, तब मैं आपका क़िस्सा सुनूँगा।"

यह कहकर माधव बाबू स्वयं उठकर चले गए।

भीतर जाकर कुमुदिनी से कहा—"रानी, आजकल तू बड़ी बेतमीज़ होती जा रही है। मिस्टर वर्मा के आते ही तू चली क्यों आई ? तेरे इस व्यवहार से मिस्टर वर्मा बड़े दुखी हैं। वह कहते हैं कि न-

मालूम क्यों मिसेज़ सिनहा मुझसे रुष्ट रहती हैं। मैं तुमसे वार-वार कहता हूँ कि उनके साथ आदर का व्यवहार करो, लेकिन तुम सुनती नहीं। जाओ कुछ उनके जल-पान के लिये ले आओ। देखो, मैं कहे जाता हूँ, तुम्हीं लाना।"

कुमुदिनी—"मैं नहीं आ सकती, मेरे सिर में दर्द हो रहा है।"

माधव वावू—"नहीं, तुम्हीं लाकर दे जाओ। मैं यह वहाने सव जानता हूँ।"

इतना कहकर वह चले गए।

अभिमानिनी कुमुदिनी की आँखों में आँसू छलक आए। आज तक माधव वावू ने कुमुदिनी पर इतनी सख़्ती कभी नहीं की थी, यह पहला अवसर था। वह चारपाई पर पड़ी-पड़ी रोने लगी। एक वाहरी आदमी के पीछे यह अपमान कुमुदिनी के लिये असह्य था!

कुमुदिनी भी धुन की पक्की थी। उसने एक नौकर को वुलाकर कहा—"जा, एक तश्तरी में कुछ मिठाई भाभी से माँग ले, और वाहर दे आ।"

नौकर चला गया। उसने मिठाई की तश्तरी मिस्टर वर्मा के समाने रख दी।

माधव वावू यह रंग देखकर जल गए। उनकी दोनो आँखों से ज्वाला निकलने लगी। वह भी अपनी हुक्मउदूली न देख सकते थे। उन्होंने वहुत ही संयत भाव से कहा, लेकिन तव भी उसमें कठोरता का लवलेश था। वह वोले—"रानी क्या कर रही है?"

नौकर ने जवाव दिया—"वावूजी, वह लेटी हुई हैं।"

माधव वावू—"यहाँ भेज दे।"

मिस्टर वर्मा चुपचाप वैठे हुए सव देख रहे थे, और कुछ-कुछ समझ रहे थे। वह वोले—"रहने दीजिए, शायद उनकी तवीयत

ख़राब है। क्योंकि जब मैं यहाँ आया था, तो उनका चेहरा उतरा हुआ था। फ़िज़ूल में क्यों आप उन्हें कष्ट दे रहे हैं ?"

माधव बाबू—"अच्छा, जाओ।"

मिस्टर वर्मा—"क्या बात है ?"

माधव बाबू—(हँसकर) "कुछ नहीं, आप जल-पान करें।"

जल-पान कर लेने के बाद मिस्टर वर्मा ने कहा—"आप मेरा क़िस्सा न सुनिएगा ?"

माधव बाबू—"क्यों नहीं, मैं तैयार हूँ।"

इसी समय कुमुदिनी भी धीरे-धीरे कमरे के अंदर आकर माधव बाबू के पास खड़ी हो गई।

मिस्टर वर्मा—"मिसेज़ सिनहा, मालूम होता है, आप कुछ बीमार हैं ?"

कुमुदिनी—"धन्यवाद, मैं अच्छी हूँ।"

मिस्टर वर्मा—"तो बैठ जाइए, खड़ी क्यों हैं ?"

कुमुदिनी—"धन्यवाद, मैं बैठ जाऊँगी, आप कष्ट न कीजिए।"

माधव बाबू—"रानी, बैठ क्यों नहीं जाती। अभी-अभी तो तुम्हारा सिर दुखता था, फिर क्यों आई ?"

कुमुदिनी ने अपने को सँभालकर कहा—"ऐसे ही चली आई।"

माधव बाबू—"तो फिर बैठ जाओ।"

कुमुदिनी बैठ गई।

मिस्टर वर्मा—"यह अच्छा हुआ कि आप आ गईं, क्योंकि मैं मिस्टर सिनहा की ही बात कहनेवाला था।"

यह कहकर वह कुछ मुस्किराए।

माधव बाबू के मुख से बेतहाशा निकल पड़ा—"मिस्टर सिनहा की बात ! मैं समझा नहीं। आप तो अपनी कहानी कह रहे थे न !"

मिस्टर वर्मा ने कुमुदिनी की ओर देखा, कुमुदिनी के मुख का रंग बार-बार बदल रहा था।

मिस्टर वर्मा—"मेरी कहानी से उन्हीं का संबंध है। पहले मुझे इनके लिये भेंट, जो मैं लाया हूँ, दे लेने दीजिए, तब कहानी सुनने में और लुत्फ़ आएगा।"

भेंट सुनकर कुमुदिनी का मुख-मंडल लाल हो गया।

मिस्टर वर्मा ने अपनी जेब से मख़मल मढ़ी हुई टिपारी निकालकर कहा—"इसे मैंने अभी तक नहीं खोला है। मिसेज़ उड ने मिसेज़ सिनहा के लिये यह सौग़ात भेजी है।"

यह कहकर उन्होंने वह टिपारी कुमुदिनी के सामने रख दी।

माधव बाबू ने उसे खोलकर देखा। उसके भीतर एक जड़ाऊ अँगूठी रक्खी हुई थी।

हीरे की चमक से संध्या के श्यामल अंधकार में उज्ज्वलता आ गई।

माधव बाबू—"बड़ा क़ीमती हीरा मालूम होता है।"

मिस्टर वर्मा—"जी हाँ, यह सौ-पचास हीरों में एक है। मेरे यहाँ भी शायद ही ऐसा निकले।"

माधव बाबू—"वाक़ई, हीरा बड़ा क़ीमती है। कोई पाँच-छः हज़ार का मालूम होता है।"

मिस्टर वर्मा—"बल्कि उससे भी ज़्यादा, मेरा तो ख़याल है, दस हज़ार से कम का नहीं है।"

माधव बाबू—"इतना क़ीमती हीरा बग़ैर जान-पहचान के भेंट में भेज दिया!"

मिस्टर वर्मा—"जी हाँ, मिस्टर सिनहा ने जो उपकार उन लोगों के साथ किया है, उसके देखते हुए यह उपहार कोई चीज़ नहीं।"

माधव बाबू—"वह उपकार कौन-सा था, ज़रा मैं भी सुनूँ!"

मिस्टर वर्मा—"मैं कहता हूँ, ज़रा इन्हें यह अँगूठी पहना तो दें।"

माधव बाबू ने अँगूठी कुमुदिनी को दे दी।

कुमुदिनी ने अँगूठी टिपारी में रखकर कहा—"मैं इसे नहीं पहनूँगी, उन्हीं को वापस कर दूँगी। कल डाक से भेज दूँगी।"

मिस्टर वर्मा—"आप यह ग़ज़ब न कीजिएगा। उनको बड़ा दुःख होगा। उन्होंने बड़े प्रेम से आपके पास यह उपहार भेजा है। वे लोग कभी भी मिस्टर सिनहा से उऋण नहीं हो सकते।"

माधव बाबू—"हाँ, भेजने से फ़ायदा! इतना क़ीमती हीरा वापस कर देना मूर्खता है।"

कुमुदिनी ने घृणा-पूर्ण दृष्टि से अपने पिता की ओर देखा।

मिस्टर वर्मा—"हाँ, आप मेरी कहानी तो सुनिए, यह तो शायद आपको मालूम ही है कि मिस्टर सिनहा तीर्थ करने गए हैं।"

माधव बाबू—"हाँ, मैंने सुना था।"

मिस्टर वर्मा—"क्या यहाँ नहीं आए? मैं तो समझता था कि यहाँ से वह विदा ले गए होंगे।"

कुमुदिनी के लिये यह समय बड़े कष्ट का था। उसने अपना मुख दूसरी ओर कर लिया।

माधव बाबू—"नहीं, वह यहाँ नहीं आए, मैंने मिस्टर माथुर की ज़बानी सुना था।"

मिस्टर वर्मा—"अच्छा, वह तीर्थ करने गए हैं। हाँ, वह यहाँ से सीधे पुरी गए थे। वहाँ जाकर वह एक पंडे के यहाँ ठहरे और वहाँ से रोज़ संध्या-समय समुद्र का दृश्य देखने जाया करते थे। एक दिन वहाँ मिस्टर उड के दो लड़के और एक लड़की खेल रहे थे। वे दोनो खेलते-खेलते जल में पहुँच गए और डूबने ही वाले थे कि मिस्टर सिनहा ने अपने प्राणों पर खेलकर उन्हें बचाया था। मिस्टर उड उस उपकार को नहीं भूले। मिस्टर उड पहले ही से उनसे

मिलने को लालायित थे, क्योंकि मिस्टर सिनहा की लिखी हुई किताब पढ़कर वह बड़े प्रसन्न हो गए थे। मिस्टर उड ने कई दिनों तक उन्हें अपने यहाँ रक्खा। जाते समय उन्होंने बहुत कुछ देना चाहा, लेकिन उन्होंने स्वीकार न किया। जब मैं पहुँचा, और उनको यह मालूम हुआ कि मेरी आपसे मित्रता है, और मिसेज़ सिनहा भी यहीं हैं, तो उन्होंने मेरे हाथ इनके लिये यह उपहार भेजा है।"

माधव बाबू—"मिस्टर उड कौन हैं?"

मिस्टर वर्मा—"पुरी के एक बड़े भारी व्यवसायी हैं, बड़े अमीर आदमी हैं। सज्जन भी बड़े हैं। वह मिस्टर सिनहा की बड़ी तारीफ़ करते थे।"

मिस्टर वर्मा—"मिसेज़ सिनहा, अगर आप यह उपहार वापस कर देंगी, तो समझ लीजिए, उन्हें कितना कष्ट होगा!"

कुमुदिनी का मुख गर्व से तेजोन्मय हुआ जा रहा था। उसने सगर्व अपना मुख फिराकर कहा—"मैं इस उपहार को स्वीकार नहीं कर सकती, क्योंकि उनका इसमें कोई पत्र नहीं है, फिर मैं कैसे जानूँ कि यह उनका उपहार है।"

मिस्टर वर्मा—"पत्र देने की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। लेकिन आपको यह उचित नहीं कि आप यह उपहार वापस कर दें।"

कुमुदिनी—"एक अनजान से मैं उपहार तो नहीं स्वीकार कर सकती। मिस्टर वर्मा, मैं ऐसे-ऐसे हीरों पर लात मार सकती हूँ। आप ही यह उपहार लाए हैं, आप ही को मैं वापस करती हूँ। आप चाहे मिस्टर उड के पास भेज दें, और चाहे अपने पास रख लें।"

यह कहकर कुमुदिनी सगर्व कमरे से बाहर हो गई।

मिस्टर वर्मा—"लीजिए, मुझसे नाराज़ हो गईं! मेरी समझ से तो आप रख लीजिए। ऐसा क़ीमती हीरा वापस न करना चाहिए।"

माधव वाबू ने ललचाई हुई आँखों से हीरे को देखकर कहा—"रानी मूर्ख है। कोई मुफ़्त में ऐसा क़ीमती हीरा उपहार में नहीं दे देता। वापस करना तो अच्छा नहीं होगा। मैं ही रक्खे लेता हूँ। फिर उसे दे दूँगा।"

माधव वाबू ने वह अँगूठी अपने पास रख ली।

(५)

चपला ने चपल बालिकाओं की भाँति शांता की उँगली पकड़ते हुए कहा—"मा, चलो आज पहाड़ पर चढ़ आओ, तो तुम्हारी सब थकावट दूर हो जाय।"

शांता—"पगली कहीं की, और थक जाऊँगी कि थकावट दूर हो जायगी!"

चपला—"अच्छा, अगर थक जाओगी, तो मैं पैर दाब दूँगी।"

शांता—"नहीं-नहीं, रहने दो, बहुत ममता अच्छी नहीं होती। चपला, बूढ़ी के हृदय में ममत्व न पैदा करो।"

शांता ने यह वात बड़ी गंभीरता-पूर्वक कही थी।

चपला—"मैं तुम्हें छोड़ती कहाँ हूँ, इलाहाबाद में भी चलकर इसी तरह तुमको सताया करूँगी। अभी तुम मुझे जानती नहीं हो।"

चपला ने यह वात ऐसी भाव-भंगी से कही कि सबके चेहरे पर हँसी आ गई।

चपला की मा ने कहा—"देखो दीदी, अभी तक इसका लड़कपन दूर नहीं हुआ है। मैं तो बड़ी परेशान रहती हूँ इसके मारे। इन दिनों यह कुछ गंभीर हो चली थी, लेकिन यहाँ आकर फिर वैसी ही नटखट हो गई।"

मा-बाप की शिकायत में भी स्नेह का आभास मिलता है।

शांता—"ऐसी लड़की बड़े भाग्य से मिलती है बहन! मेरी करुणा भी ऐसी ही थी। चपला, तुम्हें करुणा की याद है?"

चपला—"हाँ, याद क्यों नहीं है। एक दिन मैं तुम्हारे यहाँ खेल रही थी, करुणा मिठाई लाकर खाने लगी। तुमने मुझे भी मिठाई दी। मैंने अपना हिस्सा झटपट खाकर करुणा का भी छीन लिया। करुणा मुझसे छीनने लगी। मैंने उसके वह चपत रसीद की कि वह रोती हुई तुम्हारे पास चली गई।"

यह कहकर चपला ख़ूब जी खोलकर हँसी।

शांता के मलीन चेहरे पर भी हँसी की रेखा दिखाई दी, लेकिन वह तुरंत ही अंतर्हित हो गई।

चपला—"करुणा और मुझमें बड़ी लड़ाई होती थी।"

चपला की मा—"तू हमेशा से लड़ाका रही है, क्या यह आज कुछ नई बात है?"

शांता—"बहन, मेरी करुणा भी इतनी ही बड़ी होती, अगर........."

शांता के मुख से वाक्य पूरा न हुआ। उसकी आँखों में आँसू भर आए।

चपला—"वाह मा, तुम रोती क्यों हो। करुणा न सही, चपला तो जीती है।"

यह कहकर चपला ने सप्रेम शांता के गले में, अबोध बालिका की भाँति, बाँह डाल दी। शांता ने चपला का मुख चूम लिया।

शांता—"क्या बताऊँ बहन, अगर नन्हे का विवाह न हो गया होता, तो मैं इसको अपने घर में रखती।"

शांता ने एक लंबी साँस ली, और चपला शर्म से लाल हो गई।

चपला की मा—"यही साध मेरे मन में भी थी दीदी, लेकिन क्या किया जाय। भगवान् की इच्छा।"

चपला ने शांता की गोद में अपना मुँह छिपाए हुए कहा—"मा, बोलो, पहाड़ पर नहीं चढ़ोगी? तुम्हारे न चढ़ने से मा भी नहीं चढ़ेगी, और मैं भी न चढ़ूँगी।"

शांता—"वाह! बूढ़ी को तकलीफ़ देने से फ़ायदा?"

चपला—"फ़ायदा कैसे नहीं, न चढ़ोगी, तो चपला को कैसे कोसोगी?"

चपला की मा ने हँसकर कहा—"दीदी, यह मानेगी नहीं, तुम चाहे जितना कहो। जिस बात पर अड़ जाती है, अड़ी ही रहती है। इसकी ज़िद से तो मेरे नाकों प्राण आ गए हैं।"

शांता—"लेकिन बहन, मर्दों के बीच में मुझे नहीं अच्छा लगता। जन्म-भर से तो परदे में रही हूँ, अब बुढ़ापे में यह शौक़ नहीं अच्छा लगता।"

चपला—"तो मैं कब कहती हूँ कि मर्दों के बीच में जाओ। कल सुबह चढ़ेंगे, और आठ बजते-बजते घर में हो रहे होंगे। छ बजे कोई नहीं घूमने जाता।"

शांता—"लेकिन सर्दी तो पड़ती है। सर्दी में हाथ-पैर काँपेंगे, चढ़ा कैसे जायगा?"

चपला—"यह मैं कुछ नहीं जानती। तुमको मेरे साथ चलना ही होगा। और, अगर न चलोगी, तो घसीट ले चलूँगी, या उठाकर कंधे पर रख लूँगी।"

निर्मल ने आकर कहा—"क्या बात है मा?"

चपला की मा पहलेपहल निर्मल से लज्जा करती थी, लेकिन एक साथ रहते-रहते वह भाव दूर हो गया था। उन्होंने कहा—"कुछ नहीं, चपला ज़िद कर रही है कि कल पहाड़ पर चढ़ो। भला तुम्हीं बताओ, हम लोगों की उम्र पहाड़ चढ़ने के क़ाबिल है। दीदी बूढ़ी और मैं भी। नन्हे! तुमने चपला को पढ़ाया तो, लेकिन उसकी ज़िद नहीं दूर कर पाए।"

निर्मल—"चलो न कल पहाड़ पर चढ़ें, ठीक तो है। चपला ठीक ही बात कहती है। तुम सब चलो। न चलोगी, तो हम दोनो घसीट ले जायँगे, या कंधे पर उठा ले जायँगे, क्यों चपला?"

न-मालूम क्यों चपला का मुख लज्जा से लाल हुआ जा रहा था। उसने अपना मुख नत किए हुए ही उत्तर दिया—"हाँ।"

चपला की मा—"लो, यह भी ठीक हुआ, अंधे के भाई काने। अभी तक तो एक ही से पिंड छुटाना आफ़त था, अब दो-दो हैं। दीदी, अब प्राण नहीं बचेंगे। चलो, अब तो चलना ही पड़ेगा।"

शांता—"अब तो कुछ ऐसा ही जान पड़ता है।"

चपला—"देखिए, आपके आते ही सब मामला तय हो गया, सब कोई राज़ी हो गया। मैं घंटों से कह रही थी, लेकिन चलने का नाम न ले रही थीं।"

निर्मल—"और कौन जायगा?"

चपला—"बाबूजी और मिस बैनरजी।"

शांता—"मिस बैनरजी को तो ले लो, लेकिन उनको नहीं। अगर वह जायँगे, तो मैं न जाऊँगी।"

चपला की मा—"हाँ, उनको साथ में न ले चलना, नहीं तो कुछ देखने में न आएगा।"

निर्मल—"अच्छा, मिस्टर माथुर को न ले जायँगे, क्योंकि प्रेसिडेंट और वाइस-प्रेसिडेंट, दोनो ही उनके विरुद्ध हैं।"

चपला ख़ूब हँसी।

चपला—"अगर बाबूजी यह बात सुन पाएँगे, तो वह ज़रूर साथ जायँगे, किसी तरह भी न मानेंगे। अगर साथ न जायँगे, तो पीछे आ जायँगे।"

चपला की मा—"देख चपला, उनसे कुछ न कहना। हम उनको

ख़बर ही न होने देंगे, और चल देंगे। सुबह उठकर जब किसी को न देखेंगे, तो बड़े घबराएँगे। बड़ा मज़ा आएगा।"

चपला—"तो बाबूजी ऐसे भोंदू थोड़े ही हैं। वह तुरंत वहाँ पहुँच जायँगे।"

चपला की मा—"कैसे जानेंगे कि हम लोग किस तरफ़ गए हैं? जब वह ढूँढ़ने निकलेंगे, तब हम लोग घर आ जायँगे।"

निर्मल—"चपला, मिस बैनरजी को निमंत्रण देना होगा।"

चपला—"मैं भी जाती हूँ। आज शाम को 'रतनपुर' की राजकुमारी और गवर्नर की लड़की से मेरा टेनिस-मैच है। आइएगा?"

निर्मल—"हाँ, मैं आऊँगा।"

पहाड़ पर चलना कल के लिये निश्चित हुआ।

चपला मिस बैनरजी के यहाँ चली गई।

चपला के चले जाने के बाद सन्नाटा छा गया। शांता का मुख गंभीर और विषाद-पूर्ण हो गया। निर्मल का भी उत्साह नष्ट हो गया, और चपला की मा मा-बेटों का मुख देखने लगी। मालूम होता था कि चपला ही इस मंडली की प्राण थी। जिस प्रकार प्राण-वायु निकल जाने पर मुख की आकृति बदल जाती है, और आँखें निस्तेज हो जाती हैं, उसी प्रकार चपला के चले जाने के बाद भी मंडली में उदासीनता और शांति छा गई।

निर्मल को मंसूरी में रहते हुए दो हफ़्ते के लगभग हो चुका है। निर्मल पुरी से वाराणसी, और फिर हरद्वार में आकर ठहरे ही थे कि मिस्टर माथुर सपरिवार हरद्वार पहुँच गए। निर्मल ने बहुत हठ किया कि वह हरद्वार में ही रहेंगे, मंसूरी न जायँगे, लेकिन माथुर-परिवार ने नहीं माना। हारकर निर्मल को उनके साथ मंसूरी जाना पड़ा।

चपला ने जिस दिन से इलाहाबाद छोड़ा, उसी दिन से उसकी

गई हुई सारी चपलता फिर वापस आ गई। वही शिशु-सदृश सरल हास्य-श्री मुख पर नृत्य करने लगी। मंडलीकृत कपोलों में लालिमा छा गई, आँखें प्रकाश से चमक उठीं, और सूखे हुए ओठों में रस आ गया !

विषाद-पूर्ण मुख-मंडल सुश्रीवान् और तेजोन्मय हो गया। ग्रहण की घड़ी कट गई थी, उग्रह आरंभ हो गया था, और हरद्वार पहुँचकर चंद्र-वदन सोलहो कला से प्रकाशमान हो उठा। सभी लोग हैरान थे कि चपला के स्वभाव में इतना घोर परिवर्तन क्यों हो गया।

शांता को भी माथुर-परिवार से मिलकर शांति मिली। उन्हें कोई ऐसा तो मिला, जिससे वह अपना दुःख-सुख कह तो सकती थीं। मनोवेग जब किसी के सामने प्रकट कर दिया जाता है, तो हृदय शांत हो जाता है, नहीं तो वह सदा कुढ़ाया और जलाया करता है। विदेश में जिनसे जान-पहचान भी नहीं है, वह भी मित्र हो जाते हैं; और जिनके साथ मिलने से, बात करने से इज़्ज़त चली जाती है, वे ही विदेश में सुहृद् और प्रियतम बंधु हो जाते हैं ! दुःख में मनुष्य अपना साथी ढूँढ़ता है, जिससे वह कम-से-कम अपना दुःख तो कह सके। सहानुभूति मनुष्य की अपनी संपत्ति है।

निर्मल का गंभीर मुख अब कुछ प्रफुल्ल रहने लगा। वह भी हास-परिहास, विनोद आदि में भाग लेने लगे। लेकिन इतना करते हुए भी उनके साथ-साथ छाया की भाँति विषाद और चिंता घूमा करती थी। जहाँ वह अकेले हुए कि उन दोनो ने उन पर आक्रमण करना शुरू किया। कभी कुमुदिनी, कभी लिज़ी, कभी मिसेज़ उड, कभी मिस स्मिथ और कभी अगाध-अनंत, सुनील ऊर्मि-विलोलित पुरी का समुद्र-दृश्य !

मिस्टर माथुर हर हालत में ख़ुश रहनेवाले आदमी थे। उनके लिये जैसे इलाहाबाद, वैसे मंसूरी। लेकिन मंसूरी आकर उन्हें

एक बात की अवश्य प्रसन्नता हुई, वह यह कि उनकी चपला का स्वास्थ्य सुधर गया, और वह समझने लगे कि शायद उसे 'देश-सेवा' की छूत-बीमारी से मंसूरी में छुटकारा मिल जायगा। जिस भाँति कोई वैद्य अपनी बनाई हुई एक नई औषध किसी रोगी पर आज़माता है, और उसमें धीरे-धीरे फ़ायदा देखता है, तो उसको जो प्रसन्नता होती है, वही प्रसन्नता इस समय मिस्टर माथुर को थी। चपला का विषाद-गांभीर्य दूर हो गया था, चपलता और हँसी, जो चपला का भूषण था, वही आ गया था। मिस्टर माथुर मंसूरी में अधिक प्रसन्न थे।

चपला की मा का नाम था राजेश्वरी। वह बड़ी ही सहृदया रमणी थीं। शांता से वह पहले मिल चुकी थीं, लेकिन यह वर्षों की बात है। परंतु तो भी दोनो की मित्रता कम न हुई थी। देखते ही फिर दोनो को अपने यौवन-काल की मित्रता का ध्यान हो आया। वे दोनो हँसीं, और हँसकर फिर एक दूसरे को देखने लगीं। उस एक छोटी-सी हँसी में सुदीर्घ ग्यारह वर्ष की सारी कथा भरी हुई थी। दोनो ने एक दूसरे से अपनी व्यथाएँ कहीं, और दोनो ने एक दूसरे को सहानुभूति-वचनों से धैर्य दिया। चपला शांता की आँखों की तारा हो गई, और वह दिन-पर-दिन उसकी ओर आकृष्ट होने लगीं। मिस्टर माथुर के पुत्र श्रीकृष्णचंद्र पिता के साथ मंसूरी न आए थे। वह कश्मीर घूमने निकले थे। मिस्टर माथुर ने मंसूरी में एक बँगला किराए पर लिया। मकान बड़ा था। निर्मल को भी साथ ही रहने के लिये कहा। पहले तो निर्मल ने इनकार किया, लेकिन शांता की बड़ी इच्छा थी कि वह राजेश्वरी का साथ न छोड़े। शांता के अनुरोध से, मिस्टर माथुर की ज़िद से और चपला के मौन नियंत्रण से निर्मल को माथुर-परिवार के साथ ही रहना पड़ा।

(६)

दूसरे दिन सवेरे ही उठकर मिस्टर माथुर को छोड़, सब लोग पहाड़ पर चढ़ने के लिये चल दिए। मिस्टर माथुर को नर्सीम-सहरी के झोंके सुला रहे थे। उनको ख़बर ही न थी कि कब, और कौन कहाँ गया। चपला आदि सबों ने इतनी सतर्कता अवलंबन की थी कि मिस्टर माथुर को ज़रा भी अनुमान न होने पाया था कि वे कल कहाँ जायँगे।

प्रातःकाल था। एक हलकी धुँधली छाई हुई थी। चारो तरफ़ भूधर-शृंग धवल किरीट से सुसज्जित, सगर्व मस्तक उन्नत किए, सूर्य भगवान् की अगवानी के लिये खड़े थे! पूर्व दिशा से धीरे-धीरे एक लाल रेखा प्रकट हो रही थी। वह धवल किरीट पर पड़कर बतला रही थी कि यह बर्फ़ नहीं, हीरों का किरीट है। पक्षियों के गान के समक्ष नफ़ीरी की भैरवी लज्जित होती थी। मस्त झूलती हुई प्रातः-समीर मृत जीवन में नव-जीवन पैदा कर रही थी। चपला, निर्मल, शांता, राजेश्वरी और निर्मल का नौकर हरखू, सब दृश्यों से मनोमुग्ध होते हुए चले जा रहे थे।

चपला ने शांता से कहा—"मा, बताओ भला घर में बैठे-बैठे यह आनंद तुमको मिलता?"

शांता—"वाह, क्या आनंद है, मारे सर्दी के चलना दूभर हो रहा है, तुम्हें क्या, तुम तो ख़ूब कपड़ों से मढ़ी हो।"

चपला—(हँसकर) "मैंने तो कहा था कि आप मेरे कपड़े पहन लें, आपने लिए ही नहीं, अम्मा भी सिकुड़ी जाती हैं। और न कपड़े पहनो!"

राजेश्वरी—"चपला, तुझे हँसी सूझ रही है, और यहाँ पैर सुन्न हुए जा रहे हैं।"

चपला—"जूते क्यों नहीं पहने! जूते पहनना, कपड़े पहनना

ईसाइयाना, क्रिस्तानी है। हाँ, और यों सिकुड़ना और काँपना हिंदूपन है! मिस्टर सिनहा, आपने देखा!"

निर्मल—"जैसा करती हैं, वैसा ही फल भी तो मिलता है। अम्मा तो कभी जूता न पहनेंगी, चाहे भुलभुल से पैर जल जायँ, चाहे बरफ़ से पैर गल जायँ। क्या जूता पहन लेने से हिंदूपन चला जाता है?"

चपला—"आप ही पूछिए। मैं तो हार गई, अम्मा तो जूता पहन भी लेती थीं, लेकिन माजी की देखा-देखी, उन्होंने भी नहीं पहना।"

निर्मल—"अगर वह पहनतीं, तो शायद अम्मा भी पहन लेतीं।"

चपला"—देखिए, कितना सुंदर दृश्य है, जो दृश्य आज तक चित्रों में देखा करती थी, वह आज प्रत्यक्ष देख रही हूँ। सत्य ही प्रकृति बड़ी सुंदरी है।"

निर्मल—"इसीलिये हमारे वेदांतियों ने प्रकृति को लीलामयी कहा है, और ईश्वर को लीलामय। इसे लीलामयी इसलिये कहा है कि प्रकृति नित्य अपने दृश्य बदलती है। जो दृश्य आज तुम देख रही हो, वह दृश्य तुम कल न देख सकोगी। एक दूसरा ही दृश्य देखोगी। यह बात नहीं कि सूर्य कल दूसरी तरह उदय होगा, और वह दूसरी तरह से संसार को आलोकित करेगा, बल्कि सूर्य उसी तरह उदय होगा, लेकिन दृश्य में कुछ अंतर आ जायगा। यह संभव है कि यह हलका धूम-सा जो तुम देख रही हो, वह कल हो ही नहीं, या उससे भी गाढ़ हो! अणु-मात्र अंतर होने से दृश्य बदल जायगा।"

चपला—"प्रकृति की सुंदरता देखकर न-मालूम क्यों यह मन ईश्वर की ओर आकर्षित होता है। जैसे अजगर की आँखें देखकर उसी ओर जाने का मन होता है, उसी प्रकार प्रकृति-सौंदर्य के

निरीक्षण से हृदय में भक्ति और प्रेम का संचार होता है। यह क्यों ?"

निर्मल—"चपला, यह तो बड़ी सहल-सी बात है, एक सुंदर भवन देखकर तुम्हारे मन में यह प्रश्न पैदा होता है कि इसका बनानेवाला कौन था ? जब तक तुम जान नहीं लेती हो, तुम्हें कल नहीं पड़ती। उसका नाम जानकर उससे मिलने की इच्छा करती हो, उसके बाद जब देखती हो कि उससे मिल नहीं सकतीं, तब उसके संबंध में अनेक तर्क-वितर्क करती हो। उसी प्रकार प्रकृति ईश्वर की सबसे सुंदर कारीगरी है। इस सुविशाल और मनोहर प्रकृति-भवन के बनानेवाले की ओर अगर तुम्हारा ध्यान जाता है, तो कौन आश्चर्य !"

चपला—"अच्छा, प्रेम और भक्ति में क्या अंतर है ?"

निर्मल—"प्रेम का अंतिम रूप भक्ति है। पहले मनुष्य किसी ओर आकर्षित होता है, वह शुद्ध आकर्षण है, आकर्षण मोह में बदलता है, मोह अनुराग में, अनुराग प्रेम में और प्रेम भक्ति में। भक्ति में पाप नहीं होता, संदेह नहीं होता, वासना नहीं होती। केवल असीम, अखंड, निःस्वार्थ प्रेम होता है।"

शांता ने एक शिला-खंड पर बैठते हुए कहा—"भाई, अब तो मुझसे नहीं चला जाता। अगर मैं ऐसा जानती, तो कभी न आती।"

निर्मल ने शांता के पास बैठकर कहा—"क्या हुआ मा, क्या कंकड़ लग गया ?"

शांता—"तुम लोगों को तो अपनी ज़िद से काम। कुछ भी लग गया हो, तुमसे मतलब ?"

चपला—"अच्छा आओ, तुम्हें गोद में ले लें।"

शांता—"रहने दो, तुम्हारे गोद लेने से मैं स्वर्ग जाऊँगी न! बहन, यहाँ थोड़ी देर बैठ जाओ।"

राजेश्वरी—(बैठकर) "दीदी, क्या थक गईं ?"

चपला—"हाँ, थक गई ! जब इनकी-सी उम्र मेरी थी, मैं तब भी सात कोस तक बराबर चली जाती थी। अरे राम ! जब लड़कपन में यह हाल है, तब बुढ़ापा कैसे पार होगा ?"

चपला की बात से सबके चेहरे पर हँसी आ गई।

शांता ने हँसते हुए पूछा—"क्यों चपला, तुम्हारी क्या उम्र है ?"

चपला—"अभी-अभी इसी महीने से मैं ११८ वर्ष की हुई हूँ।"

राजेश्वरी—"चुप रह पगली! दीदी को क्यों तंग करती है। अरे! जब इनकी उमरों को तुम लोग पहुँचोगे, तो बिस्तर से उठा तक न जायगा।"

निर्मल—"ना, अब तो उठना चाहिए, क्योंकि जहाँ धूप निकल आई, गरमी पड़ने लगी, फिर सब मज़ा किरकिरा हो जायगा।"

शांता—"तुम लोगों के मारे प्राण न बचेंगे। चलो।"

मंडली फिर चली। अभी तक पहाड़ पर चढ़ाई आरंभ न हुई थी। एक छोटी-सी पहाड़ी के नीचे पहुँचकर चपला ने कहा—"इस पहाड़ी पर चढ़ना चाहिए।"

निर्मल—"यह तो बहुत छोटी है। उस पर चढ़ेंगे।"

चपला—"मा को कष्ट होता है। यह भी काफ़ी ऊँची है। इसके ऊपर से भी दृश्य अच्छा दिखाई देगा।"

पहाड़ पर चढ़ाई शुरू हुई। शांता और राजेश्वरी ने बड़ी आपत्ति की, लेकिन उनको चढ़ना ही पड़ा। शांता की देख-रेख के लिये साथ में हरखू था। पहाड़ी पर चढ़ने के लिये रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा था। छोटे-छोटे पौधे पत्थरों की ओट में निकल रहे थे और वे अधिक न पनपकर बौने रहकर ही संसार में अपने जीवन की अवधि काट रहे थे। सूर्य भगवान् क्षितिज को नाँघकर आकाश-प्रांगण में अवतीर्ण हो आए थे। सूर्य की किरणों में प्रखरता नहीं थी, बल्कि वे सुखद थीं।

चपला वड़ी क्षिप्र गति से चढ़ रही थी। उत्साह उसके अंग-प्रत्यंग से टपका पड़ता था। निर्मल उसके पीछे थे। शांता और राजेश्वरी सबके अंत में। चपला ने ऊपर पहुँचकर कहा—"वह देखिए, हम लोगों का घर दिखाई देता है।"

निर्मल—"दिखलाई पड़ता है, अच्छा, देखो कोई दरवाज़े पर है?"

चपला ने दूरवीन लगाकर कहा—"वावूजी उठे हैं। वार-वार वाहर से भीतर और भीतर से वाहर आते हैं। भगुआ खड़ा हुआ है।"

निर्मल ने जल्दी-जल्दी चपला के पास पहुँचकर कहा—"अच्छा, लाओ मैं भी देखूँ।"

चपला ने निर्मल को दूरवीन दे दी।

चपला—"अम्मा, जल्दी आओ, देखो आकर, वावूजी कैसे परेशान हो रहे हैं।"

राजेश्वरी और शांता भी जल्दी-जल्दी चढ़ने लगीं।

निर्मल ने देखकर कहा—"मिस्टर माथुर अब कुर्सी पर बैठे हुए सिगार पी रहे हैं। चपला, चाय वनाकर नहीं रख आई हो?"

चपला—"वनाकर रख आने से ख़राव न जाती। भगुआ से कह आई थी कि वावूजी से यह न कहना कि हम लोग कव और कहाँ गई हैं, लेकिन उनके लिये सवेरे चाय और केक दे देना।"

निर्मल—"तव शायद उसी लिये उसे डाट रहे हैं। भगुआ स्टोव पर पानी खौला रहा है, और वह उससे कुछ पूछ-से रहे हैं।"

राजेश्वरी ने पहुँचकर कहा—"ज़रा मैं भी देखूँगी।"

चपला की मा देखने लगीं। देखते-देखते वह हँसने लगीं।

चपला—"क्यों, क्या वात है मा। हँस क्यों रही हो?"

राजेश्वरी—"देखो, वह कोट पहन रहे हैं। भगुआ शायद कहता है कि चाय पिए जाइए, लेकिन वह कुछ सुनते नहीं हैं। वह चल दिए।"

चपला ने अपनी मा के हाथों से दूरबीन छीन ली। देखकर बोली—"बाबूजी उत्तर की तरफ़ जा रहे हैं, इस तरफ़ नहीं आ रहे हैं। उन्हें हमारा पता नहीं लग सकता।"

शांता—"तुम सब उन्हें तंग करके हँस रही हो। वाह, वह भी इसका बड़ा बेढब बदला लेंगे, याद रखना।"

राजेश्वरी—"तो अब हम लोगों को चलना चाहिए, जिसमें उनके आने से पहले ही घर पहुँच जायँ।"

चपला—"अभी घर नहीं चलेंगे। अभी उस पहाड़ी पर भी तो चढ़ेंगे। देखो, यहाँ से मंसूरी कैसा देख पड़ता है। कहीं-कहीं से धुआँ निकल रहा है, कहीं आग की लपट निकल रही है। हम लोग मानो हवाई जहाज़ से यह दृश्य देख रहे हैं!"

निर्मल—"मेरा तो जी यही होता है कि आज दिन-भर यहीं रहूँ।"

शांता—"तुम रहो, तुम्हें तो जंगल अच्छा ही लगता है।"

चपला—"मेरा मन भी होता है कि मैं भी यहीं रहूँ।"

राजेश्वरी—"तुम तो नन्हे से भी एक हाथ बढ़कर ही हो, घटकर नहीं। आओ दीदी, हम-तुम चलें।"

शांता और राजेश्वरी चलने को तैयार हुईं।

निर्मल—"मा, अच्छा, थोड़ी देर ठहर जाओ। इस हवा का आनंद घर में कहाँ। हम लोग भी चलेंगे, थोड़ी देर ठहर जाओ।"

चपला दूरबीन लगाए देख रही थी। उसने कहा—"मा, बाबूजी फिर घर आ गए। भीतर चले गए हैं। अब लौट आए, और बेंत लेकर इसी तरफ़ आ रहे हैं। अरे, ग़ज़ब हुआ, वह भी दूरबीन से देख रहे हैं।"

राजेश्वरी—"लो, सब गुड़ गोबर हो गया न, मैं कहती थी, चलो-चलो। अब वह जान जायँगे और आ जायँगे।"

निर्मल—"डरने की कोई वात नहीं, हम लोग तो उन्हें इसलिये पहचान रहे हैं कि हमें अपना घर मालूम है, और उन्हें छोड़कर दूसरा न होगा, लेकिन वह कैसे जानेंगे कि इस पहाड़ी पर हमीं लोग हैं। और लोग भी तो यहाँ घूमने आ सकते हैं।"

शांता—"उनका जान लेना कुछ मुश्किल नहीं। चपला को और तुमको पहचान लेंगे।"

चपला—"अब वह इसी ओर देख रहे हैं। मालूम होता है, पहचान गए हैं। चलो, यहाँ से उतरो, वह इसी ओर आ रहे हैं।"

राजेश्वरी—"जब जान ही गए हैं, तब आने दो। कौन जल्दी है।"

चपला—"नहीं, उतरो, चलो।"

सब लोग पहाड़ी के नीचे उतरने लगे।

चपला—"बाबूजी बड़े चालाक हैं, समझ गए कि हम लोग पहाड़ पर चढ़ने गए हैं। अब तो छिपने का कोई भी उपाय नहीं, क्योंकि जब तक हम लोग उतरेंगे, तब तक वह आ जायँगे।"

शांता—"इतने बड़े वकील हैं, तो क्या इतनी छोटी बात न समझ सकेंगे।"

राजेश्वरी का मुख गर्व से चमक उठा। किस हिंदू-स्त्री का मुख अपने पति की प्रशंसा सुनकर प्रफुल्लित नहीं हो उठता?

सब लोग किसी तरह नीचे आए। अभी कुछ ही दूर चले थे कि पीछे से मिस्टर माथुर ने पुकारा—"मिस्टर सिनहा, तुम लोग बूढ़े से हार गए।"

शांता और राजेश्वरी ने अपना घूँघट ज़रा बड़ा कर लिया।

चपला—"बाबूजी, आपको भगुआ ने बता दिया होगा।"

मिस्टर माथुर—"नहीं, मैंने दूरबीन से देखा था। तुम भी तो देख रही थीं।"

चपला—"हाँ, मैं आपको बड़ी देर से देख रही थी। जब से आप उठे थे। आपने चाय क्यों नहीं पी?"

मिस्टर माथुर—"पीने का समय कहाँ मिला। अच्छा, आओ, थोड़ी दूर और घूम आवें।"

शांता और राजेश्वरी ने इस बार कुछ आपत्ति न की। सब लोग और आगे चल दिए।

(७)

निर्मल ने बड़ी प्रसन्नता से साप्ताहिक सचित्र 'टाइम्स' ले जाकर चपला के सम्मुख रखते हुए कहा—"चपला, तुम लेडी चैंपियन बहुत जल्द हो जाओगी। देखो, टाइम्स में तुम्हारा चित्र निकला है। तुम्हारी तारीफ़ में इसके संपादक ने अपने पृष्ठ रँग डाले हैं।"

चपला का मुख लाल हो गया, आँखें नत हो गईं। शरीर काँपने और वक्षःस्थल धड़कने लगा।

निर्मल—"चपला, तुमने अपने खेल से सबको चकाचौंध कर दिया।"

चपला ने मुख नत किए हुए ही उत्तर दिया—"यह सब आपकी कृपा और आशीर्वाद है।"

निर्मल—"वाह, मेरी कृपा से क्या होता है, खेलती तो तुम हो, मैं वहाँ कैसे अपनी कृपा दिखलाता हूँ?"

चपला—"जब आप मेरा खेल देखते हैं, तभी मैं जीतती हूँ, नहीं तो हार जाती हूँ।"

निर्मल—"यह क्यों? क्या मैं........"

चपला—"जब मैं जानती हूँ कि आप मेरा खेल देख रहे हैं; तो मैं दुगुने उत्साह से खेलती हूँ, और शर्तिया जीतती हूँ। लेकिन जब........"

निर्मल—"अच्छा, 'रतनपुर' की राजकुमारी भी ख़ूब खेलती है।"

चपला—"रतनपुर की राजकुमारी पक्की खिलाड़िन हैं। उनसे जीत जाना कुछ आसान काम न था, कहिए भाग्यवश जीत गई।"

निर्मल—"रतनपुर की राजकुमारी से तुम तगड़ी ही पड़ती रहीं। चपला, उस दिन तुम्हारा खेल देखकर मेरी तबियत प्रसन्न हो गई।"

चपला—"आपके बतलाए हुए मास्टर स्ट्रोकों से बड़ी सहायता मिलती है। राजकुमारी भी उन वारों को नहीं बचा सकी। आप तो कभी खेलते ही नहीं।"

निर्मल—"अब मैं क्या खेलूँ, बुड्ढा हो गया हूँ।"

चपला—(हँसकर) "यह न कहिए, क्योंकि अगर कुमुद ने कहीं सुन लिया, तो वह आफ़त कर देगी।"

निर्मल का मुख गंभीर हो गया। चपला भी सहम गई, क्योंकि अब कुमुदिनी के पिता के घर में रहने का कारण ज्ञात हो गया था।

चपला—"माफ़ कीजिएगा। कुमुद ऐसी है, यह मुझे अभी तक न मालूम था। उस दिन मा के मुख से सब कहानी सुनकर मैं अवाक् रह गई। वास्तव में मनुष्य रहस्यमय है। मनुष्य-चरित्र समझना दुरूह है।"

निर्मल—"चपला, उसका कोई अपराध न था, अपराध मेरा था। मैं न-मालूम क्यों उसे काम करने के लिये बाध्य करता था। मेरे स्वभाव में कुछ उच्छृंखलता है। मैं बहुत अधैर्य स्वभाव का हूँ। मैं चाहता हूँ, सब बात एकदम से हो जाय, लेकिन यह मेरी भूल थी। स्त्रियों के मन में बाप के घर का मोह होता ही है। मैं उस पर ताने कसता था, उसे क्यों न बुरा लगे। व्यंग्य सबको बुरा लगता है। चपला, मैं उसे दोष नहीं देता, दोषी मैं हूँ।"

चपला—"लेकिन इतना अभिमान भी अच्छा नहीं होता। मा उन्हें बहुत चाहती हैं। यदि मौक़ा पड़े, तो शायद उसके लिये वह अपने प्राण भी दे सकती हैं। जहाँ ऐसा प्रेम मिले, वहाँ ठोकर मारना कितनी बड़ी मूर्खता है?"

निर्मल—"मा उसे इतना प्यार करती थीं, लेकिन वह उनसे भी सीधे मुँह बात न करती थी। शायद इसमें भी मेरा ही अपराध था।"

चपला—"कुमुदिनी ही का अपराध था। आप लोगों ने तो उसे बड़े आराम से, बड़े नाज़ से रक्खा, लेकिन उसका अभाग्य।"

निर्मल—"चपला, दुनिया में भाग्य भी कोई चीज़ है? यह मैं मानता हूँ कि कुछ कर्म ऐसे होते हैं, जिनका फल अवश्य भोगना पड़ता है। कुछ कर्म अमिट हैं, और वे मनुष्य के भाग्य-निर्माण में सहायता देते हैं। शायद मेरे भाग्य में स्त्री-सुख नहीं है, इसीलिये मैं......!"

चपला—"आप भाग्य को क्यों दोष देते हैं?"

निर्मल—"मनुष्य कभी अपने को दोष में सम्मिलित नहीं करना चाहता। अपराध करके भी वह मुक्त होना चाहता है। जहाँ तक अपराध दूसरे के गले मढ़ा जा सके, वहाँ तक अच्छा है; लेकिन अगर वह दूसरे के गले नहीं मढ़ा जा सकता, तो मनुष्य अपने भाग्य अथवा ईश्वर को दोष देता है। यह मनुष्य-चरित्र की सबसे बड़ी कमज़ोरी है।"

चपला—"अच्छा, प्रेम करना क्या कभी पाप होता है?"

निर्मल—"मेरा तो यह ख़याल है कि दुनिया के किसी भी कर्म में पाप और पुण्य का भेद नहीं। पाप और पुण्य का भेद तो मनुष्य की बुद्धि और समाज दोनो मिलकर पैदा करते हैं। एक काम अगर किसी ख़ास ढंग से किया जायगा, तो वह पाप है, और वही एक दूसरे रूप से करने से पुण्य होता है। निःस्वार्थ प्रेम कभी पाप नहीं, और कुवासना-पूर्ण प्रेम पाप है।"

चपला—"लेकिन बहुविवाह के संबंध में आपका क्या मत है?"

निर्मल—"बहुविवाह मेरी समझ में पाप है, क्योंकि उसमें कुवासना है। संतानोत्पत्ति के लिये भी दूसरा विवाह पाप है, क्योंकि उसमें स्वार्थ है।"

चपला—"यदि कोई स्त्री उस मनुष्य को जी-जान से प्यार करती है, जिसका विवाह हो गया है, स्त्री जीवित है, उसे वह भी ख़ूब प्यार करता है, तो उस दशा में स्त्री का प्रेम पाप है?"

निर्मल—"समस्या मुश्किल है। अगर निःस्वार्थ है, तो पाप नहीं।"

चपला—"लेकिन उसका तो विवाह उस मनुष्य के साथ नहीं हो सकता।"

निर्मल—"विवाह की इच्छा स्वार्थ है, इसलिये वह प्रेम पाप है। अगर उसका निःस्वार्थ प्रेम है, तो वह कभी विवाह की इच्छा ही नहीं करेगी। एक रूप से, एक भाव से, निरंतर प्यार करती रहेगी, और उसी प्रेम में अपना जीवन उत्सर्ग कर देगी।"

चपला—"उसका दूसरे पुरुष से विवाह करना तो अवश्य पाप होगा?"

निर्मल—"हाँ, उस दशा में उसे कुमारी-जीवन व्यतीत करना पड़ेगा।"

इसी समय मिस्टर माथुर ने आकर कहा—"मिस्टर सिनहा, आपने 'टाइम्स' देखा है?"

मिस्टर सिनहा ने मुस्किराकर कहा—"हाँ, अभी-अभी देखा है, चपला को दिखाने के लिये मैं आया था। आजकल 'टेनिस-संसार' में चपला की धूम है।"

मिस्टर माथुर ने सगर्व अपनी पुत्री की ओर देखा। पुत्र तथा पुत्री की प्रशंसा सुनकर किस पिता का हृदय दूना नहीं हो जाता?

मिस्टर माथुर—"अगर चपला इसी तरह खेलती जायगी, तो शीघ्र ही चैंपियन हो जायगी।"

निर्मल—"चैंपियन हो गईं। रतनपुर की राजकुमारी के हार जाने से सबकी हिम्मत पस्त हो गई है। इसमें तो कोई भी शक नहीं कि राजकुमारी बड़ा अच्छा खेलती है।"

मिस वैनरजी ने वायु-वेग से कमरे में घुसते हुए कहा—"चपला, बधाई है!"

चपला ने उठकर मिस वैनरजी से हाथ मिलाकर कहा—"धन्यवाद!"

मिस वैनरजी—"अरे चपला, तुमने तो सबको चकित कर दिया। देखो, 'टाइम्स' का रिपोर्टर क्या कहता है। 'ऐसी खेलनेवाली स्त्री मैंने आज तक नहीं देखी।' चपला, तुम ग़ज़ब कर रही हो।"

मिस्टर माथुर—"उसने चपला का 'स्नैप शॉट' भी तो दिया है।"

मिस वैनरजी—"हाँ, राजकुमारी का भी चित्र है। दोनो एक दूसरे के बग़ल में हैं, और चपला के चित्र के नीचे लिखा हुआ है—'The would be champion.'"

मिस्टर माथुर—"यहाँ तो बड़ी उत्सुकता होगी?"

मिस वैनरजी—"अभी ठहरिए तो, थोड़ी ही देर में लड़कियों का एक झुंड आता है। बधाई की धूम मच जायगी। जिस किसी के मुँह से सुन लीजिए, वह यही कहता है, 'मिस चपला कौन है?' 'हम देखना चाहते हैं', शायद राजकुमारी भी आवें।"

मिस्टर माथुर—"यह राजकुमारी कौन हैं?"

मिस वैनरजी—"विशेष में कुछ नहीं जानती, इतना मालूम है कि रतनपुर नाम का एक छोटा-सा राज्य है कश्मीर में, वहीं के राजा की बड़ी लड़की हैं। इँगलैंड में पाँच साल से कुछ ज़्यादा रही हैं। पेरिस में रही हैं, और शायद इटली में कुछ दिन रही हैं।"

मिस्टर माथुर—"तब राजकुमारी सुशिक्षिता और अनुभवी खिलाड़िन हैं।"

मिस बैनरजी—"बड़ी सज्जन हैं। अभिमान तो छू तक नहीं गया। सबसे बड़े प्रेम और सज्जनता से मिलेंगी। सुंदरी भी हैं। हज़ार-दो हज़ार में एक हैं। विद्वान् हैं, शेक्सपियर की बड़ी भक्त हैं। चपला से हारकर उन्हें ज़रा भी दुख नहीं हुआ। वह उसी तरह विदा हुई थीं, जिस तरह खेल शुरू होने के पहले मिली थीं। बहुत संभव है, वह यहाँ आवें।"

मिस्टर माथुर—"नहीं, यहाँ नहीं आवेंगी।"

इसी समय चपला की कई सहेलियाँ घुस आईं। चपला बहुत घबरा गई। कमरे में काफ़ी जगह न थी। घुसते ही उन लोगों ने चपला को उठा लिया।

चपला ने चिल्लाकर कहा—"अरे भाई, छोड़ो, मैं चलती हूँ।"

सबोंने कहा—"तुम हमारी रानी हो, हम सब तुम्हारा अभिषेक करेंगी।"

चपला—"अच्छा-अच्छा, मैं चलती हूँ, छोड़ो तो।"

सब—"कभी नहीं छोड़ सकतीं। हमारी रानी पैदल चलेगी, तो सब लोग हँसेंगे।"

मिस्टर माथुर सगर्व नेत्रों से देख रहे थे। वह उसके पीछे-पीछे हो लिए।

मिस बैनरजी—"मिस्टर सिनहा, आप नहीं चलेंगे?"

निर्मल ने चौंककर कहा—"क्षमा कीजिए मिस बैनरजी, मुझे एक काम है।"

मिस बैनरजी—"आपको तो सदा ही काम लगा रहता है। राजकुमारी आपसे मिलना चाहती हैं।"

निर्मल—"मुझसे उनका क्या काम है?"

मिस बैनरजी—"वही जो पुस्तक आपने लिखी है, उसी के लेखक से वह मिलना चाहती हैं। उन्होंने तो आपकी प्रशंसा में पुल बाँध दिए थे।"

निर्मल—"देखिए, सब लोग चली गई हैं, वहाँ वे शायद चपला का अभिषेक करेंगी।"

मिस बैनरजी—"हाँ, मैं अब चलती हूँ। गुड डे।"

(८)

संसार असीम और विस्तृत कर्म-क्षेत्र है। समस्त चराचर इसके खिलाड़ी हैं, पर यहाँ कौन सफल होता है? बहुत कम! जीवन के विश्वव्यापी संग्राम सबके हृदय-स्थल में घोर रूप धारण करते हैं, पर कौन विजयी होकर अपना मस्तक उच्च करता है? सभी के जीवन में, सभी के चरित्र में, एक-न-एक दोष, एक-न-एक न्यूनता होती है। यदि मनुष्य में न्यूनता न हो, तो वह देवता है—नहीं, ईश्वर है।

यदि मनुष्य अपने पिछले जीवन पर दृष्टिपात करे, तो उसे पता चलेगा कि उसने अपने पिछले जीवन में कोई-न-कोई गुरुतर अपराध या पाप ज़रूर किया है। पश्चात्ताप और ग्लानि, ये दो भाव ऐसे हैं, जो पहले किए गए पापों की पुनरावृत्ति करवाते हैं। स्मृति के ये दो मुख्य दूत हैं। यदि पश्चात्ताप और ग्लानि न हो, तो शायद मनुष्य को अपने पापों का स्मरण ही न रहे। इसी तरह प्रशंसा और यश, ये दो पुरस्कार ऐसे हैं, जो मनुष्य को रण-स्थल में सुचारु रूप से और वीरता से लड़ने के लिये उत्तेजना देते हैं।

लालसा और मोह, ये दो पाप की ओर ले जानेवाले प्रशस्त मार्ग हैं। इन दो आकर्षणों के बीच में पड़कर मनुष्य घोर-से-घोर और विकट-से-विकट पाप कर डालता है? वह पाप करके मनुष्य स्वयं सहम उठता है, और सोचता है, कैसे उसने इतना

भयंकर पाप किया है ? उस दिन से उसका विश्वास अपने ऊपर से उठ जाता और वह अपने निजत्व से घृणा करने लगता है।

प्रेम पाप है, और पाप प्रेम। यह एक विचित्र बात है। प्रेम पाप इसलिये है कि वह अक्ल का बोझ उठा नहीं सकता। जहाँ विवेक-शक्ति का लोप है, वहाँ प्रेम नहीं, बल्कि एक तीव्र आकर्षण है—वह आकर्षण, जो एक जादूगर की आँखों में होता है, विशाल-काय अजगरों के चमकते हुए छोटे-छोटे नेत्रों में होता है। और, पाप प्रेम इसलिये है कि मनुष्य की अंतिम अवस्था में, जब पाप करते-करते उसकी मनोवृत्ति इतनी विवेक-हीन हो जाती है कि वह पाप और पुण्य में भेद नहीं कर सकती, तो उस अवस्था में मनुष्य पाप से प्रेम करता है। उसका मन-तुरंग पाप की ओर बड़ी शीघ्रता से अग्रसर होता जाता है। उस दशा में मनुष्य पाप से प्रेम करता है। लेकिन प्रेम निष्पाप है। तो फिर प्रेम पाप कैसे है ? ठीक यह है—आकर्षण पाप है, और पाप एक स्वयं आकर्षण है।

पापी का जीवन निरंतर भय का जीवन है। जहाँ भय है, जहाँ हर समय फाँसी का झूलता हुआ फंदा आँखों के सामने रहता है, विशाल और उच्च दीवारों से घिरी हुई काल-कोठरी का गौरव दृश्य दिखाई पड़ता है, वहाँ शांति और सुख कदापि नहीं रह सकते। भय और सुख में नकुल-सर्प का वैर है। पापी सदैव शंकित रहता है। उसका विश्वास अपने प्रिय-से-प्रिय मनुष्य के ऊपर से उठ जाता है। लेकिन मनुष्य इतना धोकेबाज़ है, इतना बगुला-भगत है कि अपने मुख पर आनंद और सुख का भाव धारण करता है, पर उसकी अंतरात्मा में वे बिच्छू की भाँति डंक मारा करते हैं।

मिस्टर वर्मा की विचित्र हालत उस दिन से थी, जिस दिन उनसे विलसन से भेंट हुई थी, और केट का जीवित रहना मालूम हुआ था। जब तक मनुष्य समझता है कि उसका पाप छिपा है, किसी ने नहीं

देखा है, तब तक वह निश्चिंत रहता है। लेकिन जहाँ उसे यह मालूम हो गया कि नहीं, उसके पाप का साक्षी है, तो उस दिन से वह पत्ते की खड़खड़ाहट से चौंकता है। पाप मनुष्य को हाथ पर हाथ धरकर नहीं बैठने देता। मिस्टर वर्मा ने विलसन नामधारी डिक को केट की हत्या का भार सौंपा। पाँच हज़ार रुपए भी उन्होंने गँवाए, लेकिन तब भी डिक की तरफ़ से उनका जी साफ़ नहीं हुआ, वह मन-ही-मन सोचते रहे कि शायद डिक उनसे छल करेगा। इतने बड़े डाकू का क्या विश्वास! वह अपना शक मिटाने के लिये पुरी गए। पुरी में पता लगाया, तो मिस्टर उड से मालूम हुआ कि वह चली गई। कहाँ गई, यह मालूम न हो सका। मिस्टर वर्मा ने कुछ बनारसी गुंडे भी साथ में ले लिए थे, लेकिन उनका काम ही न पड़ा और वे बैरंग वापस आए।

पुरी में जाकर उन्होंने निर्मल के मित्र हैं, इस रूप से अपना परिचय दिया था, क्योंकि उन्होंने डिक के लिए हुए स्नैप शॉट में निर्मल को अच्छी तरह पहचान लिया था। मिस्टर उड ने जब यह सुना कि वह मिस्टर सिनहा के बंधु हैं, आई० सी० एस्० हैं और इलाहाबाद के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं, तो उनकी बड़ी आव-भगत की। मिस्टर वर्मा की आवाज़ में एक वह माधुर्य था, जो शत्रु को भी मित्र बना लेता था। मिस्टर उड ने मिस्टर सिनहा की बड़ी प्रशंसा की और उनके एहसान बताए, जो कुछ भी उन्होंने किए थे। बात-ही-बात में उन्होंने मिसेज़ सिनहा की बात पूछी। मिस्टर वर्मा ने यह ज़ाहिर किया कि उनका मिसेज़ सिनहा से बड़ा घनिष्ठ परिचय है और उनके पिता तो बड़े भारी मित्र हैं। मिस्टर उड मिस्टर वर्मा का और अधिक आदर करने लगे। मिस्टर वर्मा पुरी से निराश होकर लौटे। केट का कहीं पता न था। केट उनकी खोज में घूम रही थी। उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि केट ने अभी तक पुलिस में रिपोर्ट क्यों

नहीं की। केट का विचार क्या है, यह उन्हें नहीं मालूम हो सका। डिक का भी कहीं पता न था। समाचार-पत्रों में भी कोई हत्या का समाचार नहीं था। वह बड़े उद्विग्न चित्त से इलाहाबाद लौटे। उनके मन में आया कि इलाहाबाद कुछ दिनों के लिये छोड़ दें। लेकिन यह भी संभव नहीं था। इलाहाबाद में कुमुदिनी का एक बड़ा आकर्षण था। चपला की ओर से उन्हें आशा हो चुकी थी, लेकिन कुमुदिनी अब भी उनके जाल में फँसती दृष्टि न आ रही थी। कुमुदिनी का गर्व ज़रूर नष्ट करना था। जिस तरह भी हो, कुमुदिनी उनकी अंकशायिनी होगी ही। कुमुदिनी पर वह बेतरह नाराज़ थे। इसके अतिरिक्त उन्हें छुट्टी न मिल सकती थी। छुट्टी मिलने के लिये समय लगेगा। उस बीच में केट इलाहाबाद पहुँच सकती है। मिस्टर वर्मा नहीं जान सके कि वह क्या करें। इधर प्राण-भय और उधर तीव्र आकर्षण! इधर जीवन-रक्षा, और उधर लालसा का ललित लावण्य!

मिस्टर वर्मा ने इलाहाबाद ही में रहना तय किया।

जब वह पुरी से वापस आ रहे थे, तो उन्हें एक युक्ति सूझी। उन्होंने मिसेज़ उड के नाम से कुमुदिनी को उपहार देना चाहा। उन्हें विश्वास था कि उनके हाथों से कुमुदिनी कभी कोई उपहार ग्रहण नहीं करेगी, लेकिन शायद मिसेज़ उड के नाम से कर ले! उपहार देना ही उनका तात्पर्य था। जब कुमुदिनी ने उपहार स्वीकार कर लिया, तो फिर अपना नाम बताने में कुछ हर्ज न होगा। वह कुमुदिनी को उपहार एक अमूल्य वस्तु का देना चाहते थे। उनके ख़ानदान में कुछ बहुमूल्य हीरे अब भी अवशेष थे। उन्हीं में से एक अँगूठी में अभी हाल में जड़वाया था। हीरा बेश-क़ीमती था। उन्होंने कुमुदिनी को समर्पित किया, लेकिन उसने अस्वीकार कर दिया। मिस्टर वर्मा के मर्मस्थल में चोट लगी। वह उस वेदना को मसोसकर ही रह गए। क्या करते, कोई उपाय नहीं था।

गोधूलि-वेला में भी मिस्टर वर्मा अपने कमरे में बैठे थे। वह आजकल कहीं आते-जाते न थे। पुरी से लौटे हुए दो रोज़ बीत गए थे, लेकिन अब तक न केट का और न विलसन का ही कहीं पता था। मिस्टर वर्मा तमाम तरह की चिंताओं में मग्न थे। उनके नेत्र झिपे हुए थे, और चेहरा मलीन तथा निस्तेज था। वह अपनी चिंता में इतने मग्न थे कि उन्हें मालूम न हुआ कि कब विलसन नामधारी डिक बैठ गया है। डिक ने जब देखा कि किसी तरह भी मिस्टर वर्मा की विचार-निद्रा नहीं टूटती, तो उसने धीरे-धीरे उनके कंधे पर हाथ रक्खा। मिस्टर वर्मा चौंक पड़े, और हलकी चीख़ निकल गई। वह उछलकर खड़े हो गए।

डिक ने मुस्किराते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा, इतना घबराइए नहीं, मैं हूँ विलसन!"

मिस्टर वर्मा ने विलसन की ओर आँखें फाड़कर देखा, फिर शांत होकर बैठ गए।

डिक—"मिस्टर वर्मा, आप इतने भीरु हैं?"

मिस्टर वर्मा—"प्राण-भय सबको भीरु बना देता है।"

डिक—"लेकिन इतना नहीं कि मित्र से भी शत्रु-समान भय हो।"

मिस्टर वर्मा—"कहो, तुम काम कर आए?"

डिक—"हाँ, काम आधा हो चुका है।"

मिस्टर वर्मा—"आधा कैसा?"

डिक—"इस तरह कि मैं केट से मिला था, वह तुमसे बदला लेने के लिये कटिबद्ध है, और इसी मतलब से कल इलाहाबाद पहुँच गई है।"

मिस्टर वर्मा—"केट इलाहाबाद में! तुमने......तुमने......अपना काम नहीं किया......नहीं किया! रुपया लेकर...रुपया लेकर... धोका......दिया है!"

डिक—"मैंने धोका नहीं दिया। मिस्टर वर्मा, थोड़े-से रुपयों के लिये मैं अपने स्वदेश की एक स्त्री की हत्या नहीं कर सकता।"

मिस्टर वर्मा—"यदि यह बात थी, तो रुपए क्यों लिए थे? चोर, बदमाश!"

डिक—"सावधान मिस्टर वर्मा, इस बार मैं आपको क्षमा करता हूँ, क्योंकि आप अपने होश में नहीं हैं। अगर गाली दुबारा इस्तेमाल की, तो मारे घूँसों के दम निकाल दूँगा।"

मिस्टर वर्मा का पारा चढ़ा हुआ था, उन्होंने उत्तेजित स्वर में कहा—"चुप रहो बदमाश, धमकी दिखाता है। रुपया हज़म कर लेना चाहता है। चोर, बदमाश, मैं तुमको गिरफ़्तार करता हूँ। मिस्टर जे० विलसन उपनाम डिक, इँगलैंड के मशहूर डाकू और चोर, तुम मेरी गिरफ़्तारी में हो।"

डिक ने उछलकर एक घूँसा मिस्टर वर्मा के मुँह में जमाकर कहा—"और मैं तुमको 'केट ट्रैंसम की हत्या के अपराध में दोषी' क़रार देता हूँ मिस्टर वर्मा!"

मिस्टर वर्मा ने जेब से पिस्तौल निकालकर कहा—"बस, अगर एक क़दम भी आगे बढ़े, तो अपनी जीवन-लीला समाप्त समझो।"

डिक ने विद्युत्-गति से जेब से रिवाल्वर निकालकर कहा—"केट को क्यों कष्ट करना पड़े, एक अँगरेज़-स्त्री की हत्या का बदला यह है! मूर्ख, पापी!"

डिक ने घोड़ा दबा दिया। मिस्टर वर्मा ने भी दबाया, लेकिन उनका निशाना चूक गया और मिस्टर वर्मा निर्जीव होकर कुर्सी पर गिर पड़े।

पिस्तौल की आवाज़ से सब लोग दौड़े। डिक बाग़ की खिड़की खोलकर भागा। संध्या के श्यामल अंधकार ने उसको अपने वक्षः-स्थल में छिपा लिया।

बाग़ के बाहर पहुँचकर डिक ने धीरे-धीरे पुकारा—"मिस स्मिथ, मिस स्मिथ !" मिस स्मिथ पेड़ों की आड़ में छिपी हुई थी। पिस्तौल की दो आवाज़ें सुनने में आई थीं, वह उद्विग्न चित्त से बाग़ की ओर देख रही थी। डिक की आवाज़ सुनकर कहा—"विलसन, क्या हुआ ?"

डिक ने लड़खड़ाती आवाज़ से कहा—"तुम्हारा बदला मैं ले आया मिस स्मिथ, मिस्टर वर्मा अब इस संसार में नहीं हैं।"

मिस स्मिथ ने उत्तेजित स्वर में कहा—"विलसन, तुमने उनकी हत्या कर डाली !"

डिक—"हाँ, मैंने एक सच्चे अँगरेज़ की भाँति बदला लिया है। मिस्टर वर्मा मेरी गोली के शिकार हुए हैं, लेकिन यहाँ ठहरो नहीं; भाग आओ।"

मिस स्मिथ—"पापी, बदमाश, स्वार्थी, हत्याकारी, जाओ, मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहती। जाओ, नहीं तो मैं चिल्लाती हूँ।"

विलसन आश्चर्य में आ गया। डिक—"क्यों, क्या बात हो गई ? तुम तो आप ही मिस्टर वर्मा की हत्या करना चाहती थीं।"

मिस स्मिथ—"कौन कहता है कि मैं हत्या करना चाहती थी ! मैं बदला लेना चाहती थी। जाओ, भाग जाओ, नहीं तो मैं पकड़ा दूँगी। तुमने मेरे स्वामी की हत्या की है, मैं तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर सकती ! जाओ !"

डिक चुपचाप चला गया।

मिस स्मिथ निर्निमेष दृष्टि से उस बँगले की ओर देख रही थी। दोनो आँखों से अविराम अश्रु-धारा बह रही थी। उसने धीमे स्वर में कहा—"वर्मा, प्यारे वर्मा, मैं तुमको सच्चे हृदय से क्षमा करती हूँ। ईश्वर तुम्हारी आत्मा को शांति प्रदान करे !"

(६)

विजली में भी दौड़ने की वह शक्ति नहीं होती, जिस शक्ति से मिस्टर वर्मा की हत्या का समाचार फैल गया ! संध्या-समय में एक ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट की हत्या हो जाय और वात-की-वात में ख़बर न फैल जाय, तो आश्चर्य है ! जिसने सुना, वही भागा हुआ आया । पुलिस-इंस्पेक्टर, दारोग़ा, कोतवाल और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध सभी राजकर्मचारी आकर जमा हो गए थे । यहाँ तक कि शहर की जनता भी यथेष्ट संख्या में आई थी ।

जिस समय माधव वावू को फ़ोन से ख़बर मिली, वह तो ऐसे हो गए, जैसे उनपर वज्रपात हुआ हो । वह वायु-वेग से मिस्टर वर्मा के वँगले की ओर दौड़े । माधव वावू सीधे उस कमरे की ओर गए, जहाँ मिस्टर वर्मा का निर्जीव शरीर पड़ा हुआ था । डॉक्टर हृदय-गति की परीक्षा कर रहा था । उसने परीक्षा समाप्त करके ज्यों ही सिर उठाया कि माधव वावू ने पूछा—"क्यों मिस्टर टामसन, अभी कुछ आशा है ?"

मिस्टर टामसन सिविल सर्जन ने मंद स्वर में कहा—"नहीं, सव समाप्त हो गया है । अव कुछ भी आशा नहीं ।"

माधव वावू ने घवराहट से पूछा—"एक वार फिर देखिए, शायद ग़लती हो गई हो ।"

मिस्टर टामसन—"मैं अच्छी तरह देख चुका हूँ, मिस्टर वर्मा अव इस संसार में नहीं हैं । गोली ठीक हृदय पर लगी है । गोली लगते ही प्राण उड़ गए हैं ।"

माधव वावू हताश होकर एक कुर्सी पर गिर पड़े, उसी कुर्सी पर, जिस पर एक घंटा पहले डिक वैठा था । रंगमंच की वस्तुएँ, साज़-सामान वैसा ही रहता है, लेकिन खिलाड़ी दूसरे-दूसरे होते हैं ।

पुलिस ने सवको वाहर कर दिया । जाँच और वयान शुरू हो गए । नौकरों ने वयान दिया कि शाम को एक अँगरेज़ उनसे मिलने

आया था। इसके पहले वह एक बार और आ चुका था। क़द लंबा लगभग छ फ़ीट के, आँखें नीली और छोटी, मूछें और दाढ़ी के बाल घुटे हुए। सफ़ेद टोप और रेशमी सूट पहने हुए। गाल पर एक बड़ा-सा दाग़। इसके अतिरिक्त नौकरों ने और कुछ नहीं देखा। उसने आकर इस दफ़े कार्ड नहीं दिया था, सीधा कमरे में घुसा हुआ चला गया था। वह बड़ी जल्दी में मालूम होता था। उनके मालिक और उसमें ज़ोर-ज़ोर से अँगरेज़ी में बात हो रही थी। थोड़ी देर बाद पिस्तौल की दो आवाज़ें हुईं, और वे लोग दौड़े। लेकिन खिड़की खुली हुई थी। बाग़ की तरफ़ भी वे दौड़े, लेकिन पता नहीं लगा!

पुलिस-इंस्पेक्टर ने सब लिख लिया। अब यह मुश्किल पड़ी कि मिस्टर वर्मा के शव का भार किसको दिया जाय। यही निश्चय हुआ कि यह भार माधव बाबू के सिर दिया जाय, क्योंकि वही मिस्टर वर्मा के घनिष्ठ मित्र थे। एक ज़रूरी तार मिस्टर वर्मा के भाई को भी दिया गया, और उनके न आने तक शव का सत्कार न किया जायगा। माधव बाबू ने सब कमरों में ताला लगाकर चाभी अपने पास रख ली। सभी उदास हृदय से अपने-अपने घर लौटे। कौन जानता था कि एक ही घंटे में मिस्टर वर्मा न रहेंगे, केवल उनकी कथा रहेगी।

दूसरे दिन यह दुर्घटना समाचार-पत्रों में मोटे-मोटे अक्षरों में छपी। तमाम नगर मिस्टर वर्मा की इस अचानक और शोक-प्रद मृत्यु पर आश्चर्य कर रहा था। कुमुदिनी ने जब यह समाचार सुना, तो उसने भी आश्चर्य और दुख प्रकट किया। उसे भी दुख हुआ, लेकिन वह कुछ मुस्किराई, और बोली—"मैं जानती थी, इस मनुष्य में गुप्त भेद भरे हुए हैं। वही हुआ भी। मालूम होता है, किसी स्त्री के स्वामी ने मिस्टर वर्मा की हत्या की है। मिस्टर वर्मा का चरित्र और व्यवहार कुछ ऐसा ही था, जो सबको ताज्जुब में डाले हुए था। लेकिन तब भी मैं मिस्टर वर्मा की मृत्यु पर दुखी हूँ। ईश्वर उनकी अंतरात्मा को शांति दे।

माधव बाबू की दशा कुछ अजीब थी। वह बड़े दुखी थे। उनकी समस्त आशाओं पर पानी फिर गया था। वह मिस्टर वर्मा के बँगले से आकर चुपचाप अपनी मसहरी पर लेट गए। वह बड़ी देर तक विचारों में मग्न रहे। वह कहने लगे—"किसने मिस्टर वर्मा को मार डाला। बड़ा ही सज्जन और सच्चरित्र युवक था। बड़ा विद्वान् और निरभिमानी था। बड़े-छोटों की इज़्ज़त करता था। मुझे पिता की तरह मानता था। उस पर मेरी कितनी ही आशाएँ निर्भर थीं। सोचा था कि रानी का विवाह मिस्टर वर्मा से करके अपने अपमान का बदला लूँगा। उस गँवार बदमाश की बदमाशी का मुँहतोड़ जवाब देता! लेकिन मेरी सब आशाओं पर पानी फिर गया। मिस्टर वर्मा धनी भी काफ़ी थे। वह भी कुमुदिनी की तरफ़ आकृष्ट थे। उन्होंने उस दिन जो हीरा मिसेज़ उड के नाम से भेंट किया था, वह उन्हीं की भेंट थी, इसीलिये मैंने वह भेंट वापस नहीं की, रख ली थी। मैं किसी तरह उनको कष्ट नहीं पहुँचाना चाहता था। लेकिन अब तो सब नष्ट हो गया! मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

"रानी का दूसरा विवाह करना ठीक होगा। लेकिन अब कौन हिंदू उससे विवाह करने के लिये तैयार होगा। मुझे मिस्टर वर्मा से पूरी उम्मेद थी कि वह इस तरह के विवाह में कभी आपत्ति नहीं करेंगे और ख़ासकर रानी के साथ! तो अब क्या मिस्टर वर्मा की मृत्यु के साथ रानी के दूसरे विवाह का भी विचार छोड़ देना पड़ेगा! उसी बदमाश गँवार के यहाँ फिर उसे भेजना पड़ेगा!

"देखो, उसको भी कितना घमंड है! बेटा ने एक चिट्ठी तक न लिखी, एक दिन भी मिलने न आए। जहाँ-जहाँ मेरा निमंत्रण था और उसका भी, वह वहाँ गया ही नहीं। बेटा अपनी बुढ़िया को तीर्थ कराने गए हैं, लेकिन यहाँ आकर ख़बर तक नहीं दी। माफ़ी माँगने

भी नहीं आया। अगर यहाँ आता, तो क्या मैं उसे भगा देता। चक्षु-लज्जा तो करता ही। कुछ भी हो, दामाद ही तो था। मान लो, रानी को न भेजता, लेकिन उसे भगा न देता! जब दो-तीन बार आता, तो रानी आप ही जाती। लेकिन बेटा के मिज़ाज तो सातवें आसमान पर हैं! वे नहीं झुकेंगे, तो मैं क्यों झुकने लगा! मैं उसके बाप के बराबरी का हूँ। अगर मुरारी मुझसे अकड़ जाय, तो क्या मैं मनाने जाऊँगा? नहीं, कभी नहीं। फिर मैं उस पाजी गँवार को क्यों मनाने जाऊँ। मैं नहीं जाता। उसको सौ दफ़ा ग़रज़ होगी, आवेगा; न होगी, न आवेगा। सर माधवचंद्र उसके दरवाज़े नहीं जायँगे। न होगा, तो मैं दूसरे किसी उपयुक्त और सुशील लड़के की खोज में रहूँगा। देरी तो होगी, लेकिन क्या किया जाय। मिस्टर वर्मा की अचानक मृत्यु ने मुझे इस दुख में डाल दिया।"

"अच्छा, मिस्टर वर्मा का हत्याकारी कौन हो सकता है? बयानों से मालूम होता है, हत्याकारी कोई अँगरेज़ है। कोई अँगरेज़ क्यों हत्या करेगा? अगर करेगा भी, तो वह इलाहाबाद का नहीं है; क्योंकि यहाँ किसी भी अँगरेज़ से उनका घनिष्ठ परिचय न था। जिनसे था, वे ऐसा गुरुतर अपराध नहीं कर सकते। अभी थोड़े दिन हुए मिस्टर वर्मा पुरी गए थे। उन्होंने कहा था कि वह अपने एक मित्र से मिलने गए थे। वह उनका इँगलैंड का मित्र था। वहाँ से आने के बाद मिस्टर वर्मा सदैव चिंतित रहते थे। उस अँगरेज़ को कोई नहीं पहचानता। इलाहाबाद-भर में कोई अँगरेज़ ७ फ़ीट लंबा नहीं है। मुमकिन है, यह हत्याकारी वही उनका दोस्त हो। मिस्टर वर्मा ने झूठ कहा हो कि वह उनका मित्र था। वह किसी कारण से इँगलैंड से इनके पीछे लगा हो। यहाँ आकर वह भूल गया हो, और इसी दर्म्यान इनको ख़बर लगी हो कि वह पुरी में है। उसी का शक मिटाने के लिये पुरी गए हों, लेकिन वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि वह

यहाँ से चल दिया, वह भी लौट आए। उसी ने अवसर पाकर मिस्टर वर्मा की हत्या कर डाली। लेकिन मिस्टर वर्मा तो ऐसे आदमी न थे कि कोई उनसे शत्रुता कर सके। वह तो शत्रु को भी मित्र बना डालते थे। फिर क्यों, किसने हत्या की? यही तो रहस्य है, जो समझ में नहीं आता!

"अच्छा, वह अँगूठी लौटाल देना उचित है या नहीं। अब लौटाल देना ही ठीक है। क्यों किसी का धन रक्खा जाय। मिस्टर वर्मा के बड़े भाई को दे दूँगा। लेकिन हीरा क़ीमती है, सौ-पचास में एक है। पर यह कौन जानता है कि यह मिस्टर वर्मा के भेंट है। मुमकिन हो सकता है, मिसेज़ उड ने ही भेजा हो। यह तो निश्चय नहीं है कि किसने उपहार दिया है, मिसेज़ उड ने या मिस्टर वर्मा ने। अच्छा, अभी रहने दो। अभी वापस नहीं करूँगा। पता लगाने पर देखा जायगा।

"मिस्टर वर्मा की मृत्यु से उनके घरवालों को बड़ा रंज होगा। इस बुढ़ापे में उनके पिता पर तो वज्र ही टूट पड़ेगा! ऐसे सुशील, विद्वान्, भाग्यशाली, होनहार पुत्र की मृत्यु से किस पिता का हृदय टूटकर टुकड़े-टुकड़े न हो जायगा! हम लोग, जो कोई सगे नहीं हैं, इतना दुखी हैं, तो उनके घरवालों के दुख का क्या कहना! ईश्वर, तू सब दुख दे, विकट-से-विकट और कठिन-से-कठिन कष्ट दे, लेकिन पुत्र-शोक कभी न दे। पुत्र-शोक ही में तो राजा दशरथ के भी प्राण छूट गए थे!

"रानी को भी मिस्टर वर्मा की मृत्यु से दुख होगा। वह न-जाने क्यों उनसे नाराज़ रहती थी। वह उनके साथ घूमने बायस्कोप, थिएटर कहीं न जाती थी। जहाँ मिस्टर वर्मा होते, वहाँ वह पास न फटकती थी। ऐसा मालूम होता था कि वह उनकी छाया से दूर भागती थी। मैंने कई बार उससे कहा कि तू मिस्टर वर्मा के साथ घूमने

क्यों नहीं जाती, उसने हमेशा टाल दिया। इसका कारण क्या है? शायद रानी उनसे घृणा करती थी। तो क्या रानी को मेरा अभिप्राय मालूम था। लेकिन कहेगा कौन? मुरारी! मुरारी नहीं कह सकता। मुरारी ने बहू से कहा होगा, और बहू ने रानी से। तभी मिस्टर वर्मा से यह द्वेष था। इसके माने तो यह हैं कि रानी अब भी उन लोगों को चाहती है। उसका मोह उन लोगों से दूर नहीं हुआ है। अगर यह बात है, तो क्यों वह यहाँ चली आई। उसी ने तो लिखा था कि मुझे बड़े कष्ट से रखते हैं। कुछ समझ में नहीं आता। बड़ी मुश्किल बात है।"

माधव बाबू इन्हीं गुत्थियों को सुलझाते हुए निद्रा में मग्न हो गए। अर्धरात्रि से अधिक काल बीत गया था। निशा का निस्पंद राज्य था। कहीं अशांति या क्रांति के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते थे। वायु के शीतल झोंके निद्रा-रूपी नशे में तेज़ी प्रकट कर रहे थे। सारे नगर में शांति थी, केवल पहरेवालों की आवाज़ें कभी-कभी उस शांत वायु-मंडल में एक तीव्र कंपन पैदा कर देती थीं। कृष्ण-पक्ष था। अमावस्या थी। कालिमा का घटाटोप राज्य था। मिस्टर वर्मा का बँगला भी उस कालिमा का एक अंग मालूम होता था। दरवाज़े पर पहरा था, लेकिन पहरेवाले अपने को समीर के झोंकों की मस्ती से न बचा सके, और वे भी खड़े-ही-खड़े सो गए।

लेकिन इतनी रात में भी केट मिस स्मिथ को चैन नहीं था। वह चोरों की भाँति बाग़ के पिछले हिस्से से घुसी, और धीरे-धीरे उसी कमरे की ओर बढ़ी, जहाँ मिस्टर वर्मा का शव रक्खा हुआ था। समग्र बँगले में निविड़ अंधकार था। केट टटोलती हुई उस कमरे के पास पहुँची। एक-एक खिड़की के बंद दरवाज़े टटोलने लगी। सभी भीतर से बंद थीं। एक खिड़की के पास आई, उसे धक्का दिया, और वह खुल गई। उसी अंधकार में भी केट की आँखें चमक

उठीं। वह सिहरकर पीछे हट गई। उसे मालूम हुआ कि मिस्टर वर्मा भीतर खड़े हैं। उसने बिखरी हुई हिम्मत को एकत्र किया, और धीरे-धीरे भीतर घुस गई। निर्भेद्य अंधकार था। उसने कपड़े के भीतर से बिजली का लैंप निकाला। उसके प्रकाश में देखा कि मिस्टर वर्मा का शव पड़ा है। वह चौंकी, वह झिझकी, और पीछे हट गई। उसके हृदय की धड़कन बड़े ज़ोरों से होने लगी। मुख पसीने से तर-बतर हो गया। गरमी से उसके प्राण कंठ-गत होने लगे। उसने फिर उस छोटी-सी लालटेन का प्रकाश उस शव पर डाला। मिस्टर वर्मा का सुंदर मुख विकृत हो गया था। आँखें खुली हुई थीं, मानो वे कह रही थीं कि केट, तूने ही मेरी हत्या करवाई है। केट अब की बार डरी नहीं, झिझकी नहीं, बल्कि उनके सिर के समीप बैठ गई। बड़े प्रेम से उनका सिर अपनी जाँघ पर रख लिया। बालों पर हाथ फेरा और बर्फ़-जैसे ठंडे, पीले गालों पर एक प्रेम-चिह्न अंकित कर दिया। एक ही पर बस न था—दूसरा, दूसरे गाल का भी चुंबन ले लिया। केट के सारे शरीर में एक तड़ित्प्रवाह दौड़ गया। उसका शरीर रोमांचित हो गया। उसने धीमे स्वर में कहा—"देवदत्त, मैं तुमको प्राणों से भी बढ़कर प्यार करती थी, लेकिन तुमने मेरे साथ विश्वासघात किया था, मुझे मार डाला था, लेकिन भाग्य-वश बच गई। मैं सोचती थी कि तुमसे मैं बदला लूँगी, पुलिस में दूँगी। लेकिन इलाहाबाद में आकर मेरे विचार बदल गए। मैं तुम्हें अब भी प्यार करती थी। मैंने तुमको क्षमाकर दिया था, मैं अब भी तुमको वही प्यार, वही त्याग, वही अनुराग देती, जो इँगलैंड में दिया था। विलसन से कभी नहीं कहा था कि वह तुम्हारी हत्या करे। उसने तुम्हारी हत्या की है, मैं क़सम खाकर कहती हूँ, मैं इसका बदला लूँगी। और, फिर उसके बाद यह जीवन—इस जीवन का भी अंत कर दूँगी। देवदत्त, मुझे क्षमा करना।"

केट ने फिर मिस्टर वर्मा के कपोलों को चूमा। उसे अब की मालूम हुआ कि वह मुस्किरा रहे हैं। उसने हृदय पर हाथ रक्खा, उसका हाथ रक्त से सन गया। वह सिहरकर उठ खड़ी हुई, और धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गई।

समीर के झोंके अब भी संसार को सुला रहे थे।

(१०)

एक पहाड़ की उपत्यका पर चढ़ती हुई चपला ने कहा—"मिस्टर वर्मा की मृत्यु तो बड़ी विचित्र तरह हुई। एक अँगरेज़ संध्या-समय उनकी हत्या कर गया। उसका कहीं भी पता नहीं है। उसकी हुलिया भी बाहर हुई है।"

निर्मल ने कहा—"हाँ, दुर्घटना तो विचित्र है! संध्या-समय ही कोई उनको उनके ख़ास बँगले में मार डाले और हत्याकारी का पता न लगे! यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। मेरी समझ में पुलिस बड़ी सतर्कता से खोज कर रही होगी।"

चपला—"कल जब मैंने समाचार-पत्रों में यह पढ़ा कि अभी तक पता नहीं लगा, तो मैं अवाक् रह गई। ऐसी दुर्घटनाएँ तो बहुत कम हुआ करती हैं। विलायती समाचार-पत्र तो ज़रूर ऐसी-ऐसी घटनाओं से भरे रहते हैं, लेकिन भारत में, कम-से-कम मेरा ख़याल था, ऐसी घटनाएँ नहीं होतीं।"

निर्मल—"चपला, न भारत ही और न पश्चिमीय प्रदेश ऐसी दुर्घटनाओं से बचे हैं। पाप, हत्या, व्यभिचार सभी जगह होते हैं, लेकिन कहीं कम और कहीं ज़्यादा।"

चपला—"व्यभिचार के संबंध में तो मेरा विश्वास है कि पश्चिम में अधिक होते हैं, बनिस्बत यहाँ के।"

निर्मल—"यह तुम्हारा ख़याल-ही-ख़याल है चपला! तुम्हारे तीर्थों में जितना व्यभिचार होता है, उतना पश्चिम के किसी भी नगर में न

होता होगा ! मनुष्य अपने समाज के दोष बहुत कम देखता है और स्वयं अपनी बुराइयाँ भी । यह मनुष्य की प्रकृति है ।"

चपला—"मिस्टर वर्मा की हत्या ने तो इलाहाबाद में सनसनी फैला दी होगी ?"

निर्मल—"ज़रूर, सबके मुँह में इसी हत्या की बात होगी । चपला, तुम्हें कुछ दुःख नहीं हुआ ?"

चपला—"दुःख उतना ही हुआ है, जितना एक भले आदमी की ऐसी मृत्यु से हुआ करता है ।"

निर्मल—"उनके संबंध में तुम्हारी क्या धारणा थी ?"

चपला—"मेरा ख़याल कुछ अच्छा नहीं था । मुझे कुछ वह विचित्र आदमी मालूम पड़ते थे । कभी-कभी तो ऐसा मालूम होता था कि इस मनुष्य के चारो तरफ़ रहस्य भरा पड़ा है, और कभी-कभी सादगी और भोलेपन के अवतार मालूम पड़ते थे ।"

निर्मल—(हँसकर) "चपला, तुम्हें मालूम है कि उन्होंने तुम्हारे साथ विवाह करने के लिये प्रस्ताव भेजा था ! मिस्टर माथुर ने यह बात मुझसे कही थी ।"

चपला ने एक वक्र दृष्टि से निर्मल की ओर देखा, और सिर नीचा कर लिया ।

निर्मल—"क्षमा करना चपला, मेरा इरादा तुम्हें दुखी करना न था । मैंने यों ही पूछा था ।"

चपला—"यह मैं जानती हूँ, लेकिन शायद यह आपको न मालूम होगा कि मैंने इनकार कर दिया था ।"

निर्मल—"यह मैं जानता हूँ । लेकिन मेरी समझ से मिस्टर वर्मा तुम्हारे उपयुक्त वर हो सकते थे । क्योंकि तुम्हारे-ऐसे रत्न की क़द्र वह अच्छी तरह कर सकते थे ।"

चपला ने एक बार फिर निर्मल की ओर देखकर सिर नीचा कर लिया ।

निर्मल—"चपला, तुम एक बात सुनकर आश्चर्य करोगी?"

चपला—(गंभीरता से) "कहिए, मैं सुनूँगी।"

निर्मल—"जब मैं पुरी में था, तो मिस्टर उड के यहाँ एक नर्स थी, शायद मैंने तुम्हें उसका नाम बताया हो।"

चपला—"हाँ, मिस स्मिथ।"

निर्मल—"उसी मिस स्मिथ ने मिस्टर वर्मा का पता पूछा था, मानो वह उनको खोज रही हो।"

चपला—"मिस स्मिथ उनको खोज रही थी?"

निर्मल—"हाँ, खोज ही नहीं, वरन् इँगलैंड से यहाँ आई थी। वह कहती थी कि मैं उन्हीं के लिये ३,००० मील चलकर आई हूँ।"

चपला—"यह तो एक रहस्य है! मिस्टर वर्मा वास्तव में रहस्य-मय थे।"

निर्मल—"जब उसने मिस्टर वर्मा का चेहरा-मोहरा पूछा, तो अपनी तरफ़ से भी कई बातें कहीं, यहाँ तक कि उनके मस्तक पर बाईं ओर जो दाग़ था, वह किसी ऑपरेशन का था। यह उसी से मालूम हुआ।"

चपला—"तो इससे पता चलता है कि उस मिस स्मिथ से इँगलैंड में इनका घनिष्ठ परिचय था।

निर्मल—"और उसने उनके ओठों की मरोड़ का भी ज़िक्र किया था।"

चपला—"इससे प्रकट है कि वह मिस्टर वर्मा को अच्छी तरह जानती थी।"

निर्मल—"उसने कहा था कि मुझे उनसे बड़ा ज़रूरी काम है। जब मैंने कहा कि लाओ, मैं तुम्हारा काम कर आऊँ, यदि वह मेरे लायक़ हो, तो इनकार कर दिया। और, उसने मना कर दिया था कि मिस्टर वर्मा को यह न मालूम होने पावे कि मैं यहाँ भारत में

। वह भारतीयों को नीच, विश्वासघाती और पापी बताती थी।"

चपला—"मैं बाज़ी लगाकर कह सकती हूँ कि विलायत में मिस्टर वर्मा और मिस स्मिथ में अवश्य कोई संबंध था। शायद मिस्टर वर्मा उसे धोका देकर भाग आए हैं, और प्रतिशोध लेने के लिये वह इँगलैंड से यहाँ आई है। मिस्टर वर्मा की हत्याकारिणी वही स्त्री है।"

निर्मल—"चपला, इतनी जल्दी धारणा न कर लो। पहले सोचो तो, मिस्टर वर्मा का हत्याकारी एक स्त्री नहीं, वरन् एक पुरुष था, जो लंबाई में छ फ़ीट था, दूसरे, वह एक दफ़े पहले भी आकर मिस्टर वर्मा से मिल गया था। तब फिर कैसे मिस स्मिथ इस हत्या की उत्तरदायी हो सकती है?"

चपला—"अगर हत्याकारिणी नहीं, तो कम - से - कम हत्या से उसका विशेष संबंध है, और उसी ने हत्या करवाई है।"

निर्मल—"मेरा तो विश्वास नहीं होता कि मिस स्मिथ हत्या-कारणी हो सकती है।"

चपला—(हँसकर) "यह मालूम है आपको कि नारी-हृदय एक रहस्य है।"

निर्मल—(हँसकर) "हाँ, मैं मानता हूँ, लेकिन इतना जटिल नहीं है, जितना कहा जाता है।"

चपला—"इसके माने?"

निर्मल—"इसके माने यही हैं कि जिस तरह पुरुषों के चेहरे से भलमनसाहत और शराफ़त टपकती है, उसी तरह स्त्रियों के चेहरे से भी। पापियों के लक्षण ही और होते हैं। प्रायः देखा गया है कि पापियों के मस्तक कम चौड़े, यहाँ तक कि उनका माथा डेढ़-दो इंच का होता है, बाल बहुत ही कड़े और घने, आँखें छोटी-छोटी और बातचीत में शराफ़त नहीं होती।"

चपला—"तो क्या संसार के सब पापी इसी चेहरे-मोहरे के होते हैं ?"

निर्मल—"नहीं, लेकिन प्रायः ऐसे ही होते हैं।"

चपला—"संसार में ऐसे भी पापी हैं, जो सभा-समाज में सभ्य आदमी की तरह रहते हैं, लेकिन वे पक्के बदमाश हुआ करते हैं।"

निर्मल—"हाँ, दुनिया में ऐसी मिसालें कम नहीं हैं। वैज्ञानिकों को अभी तक यह नहीं मालूम हो सका है कि हत्या आदि पापों के लिये कौन सिर-तंतु सहायता देती है। इतना तो मालूम है कि बड़ी उत्कट इच्छा जो अचानक होती है, और उसी के आवेश में मनुष्य हत्या कर डालता है। धार्मिक ग्रंथ कहते हैं कि अंतःकरण बुरे काम करने से रोकता है, लेकिन मालूम नहीं, क्या बात है। वैज्ञानिक इसकी खोज में हैं।"

चपला—"लेकिन यह मानना पड़ेगा कि नारी रहस्यमय होती है।"

निर्मल—"हाँ, पर तुम्हारे संबंध में मैं यह बात नहीं मान सकता। मैं तुमको लड़कपन से जानता हूँ, चार बरस से पढ़ा रहा हूँ, लेकिन तुम हमें कभी भी रहस्यमय प्रतीत नहीं हुई। सदा वही हँसमुख, चपल शरीर और सुशील बालिका रहीं।"

चपला—(लजाकर) "लेकिन तब भी आप मेरा हृदय नहीं जानते।"

निर्मल—"यों तो कभी कोई किसी के मन की बात नहीं जान सकता।"

चपला—"मन की बात नहीं, लेकिन भाव और चरित्र के संबंध में ?"

निर्मल—"अच्छी तरह, तुम्हारा चरित्र बड़ा ही गौरवमय और

उज्ज्वल है। मुझे तुम्हारे ऊपर उतना ही गर्व है, जितना करुणा पर होता, यदि वह जीवित रहती! चपला, मैंने कभी तुम्हें करुणा से कम नहीं समझा है।"

चपला ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"देखिए, वह कौन आ रहा है।"

निर्मल ने उस ओर देखा। एक अँगरेज़ महिला दो बालकों को लिए चली आ रही थी।

निर्मल—"चपला, ज़रा दूरबीन देना तो।"

चपला—"क्या कीजिएगा, क्या आप इन्हें पहचानते हैं?"

निर्मल—"शक हो रहा है।"

निर्मल दूरबीन लगाकर देखने लगे। दूर पहाड़ी के ऊपर चढ़ती हुई मिस स्मिथ थीं।

निर्मल ने खड़े होकर कहा—"चपला, मुझे भ्रम होता है, शायद यह मिस स्मिथ हैं, पुरी के मिस्टर उड के यहाँ की नर्स।"

चपला—"मिस स्मिथ मंसूरी में?"

निर्मल—"मालूम तो ऐसा ही होता है। चलती हो, आँख का भ्रम दूर कर आवें।"

चपला—"मिस स्मिथ मंसूरी में क्या करने आवेंगी? साथ में छोटे-छोटे दो लड़के भी तो हैं। कहीं ये मिस्टर उड के लड़के तो नहीं हैं?"

निर्मल और चपला दोनो उतरने लगे। रास्ता टेढ़ा-मेढ़ा होकर गया था, मिस स्मिथ कभी आँखों से ओझल हो जातीं और कभी दिखाई पड़तीं। जितना निर्मल देखते, उतना ही उन्हें विश्वास होता कि आगंतुका मिस स्मिथ हैं।

थोड़ी देर में मिस स्मिथ पास आ गईं। उसने सिर उठाकर

देखा। सामने निर्मल को देखकर उसकी आँखें चमक उठीं, और मुँह पर हास्य-रेखा दिखाई दी।

मिस स्मिथ का मुख श्री-विहीन था। मुख पर वह सुंदरता न थी, जो कुछ रोज़ पहले थी। आँखें भीतर घुस गई थीं, और कपोल पीले और सूख गए थे।

मिस स्मिथ ने एक मलिन हँसी से निर्मल का स्वागत करते हुए कहा—"अरे मिस्टर सिनहा! गुडमॉर्निंग। (चपला की ओर इशारा करके) शायद मिसेज़ सिनहा, ओहो, मैं आपसे मिलने के लिये बड़ी उत्कंठित थी। आप लोगों से इतनी जल्दी और इतनी अचानक भेंट होगी, यह मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं ख़याल किया था।"

मिस स्मिथ ने इतनी जल्दी प्रश्न-पर-प्रश्न किए थे कि निर्मल को समय ही न मिला कि वह कुछ उत्तर दें। चपला ने उसके मुँह से 'मिसेज़ सिनहा' सुना, तो उसके सारे शरीर में मृदु कंपन तड़ित्-वेग से प्रवाहित हो गया, और उसका सिर झुक गया, मुख पर गहरी लालिमा छा गई। उसने कनखियों से एक बार मिस स्मिथ की ओर और फिर निर्मल की ओर देखकर सिर पुनः नीचे कर लिया।

मिस्टर निर्मल ने हँसकर कहा—"मिस स्मिथ, आप बड़ी जल्दी धारणा कर लिया करती हैं, यह मेरी छोटी भगिनी और छात्रा हैं। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर माथुर की पुत्री हैं। इस वर्ष बी० ए० की परीक्षा में बैठी हैं। आपका शुभ नाम है मिस चपला-कुमारी माथुर।"

मिस स्मिथ ने हाथ मिलाते हुए कहा—"मिस माथुर, क्षमा कीजिएगा। मैंने भूल में बड़ा अन्याय कर डाला है। मैं बड़ी लज्जित हूँ। क्षमा कीजिए।"

चपला—(मुस्किराकर) "रहने दीजिए, माफ़ी की कौन ज़रूरत। ऐसी भूल हो ही जाया करती है।"

निर्मल—"मिस स्मिथ, आप यहाँ कैसे आईं ? मिस्टर उड कहाँ हैं ? लिज़ी कहाँ है ?"

मिस स्मिथ—(हँसकर) "आपने भी एकदम तीन प्रश्न किए, कहिए, मैं पहले किसका जवाब दूँ ?"

चपला—"आप तीनो बातों का एक साथ उत्तर दें।"

मिस स्मिथ—"मुझे डर है, कहीं वैसी ही फिर भूल न कर बैठूँ, जैसी अभी-अभी कर चुकी हूँ।"

चपला—"कुछ हर्ज नहीं, आप इस बार माफ़ी न माँगिएगा।"

मिस स्मिथ—"तो अच्छा, सुनिए, मिस्टर उड पुरी में ही हैं, और लिज़ी पढ़ने के लिये बांबे चली गई; उसके बाद मैं भी जिबिका की खोज में मंसूरी पहुँच गई हूँ।"

चपला—"यह तो ठीक नहीं जान पड़ता कि खड़े-खड़े बात की जाय। घर चलिए। यहाँ से बँगला नज़दीक़ है। वहीं बैठकर बातें होंगी।"

मिस स्मिथ—"लेकिन इन बच्चों की ज़िद है कि हम पहाड़ पर चढ़ेंगे। मिस्टर सिनहा, ये दोनो बालिकाएँ लिज़ी की तरह सुशील और शांत हैं। अभी आज दूसरा ही दिन है, लेकिन मुझसे बहुत हिल-मिल गई हैं।"

निर्मल—"हाँ, आप यहाँ कितने दिनों से हैं ?"

मिस स्मिथ—"अभी कल तो आई हूँ। मंसूरी बड़ी अच्छी जगह है। आप यहाँ कितने दिनों से हैं ?"

निर्मल—"कोई तीन सप्ताह हुए होंगे। हरद्वार से तो मैंने आपको पत्र लिखा था।"

मिस स्मिथ—"हाँ, हरद्वार में जा न सकी। इलाहाबाद के मिस्टर

डी० जॉनसन के साथ सीधे यहाँ चली आई। आजकल उन्हीं के यहाँ मैं नौकर हूँ। वे लोग सपरिवार मंसूरी में कल आए हैं।"

चपला—"मिस्टर डी० जॉनसन की तो कपड़े की दूकान है?"

मिस स्मिथ—"हाँ, कपड़े बिकते भी हैं और सिलते भी।"

चपला—"कपड़ा अच्छा सिया जाता है!"

मिस स्मिथ—"आप शायद वहीं के कपड़े पहनती हैं?"

चपला—"सब तो नहीं, हाँ, एक-दो सिला लेती हूँ। मिस स्मिथ, आप बँगले पर चलें, वहीं बातें होंगी। आज हमारा निमंत्रण ग्रहण करें।"

इस बीच में निर्मल हसरत-भरी निगाहों से सप्रेम उन बालिकाओं की ओर देख रहे थे।

मिस स्मिथ का निमंत्रण देते देखकर वह बोले—"मिस स्मिथ, मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा, यदि आप हमारा निमंत्रण स्वीकार करेंगी।"

मिस स्मिथ—"मुझे आपत्ति तो कोई नहीं, लेकिन साथ में ये बच्चे हैं।"

निर्मल ने एक बालिका का हाथ पकड़कर कहा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

उसने निर्मल की ओर देखा, और बाल्य-सुलभ मुस्कान से कहा—"लिली।"

निर्मल—"लिली, बड़ा अच्छा नाम है।"

लिली—"सब कोई कहता है, मेरा नाम बड़ा अच्छा है। मैं अच्छी लड़की भी तो हूँ।"

चपला—"क्या नाम बताया?"

निर्मल—"लिली जैसा अच्छा नाम है, वैसी सुंदरी भी तो है!"

यह कहकर उसे गोद में उठा लिया।

निर्मल—"लिली, बोलो, हमारे साथ घर चलोगी, या पहाड़ पर चढ़ोगी?"

लिली—"पहाड़ पर, मैं पहाड़ पर चढ़ूँगी।"

निर्मल—"आज धूप अधिक हो गई है। शाम को चढ़ना, हमारे घर चलो, हम तुम्हें चाकलेट 'चीज़' सब देंगे, चलोगी?"

लिली—"मामा ने मना किया है कि किसी के यहाँ माँगकर चीज़ न खाया करो, अपने घर खाया करो।"

चपला—"हम तो तुमको उसी तरह देंगे, जैसे घर में तुम्हें मामा देती हैं। मिस स्मिथ भी चलेंगी, यह भी खायँगी। शाम को हम पहाड़ पर आवेंगी, तो तुमको भी ले आवेंगी।"

लिली—"नहीं, मामा ग़ुस्सा होंगी। अच्छा, 'डाली' भी चले तो।"

चपला ने 'डाली' को गोद में उठा लिया। डाली लिली से छोटी थी।

चपला—"डाली, हमारे घर चलेगी?"

डाली ने तुरंत सम्मति दे दी।

मिस स्मिथ—"आप लोग इन्हें कहाँ तक गोद में लिए चलिएगा। पैदल चलने दें।"

चपला—"थोड़ी देर बाद उतार देंगे।"

निर्मल—"मिस स्मिथ, लिज़ी कब गई थी?"

मिस स्मिथ—"कोई दो हफ़्ते हुए होंगे। (हँसकर) आप तो उस पर जादू पढ़ आए थे शायद। वह आपकी बहुत याद करती थी। उसने वादा किया था कि वह आपके लिये केले लावेगी।"

निर्मल—"लिज़ी बड़ी चपल और सुशील बालिका है। मैं तो उसे बहुत प्यार करने लगा था।"

मिस स्मिथ—"मुझे भी उसके छोड़ने में बड़ा दुःख हुआ था, लेकिन क्या किया जाय।"

निर्मल—"देखिए, वह घर हमारा है।"

मिस स्मिथ—"घर तो बड़ी अच्छी जगह है। एकांत है। वाः-भी है।"

निर्मल—"वह बाहर जो बरामदे में बैठे हैं, चपला के पिता हैं।"

मिस स्मिथ—"मिस्टर माथुर यहाँ हैं ?"

निर्मल—"हाँ, क्या आप इन्हें जानती हैं ?"

मिस स्मिथ—"नहीं, मैं नहीं जानती।"

मिस्टर माथुर एक नवीन अतिथि को आते देखकर उससे मिलने के लिये थोड़ी दूर आ गए। निर्मल ने उनका मिस स्मिथ के साथ परिचय करवा दिया।

मिस्टर माथुर—"मिस स्मिथ, अब आप भोजन करके जाइएगा।"

चपला—"अब जाती कहाँ हैं ?"

मिस स्मिथ—(हँसकर) "हाँ, अब तो इरादा कुछ ऐसा ही है।"

चपला ने बड़े उत्साह से मिस स्मिथ का सत्कार किया। मिस स्मिथ ने इसके पहले कभी भारतीय भोजन नहीं किया था, लेकिन आज भोजन कर उनकी आत्मा तृप्त हो गई। वह बार-बार तारीफ़ करती थीं। मिस्टर माथुर इँगलैंड पाँच साल रह आए थे, उनके वेष-भूषा, व्यवहार आदि में अंतर आ गया था; लेकिन वह कम-से-कम भोजन के समय विलायती डबल रोटी और केक की अपेक्षा अपने यहाँ की गरम-गरम रोटियाँ ही अधिक पसंद करते थे। जो मज़ा उनको स्वदेशी भोजन में मिलता था, वह किसी प्रकार के भोजन में नहीं पाते थे।

चपला—"मिस स्मिथ, कहिए, तरकारियाँ कैसी बनी हैं ?"

मिस स्मिथ—"बड़ी अच्छी, आज तक मैंने ऐसी तरकारी नहीं खाई।"

निर्मल—"आपने अभी तक यह नहीं बतलाया कि आपका मि० डी० जॉनसन से कैसे परिचय हुआ ?"

मिस स्मिथ—"मैं इलाहाबाद गई थी।"

निर्मल—"तब आपने सुना होगा कि वहाँ के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट मिस्टर वर्मा की हत्या कोई संध्या-समय कर गया है, और हत्याकारी का पता नहीं है?"

मिस स्मिथ के मुख पर जो कुछ लालिमा और श्री थी, वह सब अंतर्हित हो गई। मुख सफ़ेद हो गया। उसने धीर, प्रशांत स्वर में कहा—"मैं जानती हूँ।"

निर्मल—"तो आप मिली थीं उनसे, क्योंकि आपने पुरी में तो कहा था कि मैं उनसे मिलने के लिये २,००० मील से आई हूँ।"

मिस स्मिथ ने निर्मल की ओर देखा और कहा—"मिस्टर सिनहा, क्या आप भूल गए, मैंने आपसे ये बातें गुप्त रखने के लिये कहा था?"

निर्मल—"मैंने गुप्त ही रक्खी हैं। सिवा चपला के और किसी से नहीं कहा। मैं जानता हूँ, चपला उतनी ही सावधान रहेगी, जितना मैं सावधान रहता हूँ।"

मिस स्मिथ—(हँसकर) "अब उसके छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

निर्मल—"मिस्टर वर्मा की मृत्यु बड़ी बुरी हुई। सुनने में आया है, हत्याकारी कोई अँगरेज़ था। यह बात और सबको आश्चर्य में डाले हुए है।"

मिस स्मिथ—"संसार में आश्चर्य-जनक कोई वस्तु नहीं।"

निर्मल—"आप उनसे मिली थीं?"

मिस स्मिथ—"नहीं, मैं उनसे नहीं मिल सकी। जिस समय मैं उनसे मिलने जा रही थी, उसी समय उनकी हत्या हुई है। मैंने हत्याकारी को देखा है।"

निर्मल और चपला दोनो निर्निमेष दृष्टि से मिस स्मिथ की ओर देखने लगे।

मिस स्मिथ ने मलीन हँसी से कहा—"मैंने हत्याकारी को देखा है, मैं उसे जानती हूँ, और उसी की खोज में मंसूरी आई हूँ। मुझे मालूम है कि वह यहीं कहीं होगा।"

निर्मल—"आपकी बातों पर सहसा विश्वास नहीं होता !"

मिस स्मिथ—"न विश्वास करने का कोई कारण नहीं। मैं आपसे झूठ नहीं बोलूँगी, क्योंकि मैं आपको अपना बड़ा भाई समझती हूँ, और उसी प्रकार की सहायता की भी आशा करती हूँ।"

निर्मल—"मैं पहले भी कह चुका हूँ, और अब भी कहता हूँ कि आपको मैं पूरी सहायता दूँगा, चाहे आप कितनी ही अपराधिनी क्यों न हों।"

मिस स्मिथ—"धन्यवाद, लेकिन मैंने मिस्टर वर्मा की हत्या नहीं की। क्या आप मुझे हत्याकारिणी समझते हैं ?"

निर्मल—"नहीं, अगर आप एक दफ़ा मेरे सामने किसी का ख़ून कर डालें, तो भी मैं एक बार अपनी आँखों का भ्रम समझूँगा। लेकिन आप हत्याकारी को जानती हैं ?"

मिस स्मिथ—"हाँ, अच्छी तरह, वह मेरे साथ पुरी से आया था। मुझे उनके बँगले के पीछे खड़ा करके उनसे मिलने गया, और थोड़ी देर में आकर बोला कि मैं मिस्टर वर्मा की हत्या कर आया हूँ।"

निर्मल—"उस समय आपने पुलिस को नहीं बुलाया ?"

मिस स्मिथ—"मैं उनकी मृत्यु सुनकर इतनी डर गई कि न जान सकी कि क्या करूँ। मैंने वहाँ अधिक देर ठहरना उचित नहीं समझा, क्योंकि मैं भी फिर अपराध में शायद सम्मिलित समझी जाती।"

निर्मल—"तो अभी तक आप चुप क्यों हैं, अपराधी का नाम और ठिकाना क्यों नहीं बतला देतीं ?"

मिस स्मिथ—"नाम बताने से कुछ फ़ायदा नहीं। क्योंकि वह अभी हाल ही में इँगलैंड से यहाँ आया है। दूसरे, नाम भी शायद् जाली है। इस समय वह दूसरे नाम से मशहूर होगा। तीसरे, नाम बता देने से उसका शक मेरे ऊपर जाता, और वह सतर्क हो जाता। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं मिस्टर वर्मा के हत्याकारी को अपने हाथों से पुलिस में दूँगी।"

मिस स्मिथ भोजन कर चुकी थीं। वह दूसरे कमरे में आकर बैठ गईं। चपला ने पानों की तश्तरी बढ़ाते हुए कहा—"लीजिए, पान खाइए।"

मिस स्मिथ—"यह क्या है?"

चपला—"पान, हम लोग भोजन करने के बाद खाते हैं, इससे मुख शुद्ध हो जाता है।"

मिस स्मिथ ने एक पान खाया। सुगंध से उनका मन प्रसन्न हो गया।

निर्मल—"मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि आप हत्याकारी को जानती हैं।"

चपला—"अगर एक बात पूछूँ, तो आप बुरा तो न मानेंगी?"

मिस स्मिथ—"पूछिए, मेरी आप घनिष्ठ मित्र हो गई हैं। आपसे कुछ न छिपाऊँगी। मैं आप पर विश्वास करती हूँ, क्योंकि मिस्टर सिनहा आपका विश्वास करते हैं।"

चपला—(मुस्किराकर) "धन्यवाद, आप मिस्टर वर्मा को कब से जानती हैं?"

मिस स्मिथ ने किंचित् रुद्ध कंठ से कहा—"जब से वह इँगलैंड गए थे। उन्होंने एक बार मेरी प्राण-रक्षा की थी।"

चपला—"आपसे उनका घनिष्ठ परिचय था?"

मिस स्मिथ—"हाँ।"

चपला—"आप उनके साथ क्यों नहीं आईं, उनके पीछे क्यों आईं?"

मिस स्मिथ ने अपने भावों को रोकते हुए बड़ी सावधानी से कहा—"इसका कारण है। अभी नहीं कहूँगी। क्षमा कीजिए। अब मैं जाऊँगी। मिसेज़ जॉनसन घबराती होंगी। उनके बच्चे मेरे साथ हैं। डाली और लिली दोनो राजेश्वरी और शांता के साथ थीं। चपला उन्हें लेने चली गई।"

मिस स्मिथ—"मिस्टर सिनहा, आप मेरी सहायता कीजिएगा, मैं मिस्टर विलसन की खोज में हूँ। यही उस हत्याकारी का नाम है।"

निर्मल—"विलसन। अच्छा, अब आप कब आवेंगी?"

मिस स्मिथ—"रोज़ ही आ सकती हूँ। मिसेज़ सिनहा कहाँ हैं?"

इसी समय चपला डाली और लिली को ले आई। मिस स्मिथ चली गईं।

(११)

अपराह्न-काल था, कुमुदिनी अपने कमरे में बैठी थी। मुख पर सैकड़ों चिंताओं के चिह्न प्रकट हो रहे थे। उसका मुख मंडल मलीन था। विषाद, चिंता ने उसकी सहज श्री को छिपा लिया था। कुमुदिनी सोच रही थी—वह सोच रही थी अपना भविष्य। भाग्य-विधाता ने जो उसके भाग्य में लिखा था, उसी के पढ़ने का वह यत्न कर रही थी—

"चपला का पत्र आया है। वह उनके साथ है। यह सोचकर न-मालूम क्यों मेरा मन काँप उठता है। एक कंपन पैदा होता है। उस कंपन से हृदय में बड़ी कड़ी ठेस पहुँचती है। मैं इसको क्या समझूँ? चपला का नाम लेने से ही मैं डर जाती हूँ। ऐसा डरती

हूँ, जैसे कोई उस चोर से डरता है, जो उसकी सबसे प्रिय वस्तु अपहरण कर लेगा।

"चपला सुंदरी है। अतीव सुंदर है। उसकी आँखों में बड़ी मादकता है। ऐसी मादकता है, जो किसी को भी अपनी ओर आकृष्ट कर सकती है। ख़ूब पढ़ी है। उन्हीं की छात्रा है। उससे उनका घनिष्ठ परिचय है। वह आजकल उन्हीं के साथ रहती भी है। चौबीस घंटे का साथ है! घी और अग्नि पास-पास है। घी क्या न पिघलेगा? अग्नि और फूस का चोली-दामन का साथ है आजकल। तो क्या फूस में आग न लगेगी? मान लिया, फूस भीगा है, इतना भीगा है कि वह अग्नि के ही बुझाने का प्रयत्न पहले करता है, लेकिन हवा तो तेज़ है। हवा अग्नि को जीवित किए ही रहेगी। और, भीगा फूस सूख जायगा ही अंत में! तब? आगे नहीं सोच सकती! हृदय में फिर धड़कन होने लगती है। मुख सूख जाता है, और प्राण अकुलाने लगते हैं। दैव! फूस की रक्षा करो।

"चपला मेरे साथ विश्वासघात करेगी—सहसा विश्वास नहीं होता, लेकिन फिर भी मेरा हृदय काँपता है! मालूम होता है, चपला मेरा वह रत्न, जिसे मैंने अपने हृदय के सबसे गुह्य स्थान में रक्खा है, चुरा लेगी। चपला उनको मेरे पास से छीन लेगी। चपला क्या उनसे प्रेम करती है? मालूम तो ऐसा ही होता है। मुख हृदय के भावों का फ़ोकस है। जब वह तीर्थ करने गए थे, और चपला ने अपने पिता से कहा था, तब उसकी आँखों में आँसू भर आए थे। मैंने एक दिन यही बात और सोची थी, लेकिन उसे अधिक महत्त्व नहीं दिया था। चपला उनके जाने के बाद उदास थी! मनुष्य उदास और प्रसन्न किसी कारण से होता है। किसी वस्तु का अभाव हमें उदास कर देता है, और उसी की पुनः प्राप्ति हमें आशातीत प्रसन्नता देती है।

"चपला का नाम बहुत हो रहा है। टेनिस-संसार में वह ख़ूब विख्यात हो रही है। उसके हृदय में उत्साह है, प्रसन्नता है। उनके जाने के बाद से वह एक दिन भी यहाँ टेनिस नहीं खेली। मैंने एक दिन कहा भी था, उसने इनकार कर दिया। कहा—'आजकल मेरा जी खेलने में नहीं लगता।' इन शब्दों के पीछे अर्थ का एक संसार छिपा हुआ है। ये शब्द उसकी अंतरात्मा का परिचय देते हैं। जब मनुष्य दुखी होता है, तब उसे खेल आदि कुछ नहीं अच्छे लगते। तो चपला क्या उन दिनों दुखी थी? और अब सुखी है, तभी तो इस तरह खेलती है, उत्साह लेती है। चपला प्रसन्न है आजकल! जो वस्तु खो गई थी, वह उसे फिर मिल गई, इसीलिये चपला प्रसन्न है! वही चले गए थे, और वही फिर उसको मिल गए, अब चपला प्रसन्न है। तब चपला उनसे प्रेम करती है!

"स्त्रियाँ अपने प्रेम पर दृढ़ रहती हैं। वह सत्य-पथ पर ही रहती हैं। उनको सत्य-पथ पर आरूढ़ रखने के लिये समाज के रक्षक नंगी तलवार लिए सदा तैयार रहते हैं। वह उन्हें कुपथ पर नहीं जाने देते। लज्जा, भय और अपयश सदा उन्हें अपकर्म करने से रोकते हैं, लेकिन पुरुष स्वभाव ही से उच्छृंखल, उद्दंड और निर्भय होते हैं। स्त्रियाँ अपनी शर्म छिपा नहीं सकतीं, और पुरुष छिपा सकते हैं। पुरुष का प्रेम चाहे स्त्री को आकर्षण न करे, और अगर करे, तो वह उससे बचने का यत्न करेगी, लेकिन स्त्री का प्रेम पुरुष को इतनी ज़ोर से अपनी ओर खींचता है कि वे उसी ओर खिचते जाते हैं। यदि किसी पुरुष को मालूम हो जाय कि अमुक स्त्री उनसे प्रेम करती है, तो वह मान, अपमान, भय आदि की कुछ भी परवा न करेगा। स्त्री का प्रेम स्थायी है, और पुरुष का अस्थायी।

"मैं उन पर क्यों अविश्वास करूँ? नहीं, मैं उन पर विश्वास

अंत तक स्थिर रक्खूँगी। वह मुझे प्राणों के समान प्यार करते हैं, लेकिन मुझसे नाराज़ हैं। नाराज़ी क्या प्रेम हर लेती है। पिता भी तो पुत्र से नाराज़ होता है, माता भी तो क्रोध करती है, तो इसके क्या यह मानी हैं कि माता और पिता के प्रेम का ह्रास हो जाता है। लेकिन आदमी नाराज़ क्यों होता है, इसलिये कि कोई बात उसके मनोनुकूल नहीं होती। एक विरोध-भाव विचार व धारा में अशांति पैदा करता है, और उसमें फिर में एक तूफ़ान-सा आता है—यही तूफ़ान क्रोध है। तूफ़ान चले जाने के बाद समुद्र फिर शांत हो जाता है। यदि तूफ़ान सदैव रहे, तो समुद्र कभी शांत न होगा। जहाज़ कहाँ तक अपनी रक्षा करेगा? अंत में जहाज़ नष्ट-भ्रष्ट हो ही जायगा।

"परंतु क्रोध तो अस्थायी है। बहुत दिन तक क्रोध कभी नहीं रह सकता, कभी-न-कभी शांत होता ही है। किंतु क्रोध उदासीनता पैदा करता है, क्योंकि उसका अंतिम रूप उदासीनता है। जब क्रोध अपनी अंतिम सीमा को पहुँच जाता है, तो वह उदासीनता का रूप धारण करता है। उदासीनता स्नेह और प्रेम का शत्रु है। जहाँ उदासीनता ने अपना आधिपत्य जमाना आरंभ किया, वहीं प्रेम और स्नेह का ह्रास होने लगा।

"क्रोध तभी शांत होता है, जब वह विरोध-भाव दूर हो जाता है। यदि वह विरोध सदैव रहे, तो क्रोध कभी शांत न होगा। जिस प्रकार साँस लेने की नली में कोई अणु-मात्र भी खाद्य पदार्थ धोके से चला जाता है, तो आदमी को खाँसी आती है, खाँसी तब तक रहती है, जब तक वह निकल नहीं जाता। उसी प्रकार क्रोध तब तक रहता है, जब तक वह विरोध-भाव दूर नहीं हो जाता। इसलिये उनका क्रोध शांत करने के लिये यह आवश्यक है कि मैं अपने को सुधारूँ। लेकिन झुके कौन? यही तो विषम विडंबना है।

"मैं मानती हूँ कि मैं उनसे श्रेष्ठ नहीं, लेकिन उनसे कम भी तो नहीं हूँ। मेरा और उनका स्थान बराबर है। उनको अधिकार नहीं कि वह मुझ पर ज़ब्र करें। पर उन पर ज़ब्र करना भी तो मेरे अधिकार से बाहर है। मैं यहाँ क्यों चली आई, क्योंकि मैं उनको अपने इच्छानुसार चलने के लिये बाध्य करना चाहती थी। तब अपराध मेरा है। अगर मैं वहीं रहती, तब मेरा अपराध न होता, पर इस समय मैं स्वयं अपराधिनी हूँ। आज मैंने जाना कि मैं अपराधिनी हूँ। अपराधी को शांति नहीं मिलती। वह सदैव शंकित रहता है। मुझे भी शांति नहीं, मैं भी शंकित हूँ। अपराधी किसी का विश्वास नहीं करता, मैं भी तो उनका विश्वास नहीं करती, इसलिये कि अपनी नज़र में मैं स्वयं अपराधिनी हूँ।

"इसका उपाय क्या है? इस अपराध का दंड क्या है? दंड तो मैं भुगत रही हूँ, लेकिन कब तक मैं यह दंड भोगूँगी। इसका प्रतिकार मेरे हाथों में है। प्रतिकार यही है कि मैं वहाँ जाऊँ। वे लोग मेरा अपमान न करें। यह मुझे विश्वास नहीं होता। वे लोग बड़े प्रेम और आदर से रक्खेंगी। सासजी तो ऐसी प्रसन्न होंगी, मानो उन्हें खोई हुई निधि मिल गई है। पर वह शायद प्रसन्न न हों, वरन् क्रुद्ध हों, क्योंकि उनके प्रेम-प्रसंग में बाधा पड़ेगी।

"चपला तो पत्र में मुझे धिक्कारती है, वह बुलाती है! शायद इसलिये कि मेरा क्रोध बढ़ जाय, और बुलाती इसलिये है कि वह जानती है, मैं जाऊँगी नहीं। चपला सफ़ाई देना चाहती है। यह क्या रहस्य है? भगवान् ही जानें।"

कुमुदिनी इन्हीं विचारों में मग्न थी। वह उठी, और अलमारी से चपला का पत्र निकाला। उसने उसे उलटा-पलटा, और पत्र पुनः पढ़ने लगी—

मंसूरी
२८—६...

प्रिय कुमुद,

तुम अभागिनी हो, और बड़ी अभागिनी हो! तुम पत्र का पहला ही शब्द देखकर चौंकोगी, लेकिन मैं साबित कर दूँगी कि तुम्हारे बराबर अभागिनी संसार में कोई स्त्री नहीं हो सकती।

कुमुद, मैं तुमको एक बात पहलेपहल बता देना चाहती हूँ, जिसे तुम न जानती होगी। वह यह कि मिस्टर सिनहा और माजी हमीं लोगों के साथ यहाँ रहते हैं। बाबूजी से और उनसे हरद्वार में भेंट हुई थी। वह उन्हें यहाँ लिवा ले आए, और अपने ही साथ रहने के लिये मजबूर किया।

कुमुद, मैं तुम्हारी सास को बहुत पहले से जानती थी, अब और अच्छी तरह जान गई हूँ। यहाँ आकर वह कारण भी मालूम हुआ, जिससे आपने विरहावस्था मिलन की अपेक्षा पसंद की है। क्यों कुमुद, क्या तुम बालिका हो, या भारत की हज़ारों मूर्ख स्त्रियों में से हो। मुझे तुमसे यह आशा न थी। स्वप्न में भी मैंने कभी यह अनुमान नहीं किया था कि तुम इस प्रकार का व्यवहार अपने पति तथा सासजी के साथ कर सकती हो। कुमुद, तुमने तो शिक्षित स्त्री-समाज की नाक ही काट ली।

शिक्षित स्त्रियों में तो अभिमान और गर्व कम हो जाना चाहिए। उनमें वह दुर्गुण कदापि न रहना चाहिए, जिसके लिये मूर्ख स्त्रियाँ बदनाम हैं। सहनशीलता, भक्ति, सेवा और सत्कार, प्रेम और स्नेह, शील और सौजन्य स्त्री के भूषण हैं। जो स्त्री इन गुणों से वंचित है, वह चाहे जितनी शिक्षित हो, स्त्री-समाज की कलंक है। शिक्षा बुद्धि को उज्ज्वल करती है। शिक्षा से अभिमान न होना चाहिए, बल्कि उसका नाश होना चाहिए।

श्वेत रंग में सातों रंग होते हैं, इसी प्रकार शिक्षित स्त्री में सब गुण होने चाहिए। परंतु कुमुद! मैं तो यहाँ एक दूसरा ही रंग देखती हूँ। कुमुद, यह क्या सत्य है?

सेवा! सेवा से तुम इतना क्यों घबराती हो। सेवा स्त्री का प्रधान भूषण है। जिस प्रकार सिंदूर सौभाग्य का चिह्न है, उसी प्रकार सेवा स्त्रीत्व का चिह्न है। सेवा से अपमान नहीं होता। इस महायुद्ध में राजकुमारियों और बड़े-बड़े प्रसिद्ध वंशों की कुमारियों ने आहत सिपाहियों की सेवा उस प्रकार की है, जिस प्रकार माता एक छोटे नवजात शिशु की करती है। योरप आज सेवा के आदर्श पर चल रहा है। वहाँ की स्त्रियाँ सेवा करने में ज़रा नहीं हिचकती हैं। अपरिचित की सेवा करने में उनके मन में कोई ग्लानि नहीं पैदा होती। फिर वह तुम्हारे स्वामी हैं, और वह सास हैं, उनकी सेवा में कैसी ग्लानि? स्वामी स्त्री का कौन है, यह कहने की मैं आवश्यकता नहीं समझती। अगर यह भी न जानती हो, तो तुम्हारे समान अभागिनी कोई नहीं।

कुमुद, क्या अब भी तुम न मानोगी, न स्वीकार करोगी कि तुम अभागिनी हो। बहन, क्षमा करना, यदि मैंने कुछ अनुचित लिख मारा हो। तुम्हारी सास तुम्हारी बहुत याद करती हैं, और मिस्टर सिनहा तो तुम्हारी ही स्मृति में संलग्न रहते हैं। कुमुद, लड़कपन न करो, आओ, चली आओ। सुहाग रहते सुहाग से वंचित न रहो! अपने घर में आने से अपमान नहीं होता। मैं तुम्हारी राह देख रही हूँ।

वहाँ के क्या हाल हैं? मिस्टर वर्मा की मृत्यु पढ़ी। मुझे तो कुछ विशेष दुःख नहीं हुआ। मैंने इन दिनों एक बात स्थिर की है, और वह शायद ठीक भी है। मिस्टर वर्मा ने मेरे साथ विवाह का प्रस्ताव बाबूजी के पास भेजा था, अब मुझे शक होता है कि वह

पन्नेवाली अँगूठी शायद मिस्टर वर्मा का ही गुप्त उपहार था। वह अँगूठी इलाहाबाद में ही रक्खी है। वहाँ आकर उनके संबंधियों को वापस कर देना होगा।

कुमुद, मैं बड़ी आशा से तुम्हारा पथ देख रही हूँ। मुझ पर गुस्सा न होना।

तुम्हारी प्यारी सखी,
चपला

पत्र पढ़कर कुमुदिनी ने कहा—"यह पत्र भाभी को दिखाना चाहिए। चलूँ, उन्हीं के कमरे में चलूँ।"

कुमुदिनी लज्जा के कमरे में गई। लज्जा उस समय एक रूमाल पर कुछ काढ़ रही थी।

कुमुदिनी—"भाभी, यह रूमाल किसके लिये तैयार हो रहा है?"

लज्जा ने रूमाल रख दिया, फिर कहा—"आपके लिये।"

कुमुदिनी—"मेरे ऐसे भाग्य कहाँ?"

लज्जा—"भाग्य नहीं, तो बनवा आओ!"

कुमुदिनी—"कोई कारीगर बताओ।"

लज्जा—"कारीगर तो तीर्थ करने गए हैं। तब तक धैर्य धरो, जब वह आ जायँ, तो बनवा आना।"

कुमुदिनी—"जानती हो, वह कहाँ हैं?"

लज्जा—"मुझे मालूम नहीं। तुम्हें मालूम है?"

कुमुदिनी—"क्या जाओगी?"

लज्जा—"हाँ, मानिनी नायिका के लिये दूती की भी तो ज़रूरत पड़ती है। तुम्हारी दूती बनकर तुम्हारे नायक के पास जाऊँगी।"

कुमुदिनी—"लेकिन कभी-कभी दूती ही अपनी स्वामिनी का स्थान छीन लेती है।"

लज्जा—"पर मुझसे यह भय न करो, क्योंकि नायक नायिका के ही प्रेम का भिखारी है। उसे किसी की भी परवा नहीं।"

कुमुदिनी—"पहले यही विश्वास था, लेकिन अब नहीं रहा।"

लज्जा—"यह अविश्वास क्यों?"

कुमुदिनी—"क्योंकि नायक के पास नायिका की एक सखी पहुँच गई है। ललिता से राधा को भय हुआ था।"

लज्जा—"लेकिन राधा अंत तक नायक में विश्वास करती रही।"

कुमुदिनी—"हाँ, पर मैं ज़रा हिचकती हूँ।"

लज्जा—"आख़िर बात क्या है?"

कुमुदिनी—"कुछ नहीं, यही कि वह आजकल मंसूरी में हैं, और चपला के साथ रहते हैं।"

लज्जा—"तुमने किससे सुना?"

कुमुदिनी—"आज चपला का पत्र आया है। उसी में उसने लिखा है, और तमाम उपदेश दिया है। पत्र यह है, पढ़ो।"

लज्जा पत्र पढ़ने लगी। पढ़कर उसने रख दिया, और कुछ सोचने लगी।

कुमुदिनी—"क्या सोच रही हो?"

लज्जा—"चपला से तो कोई भय नहीं। चपला तुम्हें बुला रही है। कोई स्त्री अपने सुख पर ठोकर नहीं मारेगी, और सौत देखना भी पसंद न करेगी। इसके अतिरिक्त इससे नेकनीयती और आदर्श टपकता है। शिक्षा भी तुम्हें दी है। तुम्हें चपला से कुछ भय न होना चाहिए।"

कुमुदिनी—"मेरा विश्वास है कि वह उनसे प्रेम करती है। वहाँ वह सुखी है, यहाँ दुखी थी, जब वह यहाँ से चले गए थे। भाभी, मेरा मन कहता है कि चपला उन्हें चाहती है, और उसका

यह ढोंग है, सफ़ाई है। वह जानती है कि मैं वहाँ जाऊँगी नहीं, इसीलिये बुलाती है।"

लज्जा—"भइ, मेरे मन में तो यह बात नहीं जमती। चपला अबोध नहीं। वह जानती है कि मेरा विवाह उनके साथ नहीं हो सकता, फिर यह प्रेम निष्फल है।"

कुमुदिनी—"विवाह क्यों नहीं हो सकता ?"

लज्जा—"इसलिये कि निर्मल बाबू करेंगे नहीं। मैं कभी स्वप्न में अनुमान नहीं कर सकती कि वह पुनर्विवाह करेंगे। बहन, क्या तुम उनके साथ इतने दिन रहकर भी उन्हें पहचान नहीं सकी। उनके हृदय में तुम्हारे प्रति अगाध प्रेम है। वह कभी दूसरी स्त्री को ग्रहण न करेंगे।"

कुमुदिनी—"विश्वास ज़रूर था, लेकिन अब नहीं होता। पुरुष का प्रेम अस्थायी है।"

लज्जा—"तो क्या स्त्रियों का प्रेम चिरस्थायी है। बहन, सब पुरुषों के संबंध में यह बात लागू नहीं, और न सब स्त्रियों के संबंध में भी। अच्छे और बुरे पुरुष भी होते हैं और स्त्रियाँ भी। मुझे तो दृढ़ विश्वास है कि वह कभी चरित्र से गिर नहीं सकते।"

कुमुदिनी—"लेकिन, अगर वह फिसल जायँ, तब ?"

लज्जा—"इसका अभी से उपाय करो।"

कुमुदिनी—"उपाय क्या है ?"

लज्जा—"गंगा की धारा समुद्र में मिल जाय।"

कुमुदिनी—"हाँ, पर समुद्र का पानी खारा ही रहता है, गंगा के मिल जाने से मीठा नहीं हो जाता।"

लज्जा—"खारी हो जाने में ही गंगा का कल्याण है, क्योंकि तब विरोधाभास मिट जाता है।"

कुमुदिनी—"तो इसका अर्थ है कि मैं चली जाऊँ।"

लज्जा—"चपला भी तो बुलाती है, अपने घर में जाने से कोई अपमान नहीं।"

कुमुदिनी—"लेकिन बाबूजी क्या कहेंगे ? वह तो बुलाने भी नहीं आए। बग़ैर बुलाए कैसे जाऊँ ? एक पत्र भी तो नहीं भेजा।"

लज्जा—"उन्होंने पत्र नहीं भेजा, तो तुम लिखो।"

कुमुदिनी—"मैं झुकूँ ?"

लज्जा—"स्वामी के सामने झुकने ही में स्त्री का गौरव है।"

कुमुदिनी—"अच्छा, सोचूँगी, लेकिन भाभी, मुश्किल देख पड़ता है।"

लज्जा—"कुछ नहीं, क़लम, दावात और काग़ज़ लेकर बैठ जाओ। अगर कुछ भाव न आवे, तो मैं बोल दूँगी।"

कुमुदिनी—"धन्यवाद, मैं अब जाती हूँ।"

लज्जा—"कहाँ, मंसूरी ?"

कुमुदिनी—(हँसकर) "नहीं, स्वर्ग।"

लज्जा—"यह शायद तुम्हें नहीं मालूम कि इस नवयुग में स्वर्ग मंसूरी में आ गया है।"

कुमुदिनी—"अच्छा, धन्यवाद। मैं वहीं जाऊँगी।"

कुमुदिनी चली गई।

लज्जावती ने रूमाल रखते हुए कहा—"मामला तो अवश्य गहरा देख पड़ता है। उनसे कहना पड़ेगा।"

पंचम खंड

(१)

देहरा-एक्सप्रेस खचाखच भरा हुआ था। पहले दर्जे में भी काफ़ी भीड़ थी। पहाड़ों पर जाने का समय था—मिल के साहबों के लिये। उच्च पदस्थ अँगरेज़-कर्मचारी तो पहले ही जा चुके थे, लेकिन मिलवाले साहबों को अब छुट्टी मिली थी। वे लोग सपरिवार पहाड़ों पर जा रहे थे।

दूसरा दर्जा तो पूरी तरह से भरा हुआ था। छोटे-छोटे बालक और बालिकाएँ उत्सुकता से खिड़की के बाहर झाँक रही थीं। उन्हें एक अद्भुत आनंद मिल रहा था। एक बालक खिड़की से हटकर अपनी मा के पास आकर बैठ गया। उसने अपनी मा की उँगलियों से खेलते हुए पूछा—"मामा, ये पेड़ दौड़ रहे हैं क्या?"

लड़के की मा ने प्रेम से उसे अपनी गोद में बिठाकर कहा—"नहीं बाबा, गाड़ी तेज़ी से जा रही है, इसलिये तुम्हें मालूम हो रहा है कि पेड़ दौड़ रहे हैं।"

लड़के के पिता मिस्टर क्लाइव ने कहा—"क्या बात है बाबा?"

लड़के की मा—(हँसकर) "बाबा को मालूम हो रहा है कि पेड़ दौड़ रहे हैं।"

मिस्टर क्लाइव—"क्यों, तुम्हें स्कूल में नहीं बतलाया गया?"

बाबा—"नहीं, अभी ये बातें नहीं बताई गईं।"

इसी समय एक दूसरे सज्जन ने कहा—"क्लाइव, देखो, एक बड़ी विचित्र घटना आज के 'टाइम्स' में है।"

क्लाइव—"कौन-सी घटना है, कहाँ हुई?"

क्लाइव के इस मित्र का नाम मिस्टर टर्नहम था।

टर्नहम—"बांबे में एक अँगरेज़ डाकू एक सेठ से पचास हज़ार रुपए ठग ले गया।"

क्लाइव—"ठग ले गया कि लूट ले गया ?"

टर्नहम—"हाँ, लूट ही ले गया है। घटना यों है, एक सेठ मानिकलाल नाम के पूना से बांबे जा रहे थे। सेठ दूसरे दर्जे में था। उसके पास एक बैग था और कुछ थोड़ा-सा सामान और था। जब वह पूना से सवार हुआ, तब उसमें एक ही अँगरेज़ था। सेठ चुप-चाप गाड़ी में आकर बैठ गया। गाड़ी चलने के बाद उस अँगरेज़ ने जेब से पिस्तौल निकालकर कहा—'सेठजी, आपके पास जो कुछ हो, वह मेरे हवाले करो, नहीं तो पिस्तौल देख ही रहे हो।' जान के भय से सेठ ने अपना बैग और जेब में जो कुछ था, दे दिया। बैग में पचास हज़ार के नोट थे! रुपए लेने के बाद उस अँगरेज़ ने उनके हाथ, पैर और मुँह कपड़े से बाँधकर पाख़ाने में बंद कर दिया, और ख़ुद दूसरे स्टेशन पर उतर गया। बांबे तक कोई भी उस गाड़ी में बैठने नहीं आया। गाड़ी पहुँच जाने के दो-तीन घंटे बाद जब सफ़ाई के लिये क़ुली आए, तब उस बेचारे को निकाला, और पुलिस में रिपोर्ट हुई। अँगरेज़ का पता नहीं है।"

क्लाइव—(हँसकर) "बड़ी अच्छी घटना है। ये सेठ लोग बड़े गँवार और डरपोक होते हैं।"

टर्नहम—"लेकिन रुपएवाले होते हैं!"

क्लाइव—"हाँ, पूरी यहूदी हैं।"

टर्नहम—"उसकी क़िस्मत अच्छी थी भाई, जिसने ये रुपए लिए। मज़े से वह ख़ूब उड़ाएगा। एक हम लोग हैं, महीने में तीन सौ मिलता है, लेकिन पहाड़ पर जाने के लिये क़र्ज़ लेना पड़ा।"

क्लाइव—"उसके पकड़े जाने का कुछ इनाम भी है ?"

टर्नहम—"हाँ, है क्यों नहीं। पाँच हज़ार है, पकड़ोगे क्या ?"

क्लाइव—"हाँ, अगर मिल जाय, तो ज़रूर पकड़वा दूँ, हुलिया क्या है ?"

टर्नहम—"क्लाइव, अपने एक भाई को पकड़वाना ठीक नहीं। उसने लूटा तो एक हिंदुस्थानी को है। फिर हमें क्या पड़ी है, जो हम पकड़वावें। हाँ, उसकी खोज में रहो, अगर मिल जाय, तो हम लोग उससे अपना हिसाब कर लें। रुपयों से हमें काम है, उसको पकड़वाने से लाभ ?"

क्लाइव—"बात तो ठीक है, मैं सहमत हूँ। हाँ, हुलिया तो बताओ।"

टर्नहम—"लंबा छ फ़ीट के लगभग, आँखें छोटी और नीली, चेहरा साफ़ और लंबा, गाल में एक बड़ा-सा दाग़। रेशमी सूट पहने था। देखने में भद्र मालूम होता था।"

क्लाइव—"अच्छा, नोटों के नंबर सेठ के पास लिखे हैं ?"

टर्नहम—"सेठों में इतनी बुद्धि कहाँ, जो नोटों के नंबर लिख लें।"

क्लाइव—"तब उसका मिलना मुश्किल है।"

टर्नहम—"हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है।"

मिस्टर टर्नहम एक विलायती समाचार-पत्र उठाकर देखने लगे।

क्लाइव—"यह कौन समाचार-पत्र है टर्नहम ?"

टर्नहम—"लंदन-टाइम्स के पुराने अंक हैं।"

क्लाइव—"इनको ले थाने से लाभ ?"

टर्नहम—"इसमें एक धारावाहिक कहानी निकल रही है। इस हफ़्ते तक के सब अंक हैं।"

क्लाइव—"अच्छा, एक हमें भी देना।"

टर्नहम ने एक अंक निकालकर दे दिया।

क्लाइव ने टर्नहम के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"टर्नहम, देखो, 'डिक जॉन' आजकल यहीं हैं!"

टर्नहम—"डिक जॉन कौन?"

क्लाइव—"अरे, वही लंदन का मशहूर डाकू, जिसने हज़ारों पौंड दम-की-दम में चुरा लिए, और पुलिस खोजते-खोजते मर गई, लेकिन पता न लगा।"

टर्नहम—"तब यहाँ कैसे मालूम हुआ कि यहाँ है?"

क्लाइव—"देखो, इसमें एक चित्र भी उसका निकला है। लंदन की पुलिस को पता लगा है कि वह आजकल भारत में है। उसका एक साथी पकड़ा गया, उसी ने कहा कि डिक तो आज आठ महीने से इंडिया में है। उसके पास डिक के पत्र भी मिले हैं, जिसमें उसने उस अपने मित्र को यहाँ बुलाया था। एक पत्र की नक़ल भी छपी है।"

टर्नहम—"पत्र तो पढ़ना ज़रा।"

क्लाइव—"पत्र में लिखा है कि हम लोगों के कार्य-क्षेत्र के लिये हिंदुस्थान से बढ़कर संसार में और कोई स्थान नहीं। यहाँ की पुलिस अंधी है, हम लोगों से डरती है, हथियार कोई बाँध नहीं सकता, बड़े-बड़े सेठों के पास रुपयों की खान है। रहन-सहन सस्ता है। यही सब लिखा है। देखो, फ़ोटो देखो। इसके नीचे भी हुलिया लिखी है—लंबाई छ फ़ीट, आँखें छोटी, बायाँ हाथ दाहने हाथ से छोटा, दाहने गाल में एक दाग़ है, बाल सुनहले, घुँघराले, आवाज़ मीठी और सुरीली।"

टर्नहम—"क्लाइव, तुमने एक बात देखी?"

क्लाइव—"कौन-सी बात?"

टर्नहम—"जो पूने के पास डकैती हुई है, मालूम होता है, वह इसी डिक का काम है।"

क्लाइव—"कैसे, नशे की झोंक में तो नहीं हो ?"

टर्नहम—"नहीं, मुझे शक इसलिये होता है, क्योंकि दोनो की हुलिया कुछ-कुछ मिलती है।"

क्लाइव—(सोचकर) "हाँ यार, सच, जान तो ऐसा ही पड़ता है। दोनो की लंबाई छ फ़ीट, दोनो की आँखें छोटी, दोनो के गालों में दाग़, लेकिन यार, यहीं पर तो गाड़ी रुकती है, पूना के डाकू के बाएँ ओर चिह्न है, और डिक के दाहनी ओर।"

टर्नहम—"क्लाइव, यह कोई विशेष महत्त्व की बात नहीं है, सेठ ने शायद देखने में ग़लती की हो। इनमें ज़रा भी तो बुद्धि नहीं होती।"

क्लाइव—"यार टर्नहम, दाँव तो बड़ा गहरा है, बड़ी भारी रक़म हाथ लगेगी।"

टर्नहम ने जेब से सिगार-केस निकालते हुए कहा—"क्लाइव, दियासलाई तो निकालो ज़रा।"

क्लाइव—"मेरे पास नहीं है।"

टर्नहम—"अच्छा, इन सज्जन से पूछो, शायद इनके पास हो।"

उसी गाड़ी में एक दूसरा व्यक्ति बड़ी देर से खिड़की के बाहर मुँह निकाले बैठा था, और बड़ी तन्मयता से दोनो की बातें सुन रहा था। उसकी आँखें बंद थीं, ऐसा मालूम होता था कि गहरी नींद में है।"

क्लाइव ने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"आपके पास दियासलाई है ?"

वह व्यक्ति चौंक पड़ा, और कहा—"आपने क्या कहा ?"

क्लाइव—"ओहो, आप सो रहे थे, क्षमा कीजिएगा। मैंने आपको व्यर्थ कष्ट दिया।"

व्यक्ति—"नहीं, मैं सो नहीं रहा था, ज़रा झपकी लग गई। आप दियासलाई चाहते हैं ?"

क्लाइव—"हाँ, आपके पास है ?"

उस व्यक्ति ने जेब से दियासलाई और एक सोने का सिगरेट-केस निकालकर कहा—"लीजिए।"

क्लाइव ने दियासलाई लेकर कहा—"सिगरेट हम लोगों के पास है, धन्यवाद !"

व्यक्ति—"आजकल सिगार पीने के दिन नहीं हैं। कितनी गर्मी पड़ रही है। ५५५ एक्सप्रेस पीजिए।"

क्लाइव ने एक सिगरेट लेते हुए कहा—"एक्सप्रेस है, तो ज़रूर लूँगा। धन्यवाद ! आप भी शायद मंसूरी चल रहे हैं ?"

व्यक्ति—"हाँ, मैं भी मंसूरी जा रहा हूँ। मैं संसार-भ्रमण कर रहा हूँ, और एक पुस्तक लिखना चाहता हूँ, जिसमें संसार के मशहूर स्थानों की भी चर्चा हो।"

क्लाइव—"आप कहाँ से आ रहे हैं ?"

उस व्यक्ति ने अपनी पॉकेट-बुक से कार्ड निकालकर देते हुए कहा—"मैं अमेरिकन हूँ, और शिकागो के एक फ़र्म का मैनेजर हूँ।"

टर्नहम—"संसार-भ्रमण का विचार बड़ा अच्छा है।"

क्लाइव ने कार्ड लेकर पढ़ा, उसमें लिखा था—"मिस्टर सी० वी० कॉक, प्रोप्राइटर-आइरन वर्क्स, शिकागो।" क्लाइव ने हाथ बढ़ाकर कहा—"मिस्टर कॉक, आपसे मिलकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई।" मिस्टर कॉक ने दोनो से कर-मर्दन किया।

टर्नहम—"आपने यहाँ कौन-कौन जगह देखी मिस्टर कॉक ?"

मिस्टर कॉक—"लगभग उत्तरी भारत-भर देख डाला है। पहाड़ी जगह देखना बाक़ी था, सो अब देखने जा रहा हूँ।"

क्लाइव—"आप अकेले हैं ?"

मिस्टर कॉक—"नहीं, मेरे साथ नौकर हैं; वे किसी काम से पीछे कानपुर में रुक गए हैं, शीघ्र ही आवेंगे। आप लोग कहाँ से आ रहे हैं ?"

क्लाइव—"हम दोनो एक ही मिल में नौकर हैं। कानपुर के ऊलन मिल्स में यह एक डिपार्टमेंट के इंचार्ज हैं, और मैं असिस्टेंट हूँ।"

क्लाइव और टर्नहम ने अपने-अपने नाम का कार्ड दिया।

क्लाइव—"आपने कल के 'टाइम्स' में एक विचित्र डकैती की ख़बर पढ़ी है ?"

कॉक—"पढ़ा तो नहीं, सुना है, आप दोनो बातें कर रहे थे।"

क्लाइव—"हाँ, हम-लोग उसकी खोज में हैं।"

कॉक—"उसका मिलना मुश्किल है। वह आजकल कहीं आराम से रुपयों की सद्गति करता होगा।"

टर्नहम—"मेरा भी यही ख़याल है। हम लोगों का इरादा उसे पुलिस में देने का नहीं है। अगर वह हम लोगों को मिल जाय, तो उससे केवल साझा बँटा लेंगे।"

कॉक—(हँसकर) "अच्छा, कितना माँगोगे ?"

टर्नहम—"ज़्यादा नहीं, सिर्फ़ दस हज़ार।"

कॉक—"यह रक़म तो बड़ी है।"

टर्नहम—"जेल से बच जाना भी तो बड़ी बात है।"

कॉक—"यह मालूम है कि जॉन डिक ही ने उस सेठ को लूटा है ?"

क्लाइव—"आपको यह कैसे मालूम हुआ ?"

कॉक—"आपकी बातों से। आपने जॉन डिक की हुलिया पढ़ी, और उस डाकू की। दोनो में बहुत कम अंतर है।"

क्लाइव—"हाँ, हम लोगों का भी यही ख़याल है।"

कॉक—"तो बस, फिर जॉन डिक को ठगना ज़रा मुश्किल मालूम होता है। मेरी साक्षात् जॉन डिक से एक बार हो चुकी है। मैं इँगलैंड में भ्रमण कर रहा था। लंदन से ऑक्सफ़ोर्ड जा रहा था। दोपहर थी, और जॉन डिक बात-की-बात में मेरी पॉकेट-बुक ख़ाली करा ले गया। उसमें क़रीब ३,००० पौंड के थे। उसके बाद जॉन

डिक का कहीं पता ही नहीं लगा। अब सुनने में आया है कि वह यहाँ तशरीफ़ लाए हैं।"

क्लाइव—"आपने तो जॉन डिक को देखा है। उसकी हुलिया कैसी है?"

कॉक—"क़रीब-क़रीब ऐसी ही, जैसा 'टाइम्स' में लिखा है, फ़र्क़ इतना है कि मैंने गालों में कोई चिह्न नहीं देखा है।"

क्लाइव—"इसमें तो लिखा है, मुमकिन है, बाद में घाव लगा हो।"

कॉक—"नहीं, यह सब उसकी चालाकी है, वह ऐसा रंग चढ़ा लेता है, जिससे मालूम होता है कि दाग़ है।"

टर्नहम—"मिस्टर कॉक! आपके गाल में क्या हुआ है?"

मिस्टर कॉक—"यहाँ की आबहवा बड़ी गर्म है, कुछ दाने-दाने पड़ गए थे, इसीलिये ऑपरेशन करवाया है।"

क्लाइव—"कुछ ज़हर शायद फैल गया था?"

कॉक—"हाँ, शायद ऐसा ही कुछ था। अभी देहरादून कितनी दूर है?"

क्लाइव—"अभी बहुत दूर।"

गाड़ी की गति मंद हो गई थी। शाहजहाँपुर आ गया।

मिस्टर कॉक रिफ्रेशमेंट कार की तरफ़ चले।

क्लाइव—"कहाँ जा रहे हैं मिस्टर कॉक?"

मिस्टर कॉक—"एक काम से जा रहा हूँ। मुझे यहीं रुक जाना पड़ेगा।"

मिस्टर कॉक शीघ्रता से प्लेटफ़ॉर्म के बाहर हो गए।

अभी मिस्टर कॉक को गए दो मिनट भी न हुए होंगे कि एक पुलिस-इंस्पेक्टर ने आकर क्लाइव से पूछा—"अभी-अभी इसी गाड़ी में एक और सज्जन थे। मालूम है, कहाँ गए हैं? लंबे-से थे और गालों पर एक पट्टी-बँधी हुई थी?"

टर्नहम—"हाँ, मिस्टर कॉक तो अभी थे, लेकिन अभी-अभी कहीं गए, और जाते समय कह गए हैं कि मुझे यहाँ कुछ काम है, वह मंसूरी जाने का इरादा कर रहे थे।"

पुलिस-इंस्पेक्टर—"किधर गए हैं?"

टर्नहम ने बता दिया।

क्लाइव—"क्यों साहब, वह कौन थे? आप क्यों उनकी तलाश कर रहे हैं?"

पुलिस-इंस्पेक्टर—"आप लोग सब अपनी चीज़ें देख लीजिए, आपके साथ इँगलैंड का मशहूर डाकू 'जॉन डिक' बैठा था।"

मिस्टर क्लाइव और टर्नहम ने एक स्वर में कहा—"कौन, जॉन डिक?"

पुलिस-इंस्पेक्टर—"हाँ, जॉन डिक। आज कई महीने से हिंदुस्थान-भर की पुलिस इसकी खोज में है, लेकिन हमेशा साफ़ निकल जाता है। पूने की डकैती भी इसी ने की है।"

क्लाइव—"नहीं, आप ग़लती कर रहे हैं, शायद उनका नाम मिस्टर कॉक है, यह देखिए, उनके नाम का कार्ड है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर—(हँसकर) "इस समय सी० वी० कॉक हैं शिकागो के आइरन-वर्क्स के प्रोप्राइटर, कल शायद जर्मनी या इटली के राजदूत होंगे, कौन जानता है? आप अपनी चीज़ें देख लीजिए।"

क्लाइव ने अपनी चीज़ें देख-भालकर कहा—"नहीं, कोई चीज़ नहीं गई है।"

पुलिस-इंस्पेक्टर चला गया। क्लाइव ने टर्नहम की ओर और टर्नहम ने क्लाइव की ओर देखा।

टर्नहम—"क्लाइव, शिकार हाथ से आकर निकल गया।"

क्लाइव—"किसे मालूम था, कि मिस्टर कॉक जॉन डिक हैं! अगर ज़रा भी मालूम हो जाता, तो पाँच हज़ार अपने थे।"

टर्नहम ने एक ठंडी निःश्वास ली।

देहरा-एक्सप्रेस धुआँ उड़ाता हुआ चल दिया।

(२)

निर्मल ने आँखें खोलकर चारो ओर देखा, और फिर बंद कर लीं।

उनकी आँखें खुलती हुई देख शांता और चपला के प्राणों में प्राण आए। मिस्टर माथुर और राजेश्वरी के हृदय से एक बोझ हट गया। डॉक्टर की आँखें चमक उठीं।

शांता ने अश्रु-भरे नेत्रों से पूछा—"नन्हे, बेटा, लाल, कैसी तबियत है?"

डॉक्टर ने चुप रहने का आदेश दिया। शांता निर्मल की ओर देखती हुई चुप हो गई।

मिस्टर माथुर ने बड़ी उद्विग्नता से पूछा—"डॉक्टर बोस, अब तो कुछ डर नहीं है?"

डॉक्टर बोस ने नाड़ी-परीक्षा करते हुए कहा—"अब तो कोई भय नहीं मालूम होता, लेकिन अच्छा होगा कि आप सबको यहाँ से हटा दें। अभी तक रोगी को ठीक से होश नहीं हुआ है। होश आने पर कोई अचानक शोक या हर्ष का धक्का न लगना चाहिए, नहीं तो डर है।"

मिस्टर माथुर—"चपला, तुम यहाँ से जाओ, और अपनी मा को भी साथ लेती जाओ।" फिर राजेश्वरी से कहा—"तुम भी जाओ, जाकर उनको धैर्य दो, अब कोई डर की बात नहीं।"

चपला ने अश्रु-भरे नेत्रों से निर्मल की ओर देखा, और फिर आँखें बंद कर लीं। निर्मल का चेहरा पीला पड़ गया था, आँखें बंद थीं, सिर पर और हाथों में पट्टी बँधी थी।

मिस्टर माथुर—"चपला, जाओ, और अपनी दोनो माजी को ले

जाओ। भय की कोई बात नहीं। तुम सुन चुकी हो, जो डॉक्टर साहब ने कहा है।"

डॉक्टर—"हाँ, मिस माथुर, इस समय जाइए। पूरी तरह से होश आने पर मैं आप बुला लूँगा।"

शांता—"डॉक्टर साहब, मुझे रहने दीजिए, मैं कुछ न बोलूँगी।"

डॉक्टर—"आपका रहना तो और ख़राब है! आप जाइए, होश होते ही मैं बुला लूँगा।"

शांता—"नहीं, मैं अपने जिगर के टुकड़े को छोड़कर कहीं न जाऊँगी।"

डॉक्टर—"माजी, आपके न जाने से मुमकिन है, मिस्टर सिनहा की तबियत ज़्यादा ख़राब हो जाय। उस हालत में क्या होगा, आप समझ सकती हैं।"

मिस्टर माथुर—"हाँ, आप चपला के साथ जायँ, उनके होश में आते ही आपको बुला लूँगा।"

चपला, शांता और राजेश्वरी चली गईं।

डॉक्टर उपचार करने लगा।

मिस्टर माथुर—"डॉक्टर बोस, चोट तो बड़ी गहरी लगी है।"

डॉक्टर बोस—"चोट ऐसी लगी है कि बचने की आशा तो नहीं, अगर बच जायँ, तो ईश्वर की कृपा समझना चाहिए।"

मिस्टर माथुर—"अगर सलाह लेने की आवश्यकता समझें, तो किसी और को बुलावें?"

डॉक्टर बोस—"नहीं, अगर मैं समझता, तो ज़रूर बुलवाता। अच्छा, आप किसी को बुला लें। डॉक्टर गुरहा को बुलवाइए।"

मिस्टर माथुर—"सिविल सर्जन?"

डॉक्टर बोस—"हाँ, उनके सिवा तो कोई अच्छा डॉक्टर मिलेगा नहीं।"

मिस्टर माथुर—"अभी बुलवाता हूँ।"

मिस्टर माथुर ने डॉक्टर गुरहा के नाम एक पत्र लिखकर एक नौकर के हाथ उनके बँगले पर भेज दिया।

डॉक्टर गुरहा पत्र पाते ही चल दिए।

डॉक्टर बोस ने डॉक्टर गुरहा को देखकर कहा—"देखिए, यह केस सीरियस हो रहा है।"

डॉक्टर गुरहा—"बात क्या है, ज़रा विस्तार से कहिए।"

मिस्टर माथुर—"यह मेरे मित्र के पुत्र हैं, बड़ा घनिष्ठ संबंध है। इनका नाम मिस्टर निर्मलचंद्र सिनहा हैं। आप इलाहाबाद में प्रोफ़ेसर हैं। मेरे साथ यहाँ आए हैं। आज सुबह यह और मेरी लड़की दोनो घूमने गए थे। घूमते-घूमते एक छोटे-से टीले पर चढ़ गए। टीले पर चढ़ना कुछ मुश्किल था, क्योंकि बिलकुल सीधा था, रास्ता कहीं से न था। चपला और यह दोनो चढ़ने लगे। चपला तो न चढ़ सकी, नीचे ही रही, लेकिन मिस्टर सिनहा चढ़ गए। जब वहाँ से उतरने लगे, पैर फिसल गया और नीचे गिर पड़े। गिरते ही बेहोश हो गए। ईश्वर की कृपा से और कई लोग उधर जा से रहे थे, वे लोग अपने कंधे पर ले आए। तीन-चार घंटे से डॉक्टर बोस कोशिश कर रहे हैं, लेकिन कुछ असर होता दिखलाई नहीं देता। अभी आध घंटे पहले ज़रा आँख खुली थी, लेकिन बेहोशी फिर आ गई, और अब तक नहीं टूटी।"

डॉक्टर बोस—"ब्रेन पर बड़ा बुरा धक्का पहुँचा है। बेहोशी किसी तरह दूर होती नज़र नहीं आती।"

डॉक्टर गुरहा—"केस तो सीरियस मालूम होता है।"

मिस्टर माथुर—"डॉक्टर गुरहा, हमें आप पर विश्वास है। आप इसे अच्छा कर दीजिए।"

डॉक्टर गुरहा ने नाड़ी और हृदय-गति की परीक्षा की। फिर

अपने दवा के बक्स में से दो-तीन दवाओं का मिक्श्चर बनाकर चम्मच से निर्मल को पिला दिया। लेकिन कुछ फ़ायदा होता न दिखलाई पड़ा। डॉक्टर गुरहा ने दूसरी बार वही दवा पिलाई, और स्थिर दृष्टि से रोगी का मुख देखने लगे। रोगी के माथे पर बल पड़ने लगे, मालूम होता था कि रक्त का प्रवाह मस्तक की नाड़ियों में बड़ी ज़ोर से हो रहा है। धीरे-धीरे पलकें भी हिलने लगीं, और निर्मल ने आँखें खोल दीं। अब की बार आँखें पूरी खुल गईं, और उन्होंने भरपूर दृष्टि से सबकी ओर देखा।

डॉक्टर बोस—"मिस्टर सिनहा।"

निर्मल ने ज़रा-सा ही सिर हटाया था कि कराहकर फिर आँखें बंद कर लीं।

डॉक्टर गुरहा—"आप के सिर में चोट लगी है, आप अपना सिर इधर-उधर मत हटाइए।"

डॉक्टर बोस—"अब एक तीसरी ख़ूराक भी दे दीजिए।"

डॉक्टर गुरहा ने तीसरी बार दवा पिलाई।

इस बार निर्मल ने चारो ओर देखकर पूछा—"मैं कहाँ हूँ?"

मिस्टर माथुर—"अपने घर में आप हैं। इस समय कैसी तबियत है?"

निर्मल—"सिर में बड़ी ज़ोर से पीड़ा हो रही है, कमरा घूम रहा है। चपला कहाँ है? उसके तो चोट नहीं लगी?"

मिस्टर माथुर—"नहीं, उसे चोट नहीं लगी। उसे बुलाऊँ क्या?"

निर्मल—"नहीं, रहने दीजिए। मा कहाँ हैं?"

मिस्टर माथुर—"वह भी भीतर हैं।"

डॉक्टर गुरहा—"मिस्टर माथुर, आप बहुत बात न करें। अब भी भय है। सेवा-सुश्रूषा ख़ूब होनी चाहिए, कहिए तो एक नर्स भेज दूँ?"

मिस्टर माथुर—"हम लोग सेवा-सुश्रूषा में कुछ कमी नहीं करेंगे। अपनी जान देकर भी इनके प्राण अगर बचा सकें, तो वह भी मैं करने को तैयार हूँ।"

इसी समय चपला दबे पाँवों आकर खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर पीलापन छाया हुआ था, आँखों में बेसुधी और उतावला-पन था। रोते-रोते, मौन-व्यथा सहते-सहते वे लाल हो रही थीं। वह निर्मल के सिरहाने खड़ी हो गई, और निर्निमेष दृष्टि से उन्हें देखने लगी।

डॉक्टर गुरहा—"आप तो सेवा करेंगे, लेकिन आपसे नहीं हो सकता। इस समय तो एक चतुर नर्स की आवश्यकता है, जो तन, मन, धन से इनकी सेवा करे।"

चपला—"आप नर्स न भेजिए, मैं सेवा करूँगी।"

चपला के स्वर में कंपन था, लेकिन दृढ़ता थी।

डॉक्टर बोस और गुरहा ने उसकी ओर देखा।

डॉक्टर गुरहा—"आपको विश्वास है कि आप रात-दिन इनकी सेवा कर सकेंगी?"

चपला—"हाँ।"

मिस्टर माथुर—"आप एक नर्स तो ज़रूर भेज दीजिएगा, क्योंकि नर्स की बात ही दूसरी होती है।"

डॉक्टर गुरहा—"आजकल नर्स यहाँ एक भी ख़ाली नहीं, यही तो मुश्किल है। देहरादून से बुलाई जायगी, और तब तक कोई चतुर स्त्री इनकी देख-भाल के लिये चाहिए।"

चपला—"डॉक्टर साहब, मैं तैयार हूँ। आप विश्वास रखिए, मैं जीवन-प्राण से इनकी सुश्रूषा करूँगी।"

निर्मल ने चपला को देखने के लिये सिर हटाया, लेकिन फिर कराहकर चुप हो गए।

डॉक्टर गुरहा—"आप यह दो ख़ूराक घंटे-घंटे-भर बाद पिला दीजिएगा, उसके बाद डॉक्टर बोस की सलाह से हम दूसरी दवा भेजेंगे। अब विशेष चिंता की कोई बात नहीं, इन्हें हिलने-डुलने न दीजिएगा।"

मिस्टर माथुर ने चपला की ओर देखा। चपला आशय समझ गई, और भीतर चली गई।

चपला को देखते ही शांता ने पूछा—"नन्हे को होश हुआ, अब उसकी तबियत कैसी है?"

चपला—"माजी, अब अच्छे हैं, डॉक्टर जा रहे हैं, तब आप भी चलिएगा, मैं फ़ीस दे आऊँ।" फिर राजेश्वरी से कहा—"मा, पचास के क़रीब रुपए दो।"

शांता—"चपला, मैं देती हूँ, ठहरो।"

यह कहकर शांता रुपए निकालने चली गई।

राजेश्वरी ने रुपए निकालकर चपला को देते हुए कहा—"जाओ, ले जाओ, नहीं तो वह आती होंगी।" चपला शीघ्रता से चली गई।

शांता ने रुपए लाकर पूछा—"चपला कहाँ गई?"

राजेश्वरी—"डॉक्टर को जल्दी थी, इसलिये मैंने दे दिए हैं।"

शांता ने एक मर्म-भेदी दृष्टि से राजेश्वरी की ओर देखा और कहा—"अच्छा, यह लो।"

राजेश्वरी—"दीदी, यह क्या, नन्हे क्या तुम्हारा ही है, हमारा नहीं?"

शांता—"लेकिन उसकी बीमारी में मैं ही रुपया ख़र्च करूँगी।"

राजेश्वरी—"अच्छा, अब ग़लती हो गई, आगे आप ही..."

शांता ने मेज़ पर रुपए रख दिए।

चपला ने वे रुपए मिस्टर माथुर को दे दिए, और उन्होंने उन

दोनो की फ़ीस दी। डॉक्टर चले गए। चपला डगमगाते पैरों से निर्मल के पास आकर खड़ी हो गई।

निर्मल ने हँसने की चेष्टा करते हुए कहा—"चपला, क्या है ?"

चपला का कंठ रुद्ध था। उससे उत्तर न देते बन पड़ा।

निर्मल—"चुप क्यों खड़ी हो चपला, अच्छा, मा को बुला लाओ।"

चपला चालित पुत्तलिका की भाँति चली गई। कमरे के बाहर होते ही मतवाले आँसू न रुके। वह किसी तरह उन्हें सँभाले हुए शांता के पास आकर उस कमरे की ओर इशारा कर दिया। उसके कंठ से बोल न निकला। शांता आशय समझ गई। शांता शीघ्रता से चली गई।

निर्मल ने कहा—"मा।"

शांता ने उत्तर दिया—"हाँ, बेटा।"

(३)

सेवा और सुश्रूषा प्रेम के द्योतक हैं। ये दो कमल विमल स्नेह और निःस्वार्थ प्रेम-सरोवर में ही खिलते हैं। जननी की सेवा वात्सल्य का द्योतक है, पत्नी की सेवा अनुराग और प्रेम की सृष्टि है, और एक अपर स्त्री की सेवा निःस्वार्थ प्रेम और अतीव मनुष्यत्व का चिह्न है। सेवा प्रेम का चिह्न है।

निर्मल को बीमार हुए दो रोज़ हो गए। चपला और शांता ने बड़ी तन्मयता से उनकी सेवा की है। रात और दिन अविराम रूप से सुश्रूषा की है। चपला शांता को सोने के लिये भेज देती, लेकिन आप न सोती। मिस्टर माथुर और राजेश्वरी दोनों चपला की इस तन्मयता पर आश्चर्य कर रहे थे। चपला का चेहरा यद्यपि पीला था, लेकिन उसमें जो उज्ज्वला और जंगमगाहट थी, वह शायद आज के पहले कभी न थी। आँखों में अलसता का चिह्न तक न था। उसका मुख वैसा ही था, जैसा रात्रि में कमल हो जाता है। रात्रि में कमल का सौंदर्य एक दूसरा रूप धारण करता है, जो

दिवस की सुंदरता से अगर श्रेष्ठ नहीं, तो किसी तरह कम भी नहीं होता।

अर्द्धरात्रि थी, समस्त संसार में नीरवता का राज्य था। शांता और चपला दोनो निर्मल के पास कुर्सी पर बैठी थीं। शांता के नेत्रों में नींद का आभास देखकर चपला ने कहा—"मा, तुम सो जाओ, मैं बैठी हूँ।"

शांता ने चौंककर कहा—"नहीं, तुम सो जाओ जाकर, तुम अभी लड़की हो, इतनी तकलीफ़ न करो, कल से सोई नहीं।"

चपला ने मधुर हँसी में कहा—"मा, तुम्हारा शरीर बुड्ढा है, इसीलिये तुम्हें सोने की ज़रूरत है। जब सवेरे तुम आ जाओगी, तो मैं सो रहूँगी।"

निर्मल ने धीरे-धीरे आँखें खोलकर कहा—"चपला, तुम सो रहो जाकर। मा, तुम भी जाओ। जागने की कोई आवश्यकता नहीं। मेरी तबियत अच्छी है।"

चपला और शांता ने उत्तर नहीं दिया। उनमें से कोई उठना नहीं चाहता था। कमरे में निस्तब्धता छा गई।

थोड़ी देर बाद चपला ने फिर कहा—"मा, मेरे कहने से तुम जाकर सो रहो। मेरी आँखों में अभी नींद नहीं है। मैं कल सो जाऊँगी। व्यर्थ अपने को कष्ट दे रही हो। दो आदमियों के जागने की ज़रूरत नहीं। और, अगर ज़्यादा नींद आ जायगी, तो मैं कुर्सी पर बैठे-बैठे सो जाऊँगी। मा, मेरे कहने से जाकर सो रहो।"

चपला ने इतनी अनुनय और विनय से कहा था कि शांता टाल नहीं सकी। वह उठकर धीरे-धीरे चली गई।

थोड़ी देर बाद निर्मल ने आँखें खोलकर कहा—"चपला, अभी तक तुम सोने नहीं गई?"

चपला—"माजी को भेज दिया है, मुझे अभी नींद नहीं है। मैं अभी नहीं सोऊँगी।"

निर्मल—"चपला ?"

चपला ने दृष्टि उठाकर निर्मल की ओर देखा। पुनः नज़र नीची कर ली।

निर्मल—"चपला, जाओ सो रहो, तुम कहीं बीमार न पड़ जाओ।"

निर्मल के स्वर में कंपन था।

चपला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रही।

निर्मल—"चपला, जाओ।"

उनके स्वर में दृढ़ता थी और आज्ञा की कठोरता।

चपला ने निरुपाय दृष्टि से निर्मल की ओर देखा, धीरे-धीरे उठी, और दबा हुआ रुदन-शब्द करके फिर बैठ गई। आँखों से आँसू गिरने लगे।

निर्मल—"चपला, तुम रोती हो ?"

उसके स्वर में प्रेम था।

चपला ने अपनी आँखें पोछ डालीं।

निर्मल—"चपला, रोती क्यों हो ?"

चपला चुप रही। उसमें इतनी शक्ति ही न थी कि वह उत्तर दे सके।

निर्मल—"चपला, अच्छा, न जाओ, बैठो। मैंने इसलिये कहा था कि तुम कहीं बीमार न पड़ जाओ।"

चपला—"मैं बीमार न पड़ूँगी, आप निश्चिंत रहिए।"

चपला के ओठों में एक हलकी हास्य-रेखा थी।

निर्मल ने पुनः अपनी आँखें बंद कर लीं। चपला कुर्सी उनके सिर के पास ले आई।

निर्मल ने पुनः एक ठंडी निःश्वास ली, और कहा—"हाँ।"

चपला—"अभी तक किसी को समय ही न मिला कि ख़बर दी जाय, और फिर मुझे भी याद न रहा।"

निर्मल—"अच्छा किया। ख़बर देने से लाभ! वह यहाँ आवेगी क्या? चपला, तुम पत्र न लिखना।"

चपला—"ख़बर देना ज़रूरी है, मैं कल पत्र लिखूँगी।"

निर्मल—"नहीं चपला, नहीं। उसे कष्ट न दो। चपला, तुम पत्र न लिखना।"

चपला ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति बता दी। चपला की आँखों में आँसू भरे थे, और निर्मल की आँखों से टप से व्यथा-समुद्र का एक कण गिर पड़ा। चपला ने अपना मुख फिराया, और निर्मल ने उमड़ते हुए बाँध को एक ठंडी साँस से रोकने का यत्न किया।

निर्मल—"चपला, मेरे सिर में बड़ी ज़ोर से पीड़ा हो रही है।"

चपला तड़ित्-वेग से उठ खड़ी हुई। उसके आँसू विलुप्त हो गए।

चपला ने इयूडीक्लोन की पट्टी सिर पर रखते हुए कहा—"आप उद्विग्न न होइए। सोने का यत्न कीजिए। अभी आप बहुत कमज़ोर हैं।"

निर्मल ने आँखें बंद कर लीं, और स्नेह से चपला के हाथ पर अपना हाथ रख दिया।

चपला के शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गई। शरीर रोमांचित हो गया। आँखें झिप गईं। हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा, मुख पर हलकी लालिमा आने लगी, पैर डगमगाने लगे, और समस्त शरीर में एक हलका-सा कंपन होने लगा।

निर्मल ने पुकारा—"चपला?" उनके स्वर में एक मृदु कंपन था।

चपला ने उत्तर दिया—"हाँ।" लेकिन स्वर इतना मंद था कि निर्मल के कानों तक न पहुँच सका।

निर्मल ने चपला का हाथ दबाते हुए कहा—"चपला, बोलती क्यों नहीं ?"

प्रेम के नशे का झोंका वेग से चपला को घुमाने लगा। चपला प्रेम के बेसुधी राज्य में भ्रमण कर रही थी। उसके मुख से कोई शब्द न निकला। लेकिन धीरे-धीरे आँखें खोलकर, एक झूमती हुई नज़र से देखकर आँखें फिर बंद कर लीं। उस एक दृष्टि में प्रेम का नीरव संदेश था। उस अकेली प्रेम-दृष्टि में प्रेम का संसार छिपा हुआ था।

चपला और निर्मल दोनो चुप थे। प्रेम नीरवता में अपना काम कर रहा था।

धीरे-धीरे निर्मल ने अपना हाथ हटा लिया। चपला भी होश में आने लगी। चपला का मुख लाल हो गया, उसको अपनी कमज़ोरी पर खेद हुआ। प्रेम ऐसी ही कमज़ोरियों की खोज में रहता है।

चपला ने इयूडीक्लोन के छींटे देकर पूछा—"अब कैसी तबियत है ?"

उसका कंठ रुद्ध था। स्वर साफ़ न था।

निर्मल ने मंद कंठ से उत्तर दिया—"अब कुछ आराम है।"

चपला सिर की पट्टी को और भिगोने लगी।

निर्मल—"चपला, अब रहने दो। तबियत अच्छी है। तुम जाकर सो रहो।"

चपला—"मैं सो रहूँगी, आप घबराइए नहीं।"

निर्मल चुप हो रहे, उनमें अब इतनी शक्ति न थी कि चपला की बात काट सकें।

थोड़ी देर बाद चपला ने कहा—"सिर दाब दू ?"

निर्मल—"नहीं, अब सिर में दर्द नहीं है। खिड़की खोल दो। गर्मी मालूम होती है।"

प्रेम-संसार में शिशिर और हेमंत आदि नहीं हैं। वसंत ही एक

ऋतु है। वसंत में थोड़ा कंपन और थोड़ी गुदगुदी होती है। कभी-कभी हलकी गर्मी बढ़ जाती है, और तब समीर के झोंकों की आवश्यकता पड़ती है।

चपला ने खिड़कियाँ खोल दीं। पहाड़ों की ठंडी हवा प्रेम का दृश्य देखने के लिये झूमती हुई घुस पड़ी।

चपला ने धीरे-धीरे निर्मल को लिहाफ़ उढ़ा दिया।

एक शाल से चपला भी अपना शरीर ढककर कुर्सी पर बैठ गई। निर्मल ने आँखें बंद कर लीं और चपला ने भी। चपला का शरीर अवसन्न था, प्रेम का नशा अब भी अपना काम कर रहा था। निर्मल ने आँखें खोलीं, और फिर बंद कर लीं। चपला ने भी आँखें खोलीं, देखा, और फिर बंद कर लीं। चपला सिर झुकाकर निर्मल को देखने लगी। उसकी गर्म निःश्वास ने निर्मल को जगा दिया।

निर्मल ने पूछा—"चपला, क्या है?"

चपला शर्म से लाल हो गई। वह शीघ्रता से सीधी हो गई।

निर्मल के ओठों पर एक मृदु मुस्कान थी। उन्होंने फिर पूछा—"चपला, तुम्हें क्या नींद नहीं है?"

चपला ने मंद और कंपित स्वर में कहा—"और तुम्हें क्या नींद नहीं है?"

चपला के जीवन में शायद यह पहली बार था, जब उसने निर्मल को 'तुम' कहा था। उसे अपनी इस धृष्टता पर आश्चर्य हुआ। लेकिन प्रेम-साम्राज्य में आश्चर्य करने की कोई वस्तु ही नहीं। जो इस संसार में सबसे अधिक आश्चर्य की वस्तु है, वह प्रेम-राज्य में एक साधारण घटना-मात्र है।

इसी समय कमरे की घड़ी ने एक-एक करके पाँच बजा दिए। चपला और निर्मल दोनो चौंक पड़े। इस घंटे के पहले उन्होंने और

कोई घंटा ही नहीं सुना था। घड़ी उसी कमरे में और उसी जगह थी, जहाँ इस समय थी, लेकिन सुनें कैसे? वे तो प्रेम-राज्य में थे।

(४)

उषा-काल और गोधूलि-वेला प्रकृति के दो सुंदर रूप हैं। असीम शांति और नीरव स्पंदन दोनो इसी समय निवास करते हैं। नसीम-सहरी के झोंके अगर कमल की बंद पँखुड़ियाँ खिलाते हैं, तो मानव-हृदय को भी सांत्वना और सहानुभूति प्रदान करते हैं। उनके हृदय में गुदगुदी और प्रफुल्लता का जन्म देते हैं। मनुष्य अपना अस्तित्व इस समय भूल जाता है, और एक नए संसार में प्रवेश करता है, जहाँ न शोक है न दुःख है, न कलह है और न भाव-विद्रोह—एक अखंड शांति और नीरव स्पंदन का समृद्धिशाली राज्य होता है। इस काल में यदि प्रकृति का सौंदर्य भी विद्यमान हो, तो स्वर्ग की कल्पना धरातल में की जा सकती है।

प्रेम का प्रवाह जल-प्रपात के प्रवाह से भी अधिक वेगशाली और भयंकर है। इसमें बाँध काम नहीं देता। जहाँ एक बार भी बाँध टूट गया, तुरंत ही प्रवाह अपना अंतिम उग्र रूप धारण करता है, और फिर तब रोके नहीं रुकता। बाँध का टूटना है प्रेम का प्रत्युत्तर मिलना। उषा-काल था। चपला डगमगाते पैरों से कमरे के बाहर हुई। हवा का एक झोंका लगा, और बंद आँखें अधखुली हो गईं। बाह्य कंपन से हृदय में भी कंपन पैदा हो गया। नशा कम हुआ, और वह झूमती हुई बाग़ में चली गई। प्रेमियों को प्रकृति ही शांति देती है।

चपला खिले हुए गुलाब-निकुंज के पास खड़ी हो गई। फैली हुई गुलाब की बेल की फुनगियाँ चपला के पीले कपोल चूमने लगीं। पीले फूल उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। वह मौन सहानुभूति देने लगे। प्रकृति मौन संदेश ही देती है, शब्द, झंकार और वायु

में कंपन पैदा करने की आवश्यकता नहीं होती, प्रकृति का संबंध हृदय से होता है। हृदय को शब्द की आवश्यकता नहीं होती। न-मालूम कौन शक्ति उनके बीच में विचार-वाहक का काम देती है। वैज्ञानिक इसकी खोज में हैं, लेकिन अभी तक पता नहीं लगा।

दृष्टि और मुख, ये दो हृदय के विश्वासघाती विभीषण हैं। हृदय का गुह्यतम भेद मौक़ा पाते ही खोल देंगे, एक दीठि ही प्रेम का परिचय दे देती है। मुख पर हृदय के भाव अंकित रहते हैं। प्रेमिक का मुख कभी छिप नहीं सकता, प्रेमिका जान जाती है कि वह भी उसे चाहता है। प्रेम मौन भाषा में ही अपना आधिपत्य जमाता है। प्रेम की भाषा क्या है, यह आज तक किसी को नहीं मालूम हुआ।

चपला ने अपने नन्हे और नाज़ुक हाथों से एक फूल तोड़ लिया। सूँघा, एक भीनी और मीठी सुगंधि थी। गुलाब पीला था। चपला उसकी एक-एक पँखुड़ी देखने लगी, उनके बीच में उद्गारों का एक समुद्र छिपा हुआ था, जो प्रकृति का मौन संदेश लेकर पृथ्वी पर अवतीर्ण हुआ था और अपना काम समाप्त करके मृत्यु की राह देख रहा था, क्योंकि असीम शांति का अंतिम रूप मृत्यु है।

समय और स्थल देखकर मानव-जाति अपने हृदय के उद्गार प्रकट करती है। समय और स्थल मनुष्य के हृदय में गुदगुदी पैदा करते हैं, और उस हँसी में वह अपना हृदय खोल देता है। नशे में आदमी सब कुछ कह जाता है, कभी-कभी वह बात भी निकल जाती है, जिसे वह छिपाकर रखना चाहता था। प्रेम का नशा सब नशों से भयंकर है। जिस किसी ने किसी मतवाले साक़ी के हाथों का प्रेम-प्याला पिया, उसमें ऐसी मादकता आ जाती है, जिसमें वह संसार, लाज और हया को तिलांजलि दे देता है। मस्त, झूमता, अपनी प्रेम-डफली बजाता हुआ अपना राग अलापता है। दुनिया उसे पागल समझती है। क़ैस और फ़रहाद भी तो

दुनिया की नज़रों में दीवाने थे। दुनिया नहीं जानती कि प्रेम का अंतिम रूप दीवानापन है। प्रेम के नशे में सोमरस का मज़ा है।

मनुष्य जीवन की एक घटना कभी नहीं भूलता—प्रथम प्रेम! प्रथम प्रेम की साधारण-से-साधारण घटना मृत्यु की अंतिम घड़ी तक याद रहती है। यह नहीं मालूम कि मृत्यु के बाद भी उसे याद रहता है या नहीं। शायद नहीं, क्योंकि मृत्यु विस्मृति का अंतिम रूप है।

अभी सुबह की सफ़ेदी फैली न थी। एक हलका साँवलापन अभी तक था। चपला धीरे-धीरे फिर निर्मल के कमरे में चली आई। कमरे में पैर रखते ही हृदय में कंपन पैदा हुआ। वह थरथराई, ठिठकी, और दबककर खड़ी हो गई। इस समय न-मालूम क्यों उसे लज्जा लगने लगी। उसके जी में आया कि वह भाग जाय, उनको अपना मुख न दिखलावे, लेकिन भागने के लिये उसके पैर न उठते थे। निर्मल को हिलता-डुलता न देखकर चपला ने जाना कि वह शायद सो रहे हैं। सोता जानकर उसके मन में साहस का संचार हुआ। वह दबे पैरों से कमरे में आई, और निस्पंद हृदय से निर्मल का मुख देखने लगी। न-मालूम उसमें आज कौन-सा भुवन-मोहन सौंदर्य था, वह एकटक उनका रूप निहारने लगी। आज एक अजीब आकर्षण था, जो धीरे-धीरे चपला को अपनी ओर खींच रहा था। चपला की शक्ति धीरे-धीरे कम हो रही थी, और एक विचित्र बेसुधी और नशे का-सा गुलाबी सुरूर चढ़ रहा था। उसकी आँखें झिपी जा रही थीं, और वह ज्यों-ज्यों उनकी ओर देखती, त्यों-त्यों अपने आपे से बाहर हुई जाती थी। निर्मल का मुँह सूख गया था, गाल सफ़ेद पड़ गए थे और शरीर पीला। लेकिन एक अद्भुत आकर्षण था। चपला झुकी, और फिर सीधी हो गई। उसका हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा, रक्त शरीर-तंतुओं से बड़े वेग से प्रवाहित होने

लगा, युगल कपोल लाल हो गए। उसने चारो ओर देखा, समीर के झोंके उसके निष्फल प्रयास पर मुस्किरा रहे थे।

नशा फिर चढ़ने लगा। नशे का दूसरा झोंका पहले से अधिक बेहोशी पैदा करता है। चपला पहले से अधिक बेहोश हो गई। आँखें आधी से ज़्यादा छिप गईं। शरीर-भर में तडित्-प्रवाह ज़ोरों से घूमने लगा। वाह्य संसार का ज्ञान तनिक भी न रह गया। हृदय में एक विचित्र भाव पैदा हुआ—उसमें सुरा का आवेश था। वह झुकी, और निर्मल के सूखे अधरों पर एक चुंबन का पवित्र चिह्न अंकित कर दिया। प्रकृति खिलखिला पड़ी, और आलोक-रश्मियाँ इस दृश्य को देखने के लिये खिड़की से आने लगीं। कमरा गंगा-जमुनी प्रकाश से चमक उठा। निर्मल ने आँखें खोल दीं। उनके शरीर में बिजली दौड़ रही थी, कंपन और रोमांच हो रहा था।

उन्होंने चपला का हाथ पकड़ लिया। चपला चौंक पड़ी। नशा उतर गया, और उसे अपनी स्थिति का ज्ञान आया। वह हया से कट गई। उसे अनुमान तक न था कि वह जाग जायँगे और उसकी यह सुधा-चोरी पकड़ लेंगे। चोर को यदि यह मालूम हो कि वह पकड़ जायगा, तो चोरी क्यों करे, लेकिन पकड़ा तो वह धोके में जाता है। जब उसे विश्वास रहता है कि वह पकड़ा न जायगा, उसी समय वह पकड़ा जाता है। चपला पकड़ गई।

निर्मल ने हाथ पकड़कर, बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"चपला!"

चपला पानी-पानी हो गई। उसके मुख से उत्तर न बन पड़ा। वह माता मेदिनी की ओर उसी भाँति देखने लगी, जैसे अतीत काल में जनकनंदिनी सीता ने देखा था। उनकी प्रार्थना से पृथ्वी फट गई थी, लेकिन चपला की कातर दृष्टि से उसका हृदय न हिला। वह वैसे ही अपना कठोर रूप धारण किए रही। चपला अपने पैर के नखों से फ़र्श का पत्थर खुरच रही थी।

निर्मल ने चपला का हाथ दबाते हुए कहा—"चपला !"

अब की उनके स्वर में कंपन, आवेग और मतवालापन था।

उन्होंने अपने नेत्र खोल दिए, और चपला का सौंदर्य-पान करने लगे।

उन्होंने तीसरी बार कहा—"चपला !"

चपला की बुद्धि वापस आ गई। उसने वेग से अपना हाथ छुड़ा लिया, और बिजली की तेज़ी से कमरे से बाहर हो गई।

निर्मल ने एक बार फिर पुकारा—"चपला !"

लेकिन चपला ने कर्ण-पात नहीं किया। वह चली गई।

निर्मल के चेहरे पर एक मलिन हास्य-रेखा दिखाई पड़ी। उन्होंने अपनी आँखें बंद कर लीं। मंद मुस्कान अब भी थी।

चपला कमरे के बाहर आई। उसके पैरों में अब वह शक्ति न रही। वह घास पर गिर पड़ी। ओस-कण उसे सांत्वना देने लगे। उसके ओठों में जलन थी, लेकिन उस जलन में भी मन-मोहकता थी। उसमें वह मीठा-मीठा दर्द था, जो दुख की जगह शांति और सुख देता था। उसे मालूम हुआ कि उर के ओठों में कुछ लगा है। उन्हें उसने चूसा। उसे एक विचित्र स्वाद मिला। वह पुलकित हो गई। लज्जा धीरे-धीरे प्रभाव जमा रही थी। उसने अपना मुख हरी-हरी दूब में छिपा लिया।

ओस-कण उसके अधर चूमने लगे। चपला सोचने लगी—"एक ही चुंबन में यह आनंद! मुझे न मालूम था कि चुंबन में इतना आनंद छिपा हुआ है। तभी तो चुंबन प्रेम का प्यारा सहचर है। चुंबन हृदय-स्पंदन का मौन संदेश और प्रेम-गुंजन का लहराता हुआ कंपन है—प्रेमाग्नि का ताप और दो हृदयों के मिलन का छाप है।

"चुंबन उद्गार-सिंधु का फेन है, और नए जीवन का प्रारंभ। ऐ प्रेम के प्रथम चुंबन, मैं तुम्हें अपने हृदय में छिपा रक्खूँगी, और तुझे अपने स्मृति-मंदिर में मूर्ति बनाकर स्थापित करूँगी। यही एक चुंबन मेरे जीवन का अवलंब होगा।

"मैं विश्वासघातिनी हूँ। अपनी प्यारी सखी के साथ विश्वास-घात किया है। उसकी प्राप्य वस्तु मैं अपहरण कर रही हूँ। इस नाटक का अंत यहीं होना चाहिए। मैं धीरे-धीरे उनको उनके ऊँचे स्थान से गिरा रही हूँ, और पाप के गहरे गड्ढे की ओर लिए जा रही हूँ। हाय! वह रात्रि मेरे जीवन की सबसे सुखमय रात्रि थी। अब यह सुख न मिलेगा? प्रभात-काल के साथ सुख और सुहाग का अंत हो गया। मेरे भाग्य में सुख नहीं है। यदि सुख होता, तो मैं उनको न पाती? वह तो किसी दूसरे के हैं, उसे वह तन-मन से प्यार करते हैं। यह एक कमज़ोरी थी, जिससे उन्होंने मेरा हाथ पकड़ लिया था, लेकिन वह कितने लज्जित हुए। उनके अंतिम वार के स्वर में हलके तिरस्कार का एक छींटा था।

"उन्होंने मुझे क्या समझा होगा। मैं उनकी नज़रों में गिर गई। वह मुझे आदर्श स्त्री मानते थे, भगिनी का-सा स्नेह रखते थे, और मित्र का-सा व्यवहार! मैं अब उनकी नज़रों में क्या हूँ। एक साधारण रमणी, शायद उससे भी हीन! एक ही क्षण में क्या से क्या हो गया। पतन तो एक ही क्षणिक आवेश में होता है। यह क्या पतन है! पतन कैसे? प्रेम पाप नहीं। उनसे पूछ चुकी हूँ, वह कहते हैं, प्रेम पाप नहीं। मेरा प्रेम निस्स्वार्थ है, मैं अपना स्वार्थ नहीं चाहती। मैं उनको छीनूँगी नहीं, अपने स्वार्थ के लिये मैं उन्हें अपने चरित्र के उच्च स्थान से न गिराऊँगी। अगर मैं उनसे प्रेम करती हूँ, तो वह मेरे हैं ही। इस लोक में न सही, कहीं-न-कहीं तो मिलेंगे ही! तब उनके पैरों से लिपट जाऊँगी, और उनकी चरण-धूलि सिर में लगाकर अपना जीवन कृतार्थ करूँगी।

"कुमुद बड़ी अभागिनी है। हाय! इस अमूल्य धन को निर्मूल्य समझती है! निर्मूल्य इसलिये समझती है, क्योंकि उसे विश्वास है कि वह अपना है। मनुष्य अपनी वस्तु की क़द्र नहीं करता।

कुमुद अबोध है, उसे नहीं मालूम कि उनका मूल्य क्या है? लेकिन, तब भी उनको उसी अबोध के हाथों में सौंपना पड़ेगा। यह अधिकार मुझे नहीं कि मैं उसका धन ले लूँ। अबोध है, इसलिये मैं और नहीं ले सकती। निर्बोध का धन छीन लेना महापाप है।

"मैं इतना डरूँ क्यों? चरित्र-दृढ़ता और भविष्य-मिलन की आशा मुझे बल देगी। उनकी मूर्ति तो मेरे मन में अंकित रहेगी, बस मेरे लिये उतना ही यथेष्ट है। निःस्वार्थ प्रेम के लिये बस इतना ही काफ़ी है। भगवान् को न देखकर भी तो उनकी भक्ति की जाती है। भक्त भक्ति क्यों करता है? उनको पाने के लिये। बस, मैं भी आज से उनकी पूजा करूँगी। यदि आराधना से भगवान् मिलते हैं, तो वह भी मुझे कभी-न-कभी मिलेंगे। भक्ति से भगवान् प्रसन्न होते हैं, और भक्ति प्रेम का अंतिम रूप है, इसलिये वह भी मुझे मिलेंगे।

"भगवान्! मुझे बल दो, साहस दो, शक्ति दो, और आत्म-दृढ़ता तथा-दमन-शक्ति दो। इस स्वार्थ और इच्छा को पास न फटकने दूँ। दयामय, दया करो।"

चपला मौन हो गई। हरी-हरी घास ने उसके मन में नव-स्फूर्ति का संचार किया। बाल-सूर्य की किरणों ने सहनशीलता और उत्सर्ग दिया। प्रातःकाल की समीर ने दृढ़ता का संदेश दिया, और निद्रा ने विस्मृति का।

चपला सो गई।

(५)

कुमुदिनी ने बड़े वेग से लज्जावती के कमरे में प्रवेश किया। लज्जा चौंक पड़ी, और अवाक् होकर कुमुदिनी की ओर देखने लगी। कुमुदिनी के मुख पर विषाद-कालिमा थी। आँखें आँसुओं से भरी थीं, और विषम वेदना से वक्षःस्थल बार-बार ऊँचा-नीचा हो रहा था। कुमुदिनी बड़े वेग से लज्जा से लिपट गई, और फूट-फूटकर रोने

लगी। लज्जावती घबरा गई। उसने सप्रेम पूछा—"क्या हुआ बहन, रोती क्यों हो?"

कुमुदिनी ने कुछ उत्तर न दिया, वह और रोने लगी। सहानुभूति दुख बढ़ाती है, घटाती नहीं।

लज्जा ने सप्रेम कुमुदिनी की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्यों बहन, बोलो, बात क्या है?"

कुमुदिनी ने एक पत्र लज्जा को दे दिया। लज्जावती पढ़ने लगी—

मंसूरी

प्रिय कुमुद,

यह दूसरा पत्र मैं तुम्हें लिख रही हूँ। मैं दूसरी बार कहती हूँ, और अब की बार दृढ़ता से, इतनी दृढ़ता से, जितना मैं कह सकती हूँ, कि तुम अभागिनी हो। न-मालूम किस पाप से दैव ने तुम्हें ऐसी अभागिनी बनाया है।

मैंने अपने पहले पत्र में लिखा था कि तुम यहाँ चली आओ। अपने स्वामी और अपनी सासजी की चरण-रज लेकर अपना जीवन कृतार्थ करो, लेकिन तुमने मेरी बात पर ध्यान न दिया। न-मालूम क्यों मुझसे नाराज़ हो गईं। पत्र का उत्तर तक नहीं दिया। मैं इसे नाराज़ी या प्रसन्नता समझूँ।

अबोध, आज तुम्हारे लिये एक बड़ा भारी विषाद-पूर्ण समाचार है। मिस्टर सिनहा आज तीन दिन से बीमार पड़े हैं। एक पहाड़ी पर से फिसल जाने के कारण उनका सिर फट गया है, और हाथ-पैर में भी चोट आई है। गिरने के बाद छ घंटे बेहोश रहे, जीवन की आशा न थी, लेकिन भगवान् की कृपा से वह अब अच्छे हैं। घाव अभी तक नहीं भरा है। दवा बराबर हो रही है। आशा है, थोड़े दिनों में तबियत अच्छी हो जायगी।

उनकी दशा सुनना चाहती हो, सुनो। मुख सूख गया है, आँखें भीतर धुस गई हैं, गाल पीले पड़ गए हैं, शरीर दुर्बल हो गया है। अब वह श्री नहीं रही, जो आज के कुछ दिन पहले थी। वह इतने निःशक्त और निर्बल हो गए हैं कि अपने आप हिल-डुल नहीं सकते। अभिमानिनी! क्या इस दुर्दिन में भी अभिमान किए रहेगी? अभिमान छोड़ दे। वायु-वेग से आकर अपने इस अमूल्य धन की रक्षा कर, नहीं तो अंत में पश्चात्ताप के अतिरिक्त और कुछ न मिलेगा। अपने पापों का प्रायश्चित्त कर ले आकर, यही समय है। मनुष्य के जीवन में अवसर केवल एक बार आता है। जो उसको खो देता है, वह मूर्ख है, और आजन्म पछताता है!

कुमुद, पति के पास जाने में लज्जा, भय, अपमान का ध्यान न रहना चाहिए, पिता और भाई को भी त्याग देना चाहिए। स्वामी स्त्री का इस जन्म और पर-जन्म का साथी है। स्वामी स्त्री की लाज है, और लाज स्त्री का आभूषण। स्त्री लज्जा कभी नहीं त्यागती, इसलिये स्वामी को भी नहीं त्याग सकती। तुम इस समय लज्जा-विहीन हो, क्योंकि स्वामी से दूर हो, पिता की रोटियों में पड़ी हो। अपने घर में आओ। सुहागिनी बनो।

मूर्ख, अभी तक तुमने उन्हें नहीं पहचाना! तेरी आँखों में कौन पर्दा पड़ा है, अभिमान का या निर्बुद्धिता का। अरे, अब तो इस पर्दे को हटा दे। कुमुद, आओ, आकर अपनी निधि सँभालो, नहीं तो डाकू लूट लेंगे। तुम आकर उनकी रक्षा करो।

कुमुद, तुम बुद्धिमान् हो, इतने से समझ जाओगी। शीघ्र आओ, वह भी उत्सुक हृदय से तुम्हारी राह देख रहे हैं। उनके हृदय में तुम्हारे प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा है। वह तुम्हें बहुत प्यार करते हैं, और तुम ठुकराती हो। कुमुद, यह अंतिम बार लिख रही हूँ कि तुम आओ, मैं उत्सुकता से तुम्हारी राह देख रही हूँ।

तुम आओ, तो तुम्हारे हाथों में यह भार देकर मैं निश्चिंत होऊँ।

तुम्हारी स्नेहमयी सखी,
चपला

कुमुदिनी उत्सुकता से लज्जा का मुख देख रही थी। लज्जा ने पत्र पढ़कर कुमुदिनी की ओर देखा। आँखें चार हुईं। एक की आँखों में विषाद था, और एक की आँखों में दया।

कुमुदिनी—"अब क्या कहती हो?"

लज्जा—"तुम जाओ।"

कुमुदिनी—"मैं जाकर वहाँ क्या करूँगी?"

लज्जा—"क्यों, अपने धन की रक्षा करना, और क्या करोगी।"

कुमुदिनी—"लेकिन, क्या मेरा धन अभी तक सुरक्षित है? वह तो अब तक लुट गया होगा।"

लज्जा—"नहीं, अब भी समय है। पत्र तो यही कह रहा है।"

कुमुदिनी—"चोर चोरी करने के बाद पुकारता है कि चोरी हो गई।"

लज्जा—"यह ठीक है, लेकिन चोर केवल अनुमान से नहीं क़रार दिया जाता। जिसको चोर कहा जाता है, उसका चरित्र पहले देखा जाता है।"

कुमुदिनी—"तो तुम समझती हो, क्या चपला चोर नहीं हो सकती?"

लज्जा—"मुझे विश्वास नहीं होता। चोर अपनी चोरी का माल सहज ही में उसके मालिक को सौंप नहीं देता। यह जानती हो?"

कुमुदिनी—"लेकिन बाह्य आडंबर भी तो कुछ हुआ करता है। कभी-कभी चोर चोरी के बाद अपनी सफ़ाई के लिये ऐसे-ऐसे ढोंग रचा करता है।"

लज्जा—"हाँ, रचता है, लेकिन सब नहीं।"

कुमुदिनी—"कौन बात चपला में ऐसी है, जिससे वह ग्रह नहीं कर सकती?"

लज्जा—"उसका विवेक और बुद्धि।"

कुमुदिनी—"प्रेम विवेक और बुद्धि का नाश करता है। प्रेम अंधा होता है।"

लज्जा—"लेकिन ग्लानि और पश्चात्ताप दोनो अंधेपन को मिटाते हैं।"

कुमुदिनी—"चोरी हो जाने के बाद ग्लानि और पश्चात्ताप आते हैं, पहले नहीं।"

लज्जा—"तुम्हें क्या अपने धन की सुरक्षिता में विश्वास नहीं?"

कुमुदिनी—"विकट और चालाक चोर बड़े-से-बड़े और मज़बूत-से-मज़बूत ताले तोड़ डालते हैं।"

लज्जा—"लेकिन चरित्र का ताला तोड़ना उतना सहल नहीं।"

कुमुदिनी—"जब तक चरित्र की देख-रेख करनेवाला नहीं रहता, तब तक वह सुरक्षित नहीं कहा जा सकता।"

लज्जा—"तब चरित्र का कोचवान क्यों न जाय?"

कुमुदिनी—"घोड़े बिगड़ गए हैं, कोचवान अब कुछ नहीं कर सकता।"

लज्जा—"चतुर कोचवान सब कुछ कर सकता है।"

कुमुदिनी—"अगर घोड़े उसके क़ाबू के बाहर हो गए हों, तब क्या?"

लज्जा—"वह धैर्य धरे हुए उनकी राह देखेगा कि कब वे क़ाबू में आते हैं। चतुर कोचवान निराश नहीं होता। घोड़े तो बिगड़ा

ही करते हैं, लेकिन कोचवान उन्हें अपने वश में रखता है। इतना बड़ा हाथी एक चतुर फ़ीलवान से उसकी इच्छा पर नाचता है।"

कुमुदिनी—"कोचवान के पास कोड़े, और फ़ीलवान के पास अंकुश होता है।"

लज्जा—"और स्त्री के पास सेवा और मीठे वचन होते हैं।"

कुमुदिनी—"लेकिन रूठे हुए और क्रुद्धित के विरुद्ध सभी निष्फल होते हैं।"

लज्जा—"'वसीकरण एक मंत्र है, परिहरु वचन कठोर।' सेवा और सहनशीलता तो पशु को भी अपने वश में कर लेते हैं।"

कुमुदिनी—"लेकिन सब पशु एक तरह के नहीं होते।"

लज्जा—"हाँ, लेकिन वश में सब हो जाते हैं, कोई देर में और कोई जल्दी।"

कुमुदिनी—"तब मैं जाऊँ क्या ?"

लज्जा—"हाँ, ज़रूर जाओ। ऐसे समय अगर तुम जाओगी, तो उनको तुम जीत ही नहीं लोगी, बल्कि आजन्म अपना दास बनाए रहोगी।"

कुमुदिनी—"यह मैं नहीं चाहती ; यह सुख आपको ही मुबारक हो। मैं तो केवल उनको अपना करना चाहती हूँ।"

लज्जा—"यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप उन्हें उँगलियों पर नचाना नहीं चाहतीं।"

कुमुदिनी—"पर मेरे जाने में तो एक बड़ी आफ़त यह है कि बाबू-जी आज्ञा तो नहीं देंगे। फिर उनका भी कोई पत्र उनके पास नहीं आया है। इतनी घटनाएँ हो जाने के बाद वह कैसे मुझे जाने देंगे ?"

लज्जा—"अगर वह यह कहीं जान गए कि तुम जा रही हो, तो वह तुम्हें कभी न जाने देंगे।"

कुमुदिनी—"यही तो मैं भी सोच रही हूँ, वह कभी इतना

अपमान नहीं सह सकते। मैं भी उनके सामने जाने का प्रस्ताव नहीं रख सकती। भैया अगर चाहें, तो भले ही कह सकते हैं।"

लज्जा—"वह शायद यह बात न कहेंगे।"

कुमुदिनी—"क्यों ?"

लज्जा—"यह बात न पूछो, तुम्हें दुख होगा।"

कुमुदिनी—"कहो, मैं इस समय सब सहने को तैयार हूँ।"

लज्जा—"उनसे और बड़े बाबू से इसी विषय को लेकर कहा-सुनी हो गई थी।"

कुमुदिनी—"कब ?"

लज्जा—"तुम्हारे आने के दो-तीन महीने बाद।"

कुमुदिनी—"साल-भर से ज़्यादा हो गया क्या ?"

लज्जा—"हाँ, और क्या।"

कुमुदिनी—"क्या बात थी ?"

लज्जा—"न पूछो बहन, बहुत दुखी होगी।"

कुमुदिनी—"नहीं, मैं इस समय सब सहने को तैयार हूँ।"

लज्जा—"बात यह थी कि बड़े बाबू तुम्हारा दूसरा विवाह करना चाहते थे।"

कुमुदिनी की आँखें पथरा गईं। वह आश्चर्य से लज्जा की ओर देखने लगी।

लज्जा कुमुदिनी की ऐसी दशा देखकर डर गई। उसने कुमुदिनी को हिलाकर कहा—"क्या हो गया ?"

कुमुदिनी ने चौंककर कहा—"क्या कहा भाभी, फिर कहना, बाबू मेरा दूसरा विवाह करना चाहते थे ?"

लज्जा—"हाँ, दूसरा विवाह। तुम्हारे भाई ने इसका विरोध किया था, तो वह बोले कि मैं किसी तरह भी नहीं मान सकता। रानी का दूसरा विवाह होगा ही। मिस्टर वर्मा तुम्हारे दूसरे पति होनेवाले थे।"

कुमुदिनी—"पर मुझे विश्वास नहीं होता कि बाबू......?"

लज्जा—"यह ठीक है, विश्वास जब तक न हो, तभी तक अच्छा है।"

कुमुदिनी—"तुम्हारा ही कहना ठीक है भाभी, तभी बाबूजी मुझे मिस्टर वर्मा से मिलने के लिये बाध्य करते थे। तब मैं न जानती थी कि इसका कारण क्या है? लेकिन अब जान लेने से सब साफ़ हो गया। मिस्टर वर्मा को हमारे और उनके झगड़े का हाल मालूम था। बाबू ने ही कहा होगा। वह इतनी मूर्खता कर सकते हैं, यह मुझे स्वप्न में भी अनुमान न हुआ था। उन्होंने यह कैसे ठीक कर लिया कि मैं विवाह करने के लिये तैयार हो जाऊँगी?"

लज्जा—"उन्हें विश्वास था कि तुममें और तुम्हारे स्वामी में प्रेम बिलकुल नहीं है। वह तुम्हें सुखी करना चाहते थे, इसीलिये वह तुम्हारा दूसरा विवाह करना चाहते थे। देखती नहीं हो, मिस्टर वर्मा की मृत्यु के बाद वह कैसे मलीन रहते हैं?"

कुमुदिनी—"मैं क्या कहूँ भाभी, मेरे हृदय में इस समय हज़ारों बिच्छू डंक मार रहे हैं।"

लज्जावती ने कुमुदिनी की ओर देखकर मन-ही-मन कहा—पश्चात्ताप सुधार का चिह्न है।

कुमुदिनी—"भाभी, मैं आज ही जाऊँगी, चाहे जैसे हो, आज ही जाऊँगी।"

लज्जा—"अच्छा, मैं तुम्हारे भाई साहब से कहती हूँ।"

कुमुदिनी उठकर चली आई। अपना कमरा बंद करके पलँग पर लेट गई। उसके हृदय में संग्राम मचा हुआ था। संग्राम में रक्त की नालियाँ बहने लगती हैं—कुमुदिनी के आँसू झर-झर गिरने लगे। वह सोचने लगी—"मेरा दूसरा विवाह! उफ़! कितना

घृणास्पद प्रस्ताव है ! मैं अब यहाँ नहीं रह सकती। आज के पहले यदि मालूम हो जाता, तो अब तक मैं कब की चली गई होती। मिस्टर वर्मा के व्यवहार एक-एक करके सब याद आ रहे हैं। अगर बाबूजी का यह विचार न होता, तो क्या मिस्टर वर्मा से मिलने-जुलने के लिये इतना बाध्य करते ! मैं कितने बहाने करती, और उन सबको सुनी अनसुनी कर जाते। मिस्टर वर्मा को यह बात मालूम थी, नहीं तो क्या वह इतना साहस कर सकते। उनके सामने जाली नाम से मुझे उपहार दिया ! यह मैंने बड़ा अच्छा किया कि उपहार ठुकरा दिया ! न-मालूम क्यों शुरू से ही उनके प्रति घृणा हो गई थी। मैं उनकी सूरत देखना नहीं पसंद करती थी।

"मुझे जाना पड़ेगा ? हाँ, इस समय जाना बहुत ज़रूरी है। वह बीमार हैं। चपला उनकी सेवा-सुश्रूषा करती है। मुझे पहले ही से शक था कि चपला उनसे प्रेम करती है, अब विश्वास हो गया। वह चाहे जितना छिपावे, प्रेमी का हृदय नहीं छिपता। एक-न-एक बात, भाव उसके हृदय का पता दे ही देता है। स्त्री स्त्री के मन की बात तुरंत जान जाती है। चपला से उनकी रक्षा करनी है।

"उनका चरित्र उज्ज्वल है, दृढ़ है। मुझे विश्वास नहीं होता कि चपला उन पर अपना माया-जाल फैला सकती है। चाहे जो कुछ हो, वह मुझे प्यार करते हैं, और प्यार करते हैं अपने प्राणों से भी अधिक। वास्तव में मैं अभागिनी हूँ। अभागिनी न होती, तो यहाँ आकर बाप की रोटियों में पड़ी रहती ? अपने घर जाने में कौन लज्जा, कौन भय और कौन हिचकिचाहट ? सासजी तो देखते ही फूली न समाएँगी, और वह भी प्रसन्न होंगे। मैं जाऊँगी।

"पिता, क्षमा करना, इस अभागिनी को क्षमा करना। मेरे हृदय में इतना साहस नहीं कि मैं जाकर कहूँ कि मैं जा रही हूँ !

मुझे डर है कि कहीं तुम रोक न लो, और इसी बीच में मैं उन्हें खो दूँ। नहीं, अब मैं यहाँ एक क्षण नहीं रुक सकती।"

आँसू वेदना को घटाते हैं, और स्वेद की तरह हृदय-ज्वर को शांत करते हैं!

(६)

मानव-चरित्र एक प्रहेलिका है, रहस्यमय है, दुर्गम है। इतना दुर्गम है कि वह स्वयं नहीं जानता कि पल-भर में उसके चरित्र का कैसा रूप होगा। चपला को आश्चर्य होता कि कैसे एक रात में उसके चरित्र ने इतने रूप बदल डाले! जिस मीठे दर्द को वह अपने हृदय में छिपाकर रखना चाहती थी, वह प्रकट हो ही गया। तभी तो प्रेम और पाप छिपाए नहीं छिपते!

कभी-कभी मनुष्य क्षणिक आवेश में वह काम कर डालता है, जिसके करने का साहस वह कभी नहीं करता था। सभी इच्छाएँ मनुष्य के मस्तिष्क से जन्म लेती हैं, और इच्छाएँ पंचज्ञान-इंद्रियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। यदि कोई इच्छा विवेक-तंतु द्वारा संचालित होती है, तो मनुष्य की सब शक्तियाँ उसे पूर्ण करने की चेष्टा करती हैं। किंतु अगर कोई विवेक-तंतु के विरुद्ध होती है, तब उसकी शक्तियाँ उसके दबाने का यत्न करती हैं। तब मस्तिष्क एक युद्धस्थल बन जाता है। विवेक और इच्छा में बराबर युद्ध होता रहता है। समय और अवसर यदि विवेक के पक्ष में हुए, तो इच्छा दब जाती है, लेकिन अगर ये दोनो इच्छा के मनोनुकूल हुए, तो एक क्षणिक आवेश पैदा होता है, जो नशे की तरह काम करता है, और उस समय मनुष्य वह काम कर डालता है, जिसके करने का साहस वह कभी नहीं करता था।

नशे के बाद प्रक्रिया होती है, क्षणिक आवेश में किए गए काम के बाद पश्चात्ताप और ग्लानि। पश्चात्ताप और ग्लानि विवेक के मित्र हैं, उसकी ओर ले जानेवाले हैं। ये सुधार के लक्षण हैं!

चपला ग्लानि के मारे निर्मल के समक्ष जाने में सकुचाती थी। उसके पैर ही न उठते थे। मन में होता कि एक बार देखूँ, लेकिन दूसरे ही क्षण लज्जा उसके पैर स्तंभित कर देती। उस दिन वह उनके सामने न जा सकी।

प्रायश्चित्त युद्धकर है, तावाने-जंग है, जो मन को भुगतना पड़ता है। विवेक के हार जाने की हानि पूर्ति है, और दंड भी। चपला ने प्रायश्चित्त करना उचित समझा। कुमुदिनी को पत्र लिखा। उसे बुलाया। अपने ऊपर से उसका विश्वास उठ गया। अग्नि के पास रहने से डर मालूम होने लगा।

दोपहर का समय था।

निर्मल लेटे हुए थे। इतनी शक्ति न थी कि वह उठ सकें, या हिल-डुल सकें। शांता उनके पास बैठी हुई थी। उनके चेहरे से विषाद टपकता था। निर्मल ने नेत्र खोलकर इधर-उधर देखा, और फिर बंद कर लिए। शांता ने पूछा—"अब कैसी तबियत है?"

निर्मल ने उत्तर दिया—"अब अच्छी है मा!"

शांता—"थोड़ा-सा दूध पिओगे?"

निर्मल—"अभी-अभी तो पिया है मा!"

उनके स्वर में आवेग था। शांता ने उत्सुकता से उनकी ओर देखा।

शांता—"कुछ कहना चाहते हो, कहो।"

निर्मल—"मा, तुम एक बहू के लिये लालायित हो, क्यों?"

शांता ने और अधिक उत्सुकता से निर्मल की ओर देखा।

निर्मल—"मैं विवाह करूँगा मा!"

शांता—"विवाह तो हो गया है बेटा!"

निर्मल—"नहीं, मैं दूसरा विवाह करना चाहता हूँ। एक के पीछे तुम्हारा और अपना सुख मिट्टी में मिलाना नहीं चाहता। मैं दूसरा विवाह करूँगा।"

शांता अवाक् होकर उनकी ओर देखने लगी।

निर्मल—"मैंने समझा था, यह विवाद और मनमुटाव थोड़े दिनों में मिट जायगा, लेकिन अब मिटता नहीं दिखाई पड़ता। वह अपना मान और अभिमान लेकर रहे, और मैं अपना। मैं विवाह करना चाहता हूँ, और करूँगा।"

शांता—"बहू को किस अपराध पर छोड़ दोगे?"

निर्मल—"उसके अपराधों को पूछती हो? अपने मन से पूछो, तुम्हें पता लग जायगा।"

शांता—"लड़कपन में सब अपराध करते हैं, उनके बड़े क्या उस पर ध्यान देते हैं?"

निर्मल—"लेकिन दंड तो देते हैं?"

शांता—"दंड देते हैं, लेकिन उचित। साधारण अपराध पर प्राण-दंड नहीं देते।"

निर्मल—"प्राण-दंड कौन देता है?"

शांता—"स्वामी का स्त्री को त्याग देना, उसके लिये प्राण-दंड है।"

निर्मल—"लेकिन मैं विवाह करना चाहता हूँ।"

शांता—"विवाह करना चाहते हो? अच्छा, करो। जिसमें तुम्हें ख़ुशी मिले, उसी में मेरे लिये सुख है!"

निर्मल चुप हो गए। आँखें बंद कर लीं। शांता भी चुप हो गई।

थोड़ी देर बाद निर्मल ने पूछा—"चपला कहाँ है?"

शांता ने चौंककर कहा—"मालूम नहीं, बुला दूँ क्या?"

निर्मल—"नहीं, रहने दो, यों ही पूछा था। कल से नहीं दिखाई दी।"

शांता—"दो रोज़ सोई नहीं थी, कल दिन-भर सोती रही।"

निर्मल फिर चुप हो गए। थोड़ी देर बाद कहा—"अच्छा, मा, उसे बुला लाओ।"

शांता उठकर बुलाने चली गई। उस समय चपला अपने कमरे में बैठी हुई थी। शांता ने जाकर कहा—"आज अभी तक सोई नहीं चपला?"

चपला ने चौंककर उठते हुए कहा—"नहीं मा, आज नींद नहीं है।"

शांता—"आज तुम्हें एक पत्र लिखना पड़ेगा। लिख दोगी?"

चपला—"कहाँ को लिखाओगी मा?"

शांता—"इलाहाबाद, बहू को।"

चपला ने शांता की ओर देखा। उसने धीरे-धीरे उत्तर दिया—"अच्छा, मैं लिख दूँगी, लेकिन . . . ?"

शांता ने चपला की ओर देखा, फिर कहा—"लेकिन क्या चपला?"

चपला—"मैं यह कहना चाहती थी कि मैं कुमुद को दो पत्र लिख चुकी हूँ, पर उनमें से एक का भी उत्तर नहीं मिला। उन पत्रों में मैंने उसे बुलाया था, लेकिन आने की कौन कहे, उनका उत्तर ही नहीं आया।"

शांता—"जब मेरी तरफ़ से पत्र लिखोगी, तो ज़रूर वह आएगी। इस समय उसका आना बहुत ज़रूरी है।"

चपला—"जी हाँ, मैंने उनकी बीमारी का हाल भी लिखा है, लेकिन......!"

शांता—"यह कुछ नहीं, आज मेरी तरफ़ से पत्र लिखो।"

चपला—"अच्छा, मैं लिखती हूँ, बोलिए।"

चपला लिखने बैठ गई।

शांता एक कुर्सी पर बैठकर बोलने लगी—

मंसूरी

प्रिय बहू,

तुम इस बूढ़ी पर अभिमान करके चली गईं। बाप के घर जाकर,

चपला ने सिर उठाकर आहत हृदय से शांता की ओर देखा।

शांता—"बेटी, तुम भी अपनी बूढ़ी मा को क्षमा करो, आजकल मेरा जी ठीक नहीं। ज्ञान सब हर-सा गया है।"

चपला के नेत्र अश्रु-पूर्ण हो गए। वह अपने आयत लोचनों से उसकी ओर देखती रही।

शांता—"न-मालूम मुझे क्या हो गया है। चपला, इस बूढ़ी को क्षमा करो! मैंने व्यर्थ तुम पर संदेह किया था।"

चपला के आँसू न रुके, आवेग कंठ से निकल पड़ा। वह शांता से लिपट गई, और फूट-फूटकर रोने लगी।

शांता भी रोती हुई उसकी पीठ पर सप्रेम हाथ फेर रही थी।

(७)

धनियों के लिये मंसूरी, नैनीताल, शिमला, दार्जिलिंग आदि स्थान स्वर्ग हैं। भारत का 'फ़ैशनेबिल-मंडल' इन स्थानों में दो-तीन महीनों के लिये चला जाता है, और एक प्रकार से भारत वीरान हो जाता है। जाता कौन नहीं—जो अपने ख़ून से पैसा पैदा करते हैं, श्रमजीवी!

मंसूरी और नैनीताल युक्तप्रदेश के दो मुख्य पहाड़ी स्थान हैं। फाल्गुन तक यहाँ पहाड़ियों के अतिरिक्त और कोई नहीं रहता, लेकिन जहाँ चैत्र मास लगा, युक्तप्रदेश के अधिकारी और धनी, टिड्डी-दल की भाँति, जाकर बसने लगते हैं। होटलवालों से नगर भर जाता है। चारो तरफ़ सफ़ाई होने लगती है, और वैशाख लगते-लगते नगर की जन-संख्या चौगुनी-पँचगुनी हो जाती है। ज्येष्ठ मास में तो घर ढूँढ़े से भी नहीं मिलता। हारकर होटलों में रहना पड़ता है। एक अजीब चहल-पहल शुरू हो जाती है, कोलाहल से शांत मंसूरी नादमय हो जाता है। पहाड़ों की नीरव शांति को बंदूक़ों की आवाज़ भंग करने लगती है। शायद उस समय मंसूरी का सुप्त भाग्य जग उठता है!

केट ट्रैंसम भी मंसूरी आई थी! मिस्टर वर्मा की हत्या ने उसको निस्तेज और निःशक्त कर दिया था। वह मिस्टर वर्मा से अपना बदला चुकाने आई थी। उनको जान से मार डालना ही उसका अभिप्राय था, लेकिन जब जॉन डिक ने उन्हें मार डाला, उसे सुख की जगह कठिन मनोवेदना हुई। शायद मृत्यु के बाद घृणा प्रेम और दया में बदल जाती है। मृत्यु के बाद घृणा, क्रोध आदि हृदय-कलुषताएँ नहीं रहतीं; क्योंकि ये सब संसार में रहनेवालों के लिये ही हैं।

विलसन-नामधारी डिक लापता है। भारत की पुलिस बड़ी तत्परता से उसकी खोज कर रही है। एक समय था, जब इँगलैंड उसके नाम से काँप उठता था। स्कॉटलैंड यार्ड के चतुर-से-चतुर जासूस उसे पकड़ने में असमर्थ हुए थे। जहाँ चोरी करने के लिये नोटिस दिया, वहाँ चोरी हो गई, और किसी को भी पता न लगा। चोर चले जाने के बाद पता लगता। एक बार बैंक ऑफ़् इँगलैंड तक में तो चोरी हो ही गई, जहाँ का ख़ज़ाना जलमग्न रहता है। डिक अपनी चोरी में वैज्ञानिक उपाय काम में लाता था। डिक का दल सुचारु रूप से संगठित था, और वह उसका नेता था। उसके दल में भी जासूस एक-से-एक पक्के थे। लंदन के एक-एक घर का हाल उन्हें मालूम था, और उन्हीं के बल पर डिक की धाक जम गई थी। कोई धनी अपने धन को सुरक्षित न समझता था।

पाप का घड़ा कच्ची मिट्टी का-सा होता है। भरने के पहले ही टूट जाता है। पुलिस ने एक-एक करके गिरफ़्तार करना शुरू किया। डिक का दल टूटने लगा। डिक को अपने प्राण बचाने की चिंता हुई। वह लंदन से भागा। पेरिस में पहुँचकर थोड़े दिन अपना व्यापार चलाया, लेकिन वहाँ की पुलिस पहले ही से होशियार थी। प्राणों की ममता उसे इटली ले गई, और फिर भारत। यहाँ

आकर उसका व्यापार बहुत चलने लगा। भारत उसे बहुत पसंद आया, और यहीं अपने व्यापार का केंद्र स्थापित करना उचित समझा।

पूने की डकैती के बाद डिक ने थोड़े दिन अपना कारोबार बंद करना उचित समझा। पास में रुपया आ ही चुका था, फिर क्यों न उसका सद्व्यय किया जाय। मंसूरी और नैनीताल, ये दो स्थान उसके छिपने के लिये बड़े उपयुक्त थे, क्योंकि इतने अँगरेज़ों के बीच वह अपने को सहज ही छिपा सकता था। भारत की पुलिस को वह किसी काम लायक़ न समझता था, उसे विश्वास था कि काले आदमी उसे कभी पकड़ नहीं सकते।

शाहजहाँपुर तक तो पुलिस ने उसका पीछा किया, फिर वहाँ से वह लापता हो गया। वहाँ की पुलिस शहर-भर छानकर हार गई, लेकिन जॉन डिक का पता न लगा। क्लाइव और टर्नहम से पता लगा था कि वह यहाँ कुछ दिनों तक ठहरेगा, लेकिन डिक ठहरा नहीं। वह उसी गाड़ी से मंसूरी जा रहा था। लेकिन अकर्मण्य पुलिस को पता न लग सका।

डिक मंसूरी पहुँच गया। रास्ते में कोई बाधा न हुई। मंसूरी के एक बड़े फ़ैशनेबिल होटल में डिक ने अपना डेरा डाला। रुपए पानी की तरह बहाने लगा। 'पार्टियाँ' और 'डांस' की धूम मचा दी। मंसूरी के बड़े-बड़े लोगों को उससे परिचय प्राप्त करने की उत्कंठा हुई। डिक इस समय फ्रांस का मशहूर धनी जीन तालमाँ था।

जीन तालमाँ की धाक मंसूरी-भर में जम गई थी। वह पेरिस के नए-नए फ़ैशनों से सबको चकित कर रहे थे। उपहार सदावर्त की तरह बँट रहे थे। अँगरेज़-रमणियों के वह नटवर गोपाल थे, और मुच्छड़ अँगरेज़ों के आसफ़ुद्दौला। जीन तालमाँ की प्रशंसा में

पत्रों के कालम-के-कालम भरे जा रहे थे, और उनके बताए हुए फ़ैशनों की चर्चा चारो ओर थी।

संध्या-समय था। जीन तालमाँ एक नवयुवती को अपने साथ लिए 'पहाड़-विहार' कर रहे थे।

जीन तालमाँ--"मिस एलिस, आप कल अपने इष्ट-मित्रों-सहित 'नाच' में आइएगा?"

मिस एलिस—"हाँ, ज़रूर। (एक मंद मुस्कान से) आपके आ जाने से मंसूरी में जान आ गई। आपके पहले यहाँ सब वीरान मालूम होता था। अपनी-अपनी डफ़ली और अपना-अपना राग था। पार्टियों में आदमी चुन-चुनकर बुलाए जाते थे, न कहीं नाच था, और न कहीं उत्सव! बहुत हुआ, तो सिनेमा देख आओ, पहाड़ घूम आओ, और आकर अपने घर बैठ रहो। आपके आ जाने से कोई पल भी निश्चित नहीं बैठ पाता।"

यह कहकर मिस एलिस ने एक बंकिम कटाक्ष किया।

जीन तालमाँ ने मिस एलिस का हाथ पकड़कर मुग्ध दृष्टि से देखते हुए कहा--"वास्तव में क्या मेरे आने से आपका मनोरंजन हुआ?"

मिस एलिस ने अपना हाथ ढीला कर दिया, और कहा--"आप क्या मेरी बात का अविश्वास करते हैं? आपने नए-नए फ़ैशनों से सबको चकित कर दिया। आह! यदि मैं पेरिस में होती!"

जीन तालमाँ--"मैं मंसूरी को तुम्हारे लिये पेरिस बना दूँगा। रोज़ तार द्वारा वहाँ के फ़ैशनों की ख़बर आती है। मैंने इसका बड़ी ख़ूबी से प्रबंध किया है।"

मिस एलिस—"तभी आप नए-नए फ़ैशनों से सबको चकित कर रहे हैं। यहाँ के बड़े-बड़े दर्ज़ी आश्चर्य करते हैं कि कैसे आप इतनी जल्दी नए फ़ैशन की ख़बर पा जाते हैं?"

जीन तालमाँ—"पेरिस में एक दर्ज़ी की दूकान में मेरा हिस्सा है,

इसी कारण से वह एक फ़ैशन के निकलने के पहले ही मुझे ख़बर देते हैं।"

मिस एलिस—"मिस्टर तालमाँ, आप एक अद्भुत व्यक्ति हैं। आपने एक ही सप्ताह में मंसूरी-भर को मुग्ध कर लिया।"

मिस एलिस ने फिर भुवन-मोहन कटाक्ष किया। जीन तालमाँ ने धीरे से उसका हाथ दबा दिया।

जीन तालमाँ—"यह सब आपकी कृपा है।"

मिस एलिस ने अपना हाथ छुड़ाकर कहा—"देखिए मिस्टर तालमाँ, मिस्टर डी० जानसन आ रहे हैं।"

जीन तालमाँ—"यह मिस्टर डी० जानसन कौन हैं?"

मिस एलिस—"यू० पी०-गवर्नर के ख़ास दर्ज़ी हैं। इलाहाबाद में बड़ी भारी दूकान है। इन्हें दावा है कि पेरिस का फ़ैशन यहाँ दो सप्ताह बाद हमसे ले लो।"

जीन तालमाँ (आश्चर्य से)—"इतनी देर बाद।"

मिस एलिस—"हाँ, यही तो आपके विषय में कह रहे थे कि न-मालूम कैसे उन्हें इतनी जल्दी मालूम हो गया, अभी तक तो मेरे पास कुछ ख़बर भी नहीं आई! देखिए, इसी ओर आ रहे हैं।"

मिस्टर डी० जानसन पास आ गए। एलिस ने उनका परिचय करवाया। परिचय हो जाने के बाद मिस्टर जानसन ने कहा—"मिस्टर तालमाँ, आपसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आपसे मिलने का बड़ा इच्छुक था।"

जीन तालमाँ—"यह आपकी दया थी।"

दोनो में फिर कर-मर्दन हुआ।

मिस एलिस—"डाली और लिली कहाँ है?"

मिस्टर जानसन—"वे लोग मिस स्मिथ के साथ घूमने गई हैं।"

मिस स्मिथ का नाम सुनकर जीन तालमाँ के कान खड़े हुए। जीन तालमाँ ने पूछा—"कौन मिस स्मिथ ?"

जानसन ने उनकी ओर देखकर कहा—"मेरे बच्चों की देख-रेख के लिये एक बालिका नियुक्त है, क्या आप उन्हें जानते हैं ?"

'जीन तालमाँ ने बेपरवाही से कहा—"यों ही पूछा था, जब मैं बांबे में था, तब वहाँ के बड़े भारी धनी मिस्टर टी० स्मिथ के घराने से मेरा घनिष्ठ परिचय था। मुझे नाम सुनकर भ्रम हुआ था। क्षमा कीजिए।"

जानसन (हँसकर)—"अरे, यह कुछ नहीं है। आप शायद गर्मी-भर यहीं ठहरेंगे।"

जीन तालमाँ—"अभी कुछ निश्चय नहीं है। लेकिन इरादा तो कुछ ऐसा ही है।"

जानसन—"आपने तो नए-नए फ़ैशनों का ताँता बाँध दिया है। अभी तक मेरे पास भी इन नए फ़ैशनों की ख़बर नहीं आई है। कल ही तार किया है।"

जीन तालमाँ—"अभी-अभी यह फ़ैशन वहाँ निकला होगा आपको एक-दो हफ़्ते में मालूम होगा।"

मिस एलिस (हँसकर) —"मिस्टर जानसन, मिस्टर तालमाँ फ़ैशन के राजा हैं। आप इनका मुक़ाबला नहीं कर सकते।"

जानसन (हँसकर)—"कभी नहीं। और न मैं यह दावा ही करता हूँ।"

जीन तालमाँ—"मिस्टर जानसन, आप कल मेरे यहाँ सपरिवार भोज और नाच में सम्मिलित होइएगा, यह लीजिए आपके नाम का निमंत्रण-पत्र है। आशा है, आप अस्वीकार न करेंगे।"

जीन तालमाँ ने निमंत्रण-पत्र पर नाम लिखकर दे दिया।"

जानसन—"मिस्टर तालमाँ, मैं अवश्य सम्मिलित होता, लेकिन एक विशेष काम है।"

जीन तालमाँ—"अगर आप न आ सकें, तो मिसेज़ जानसन को भेज दीजिएगा! अगर वह भी न आवेंगी, तो मुझे बड़ा दुख होगा।"

जानसन—"मैं उन्हें अवश्य भेजूँगा। आप विश्वास रखिए।"

एलिस—"मिस स्मिथ को भी भेजिएगा।"

जानसन—"आप तो जानती हैं, वह कहीं नहीं जाती। दिन-भर उदास रहती है। हाँ, मैं आपकी तरफ़ से अनुरोध अवश्य करूँगा। इस समय विदा दीजिए, क्योंकि मैं एक बड़े ज़रूरी काम से जा रहा हूँ।"

जीन तालमाँ—"लेकिन आप मिसेज़ जानसन को भेजना भूलिएगा नहीं, यदि आपको......।"

जानसन—"हाँ, अगर मुझे समय मिला, तो मैं अवश्य हाज़िर होऊँगा। क्या बताऊँ, आजकल काम की इतनी झंझट है कि छुट्टी नहीं मिलती। अच्छा, गुडनाइट।"

जीन तालमाँ नामधारी डिक और मिस एलिस ने अभिवादन का उत्तर दिया। मिस्टर जानसन वायु-वेग से चले गए।

(८)

मनुष्य समय-चक्र का खिलौना है। समय सब कुछ करवा लेता है। कुछ घड़ी और कुछ क्षण ऐसे हुआ करते हैं, जो अवश्यमेव मनुष्य से ऐसा काम करवाते हैं, जो उसके लिये घातक हो जाता है। जिस घड़ी जीन तालमाँ का परिचय मिस्टर जानसन से हुआ था, वह घड़ी उसके लिये बड़ी घातक थी। कौन जानता था कि मिस्टर जानसन का परिचय जीन तालमाँ का भंडा-फोड़ का कारण होगा। तभी तो कहते हैं कि मनुष्य भाग्य-चक्र का खिलौना है।

रात्रि के आठ बजते-बजते जीन तालमाँ का होटल आलोक-माला से प्रज्वलित हो उठा। मोटरें आ-आकर जमा होने लगीं, और निमंत्रित सज्जन बड़े हर्ष से होटल के बड़े कमरे में प्रवेश करने

लगे। मिस्टर जीन तालमाँ, फ़ैशन के राजा, मुस्किरा-मुस्किराकर सबका स्वागत करने लगे। बाहर मधुर ध्वनि से बैंड बाजा बज रहा था। भीतर भी 'मैनविली' का कांसर्ट बजने के लिये तैयार था। लकड़ी के फ़र्श के ऊपर ऐसी पालिश थी कि पैर फिसलता था। कमरे में दिन का-सा उजाला हो रहा था। भू-अप्सराओं के गले की मोतियों की मालाएँ मनोहर प्रकाश में जगमगा रही थीं। मधुर गुंजन और हास्य-ध्वनि कमरे में गूँज रही थी। सभी रमणियों की दृष्टि मिस्टर जीन तालमाँ के ऊपर थी।

नौ बजते-बजते निमंत्रित सज्जन आ गए। मिस्टर जीन तालमाँ के द्वार से हटते ही बाहर का बैंड बंद हो गया, और उसी क्षण भीतर का कांसर्ट बज उठा। जीन तालमाँ मुस्किराते हुए रमणियों के पास आकर खड़े हो गए।

एक रमणी ने, जो किसी अधिकारी की पत्नी थी, मुस्किराते हुए कहा—"मिस्टर तालमाँ, आप तो सबको आश्चर्य में डाल रहे हैं?"

जीन तालमाँ ने अदब से अपना सिर झुका लिया, और मंद मुस्कान से कहा—"मिसेज़ कूपर, आप बहुत प्रशंसा करती हैं। यदि आपका कुछ मनोरंजन हो सका हो, तो मैं बहुत प्रसन्न हूँ। बस, यही मेरे लिये यथेष्ट है।"

एक बूढ़ी रमणी जो मिसेज़ कूपर के साथ थी, कहा—"मिस्टर तालमाँ आपने मृत मंसूरी में नव-जीवन संचार किया है। आपने नए-नए फ़ैशनों से सबको चकित कर दिया है। आपकी प्रशंसा में जो शब्द भी कहे जायँ, वह थोड़े ही हैं।" मिस्टर जीन तालमाँ ने फिर अपना सिर झुकाकर कृतज्ञता प्रकट की।

एक दूसरी बूढ़ी रमणी ने मुस्किराते हुए कहा—"मिस्टर तालमाँ, मार्था के वाक्यों में सत्यता का बड़ा अंश है। आप इसे झूठी प्रशंसा

न समझिए। भारत में मैंने ऐसे जल्से बहुत ही कम देखे हैं। हाँ, प्यारे इँगलैंड में तो ज़रूर ऐसे जल्से देखने में आते थे।"

जीन तालमाँ ने फिर अपना सिर झुकाया। फिर कहा—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि मेरे इस उत्सव ने आपको इँगलैंड का तो स्मरण करवाया। इस समय मुझे भी प्यारा फ्रांस याद आ पड़ा है। मनुष्य चाहे जहाँ रहे, अपने देश को कभी नहीं भूलता है। स्वदेश की स्मृति देश-भक्ति का सबसे बड़ा चिह्न है।"

मार्था ने अपने पोपले मुँह से मुस्किराते हुए कहा—"आप तो नाच में अवश्य भाग लेंगे?"

जीन तालमाँ—"मैडेम, अगर आप मेरी संगिनी बनें, तब मैं भी नाचूँ?"

मिस्टर जीन तालमाँ की इस बात पर सब रमणियों को हँसना आवश्यक था, क्योंकि यह हास्य फ़ैशन-नरेश ने किया था। हँसी का एक मीठा गुंजन सुनाई पड़ा! मार्था शर्मा गई।

मार्था—"मैं नाचने के लिये तैयार हूँ। आपके इस उत्सव ने नव-जीवन का संचार कर दिया है। मैं भी आज नाचूँगी। तय रहा!"

मिस्टर जीन तालमाँ को यहाँ खड़ा देखकर और लोग भी आकर खड़े हो गए। धीरे-धीरे भीड़ जमा हो गई। चारो तरफ़ रमणियाँ थीं, और उनके बाद पुरुष। बीच में फ़ैशन-नरेश थे। निमंत्रित व्यक्तियों में मिस्टर टैगार्ट पुलिस-कमिश्नर भी थे। मिस्टर टैगार्ट ज़रा देर में आए थे।

मिस्टर टैगार्ट ने अपने एक मित्र से कहा—"यार, ज़रा मिस्टर तालमाँ से तो मेरा परिचय करवा दो।"

उस मित्र ने आश्चर्य से मिस्टर टैगार्ट की ओर देखकर कहा—"आपका मिस्टर तालमाँ से अभी तक परिचय नहीं हुआ है! बड़े आश्चर्य की बात है!"

मिस्टर टैगार्ट—"मैं तो इन दिनों बाहर था, कल तो आया हूँ। आज जब इनका निमंत्रण मिला, तब उत्सव मे सम्मिलित होने आया हूँ। यहाँ अगर रहा होता, तब तो इनसे परिचय होता। यह कब आए?"

उस मित्र ने कहा—"टैगार्ट, तुम पूरे गधे ही रहे। हमेशा काम के बोझ से दबे रहते हो। इन दिनों तो कम-से-कम छुट्टी मनाओ। जब तक मंसूरी में मिस्टर तालमाँ हैं, तभी तक मंसूरी को गुलज़ार समझो, नहीं तो फिर वही वीरान-की-वीरान! भला कहो, हर दूसरे दिन कौन निमंत्रण देगा। मिस्टर तालमाँ को आए अभी एक सप्ताह भी नहीं हुआ है, और तीन बार भोज का निमंत्रण मिल चुका है। यार, अब की बड़ी भारी मछली फँसी है।"

मिस्टर टैगार्ट—"कुछ पता लगा कि मिस्टर तालमाँ हैं कौन?"

मित्र—"यह न पूछो, इसके बारे में मैं ज़्यादा नहीं जानता और न शायद किसी को मालूम ही है। बस इतना मालूम है कि मिस्टर तालमाँ पेरिसियन हैं। फ़्रांस में रेशम का कारबार है। न-मालूम कौन फ़र्म के मालिक हैं। संसार-भ्रमण को निकले हैं। बड़े माल-दार हैं। आठ रोज़ से रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं। बड़े ही मिलनसार और सज्जन व्यक्ति हैं। कम-से-कम हर तीसरे दिन भोज देते हैं। नए-नए फ़ैशनों से सबको चकित कर रहे हैं। इसीलिये लोग इन्हें फ़ैशन-नरेश कहते हैं। उपहार भी ख़ूब देते हैं। उपहार क़ीमती होते हैं। बस, मुझे इतना ही मालूम है, अधिक नहीं। और, शायद इससे ज़्यादा कोई जानता भी नहीं।"

मिस्टर टैगार्ट—"यह तो हुआ। शायद वही तो मिस्टर तालमाँ हैं, जो रमणियों के बीच में खड़े हुए मुस्किरा रहे हैं?"

मित्र ने मिस्टर टैगार्ट की पीठ पर हाथ मारकर कहा—"कुछ बुद्धि है, निरे बुद्धू ही तो नहीं हो। हाँ, वही मिस्टर तालमाँ फ़ैशन-नरेश हैं।"

मिस्टर टैगार्ट ने बड़ी देर तक मिस्टर तालमाँ की ओर देखा। उनको इस प्रकार देखते हुए उनके मित्र ने कहा—"टैगार्ट, तुम तो इस तरह घूर रहे हो, जैसे पहचानने का यत्न करते हो, क्या कभी देखा है?"

मिस्टर टैगार्ट ने कुछ सोचते हुए कहा—"हाँ, मालूम तो कुछ ऐसा ही होता है कि कहीं देखा है। आँखों पर का चश्मा कुछ धोका दे रहा है।"

मित्र ने उत्सुकता से कहा—"कहाँ देखा है, जानते हो क्या?"

मिस्टर टैगार्ट—"ठीक से नहीं कह सकता कि कहाँ देखा है, लेकिन इतना मालूम होता है कि देखा कहीं ज़रूर है।"

मित्र—(हँसकर) "तभी तो कहता हूँ कि पुलिसवाले पूरे गधे ही हुआ करते हैं। वह अपने को सर्वज्ञ समझते हैं। उन्हें विश्वास होता है कि वह हरएक को जानते हैं, चाहे जानते ख़ाक-पत्थर न हों।"

मिस्टर टैगार्ट—"नहीं, मैंने इन्हें ज़रूर कहीं देखा है। अगर इन्हें नहीं, तो इनका फ़ोटो ज़रूर देखा है।"

मित्र—(हँसकर) "अब रास्ते पर आ रहे हो, फ़ोटो के बाद कहोगे स्वप्न में देखा है? यही तो पुलिसवालों की चालें हैं। जानते हो, मैं तुम्हारे चकमों में आनेवाला नहीं हूँ?"

मिस्टर टैगार्ट—"तुम भी पूरे अहमक़ मालूम होते हो। इसमें कौन चाल है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि मैंने इन्हें कहीं देखा है। मेरी बात का तुम विश्वास नहीं करते, फिर दूसरे कहते हो कि मैं चकमा दे रहा हूँ।"

मित्र—"यार, तुम तो म्यान से बाहर हो गए। अच्छा, तुमने देखा है! जब तुम फ़्रांस गए थे, वहीं पर तुम्हारा परिचय हुआ था।"

मिस्टर टैगार्ट—"व्यंग्य न कसो यार! भला फ़्रांस मैं कब गया था?"

मित्र—"फ़्रांस न गए होते, तो तुम्हारा परिचय कैसे इनके साथ होता। क्योंकि इन्हें हिंदुस्थान में आए तो मुश्किल से दो महीने हुए

होंगे। तुम मेरा विश्वास नहीं करते, मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम फ़ाँस गए थे!"

मिस्टर टैगार्ट—"तुम अजब आदमी हो। देखो, नाच शुरू होनेवाला है, मेरा परिचय करवाओगे कि नहीं?"

मित्र—"वाह, तुम्हारा तो परिचय इनके साथ है ही, फिर अब कौन आवश्यकता है।"

मिस्टर टैगार्ट—"देखो, अब तुम मार खाओगे। सीधे-सीधे चलते हो या नहीं?"

मित्र—"अच्छा बाबा चलो, किसी तरह न बचेंगे।"

मिस्टर टैगार्ट अपने मित्र के साथ मिस्टर तालमाँ की ओर चले। इस समय बाजा बंद हो गया था। जीन तालमाँ दूसरी ओर भोजन का प्रबंध करने जा रहे थे। मिस्टर टैगार्ट और उनके मित्र को देखकर उनकी ओर आए।

मित्र—"मिस्टर तालमाँ, आपसे परिचय करने के लिये सभी उत्सुक हैं, देखिए, मेरे मित्र पुलिस-कमिश्नर मिस्टर टैगार्ट भी आपसे परिचय करना चाहते हैं।"

मिस्टर टैगार्ट का नाम सुनकर तालमाँ साहब ज़रा चौंके, लेकिन उसी क्षण मंद मुस्कान से कहा—"मैं आज अपने को धन्य समझता हूँ।"

मित्र ने मिस्टर टैगार्ट का परिचय तालमाँ से करवा दिया। मिस्टर टैगार्ट बड़े ग़ौर से मिस्टर तालमाँ के चेहरे की ओर देख रहे थे। मित्र ने उन्हें इस प्रकार देखते हुए धीरे से उनका जूता दबा दिया।

मिस्टर टैगार्ट ने चौंककर कहा—"मैं आपको देखकर ज़रा भ्रम में पड़ गया था, मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैंने आपको कहीं देखा है।"

तालमाँ ने अपने मन का भाव छिपाकर कहा—"आपने शायद ही

मुझे देखा होगा। हाँ, अगर कभी पेरिस गए होंगे, तो ज़रूर देखा होगा। आप कभी पेरिस गए हैं मिस्टर टैगार्ट ?"

मिस्टर टैगार्ट—"नहीं, मैं पेरिस क्या, हिंदोस्तान से बाहर ही नहीं गया। हाँ, अब की बार इरादा है कि मैं भी संसार-भ्रमण करूँ।"

मित्र—"इतना रुपया कहाँ से पाओगे ?"

मिस्टर टैगार्ट ने मित्र की ओर एक कड़ी दृष्टि से देखा, फिर कहा—"अब की बार बड़ा भारी दाँव मारूँगा। लंदन का मशहूर तस्कर जान डिक यहीं हिंदुस्थान में आया है। उसको गिरफ़्तार कर लेने से ही मैं मालामाल हो जाऊँगा। बड़े-बड़े इनाम हैं।"

डिक का नाम सुनकर जीन तालमाँ साहब चौंके। उनके मुख की श्री कुछ देर के लिये अंतर्हित हो गई। पल-भर में ही सब कुछ हो गया, पर तिस पर भी मिस्टर टैगार्ट की नज़रों से छिप न सका।

मित्र—"हाँ, जैसे आप ही तो डिक को पकड़ेंगे। जब लंदन की पुलिस उसे गिरफ़्तार न कर सकी, तब आप उसके पकड़ने का दावा करते हैं! पकड़ चुके।"

तालमाँ—"हाँ, डिक का पकड़ना ज़रा हँसी-खेल नहीं है। पेरिस की भी पुलिस परेशान रही, लेकिन उसे गिरफ़्तार न कर सकी। मेरा उसका सामना एक बार पड़ चुका है। उसने मेरी दूकान में चोरी करने की नोटिस दी। हम लोग कई मित्र लोह की तिजोरी बीच में रखकर उसकी रक्षा कर रहे थे। मैंने अपना दंभ दिखाने के लिये बैंक से सब रुपया मँगाकर तिजोरी में रख दिया था। हम लोग बातें कर ही रहे थे, और उसके आने में एक मिनट और शेष रह गया था कि बाहर बड़ा शोर-गुल हुआ। उसी समय एक नौकर ने आकर कहा—'बाहर चलिए, डिक पकड़ा गया है। फ़ायर करने की कोशिश कर रहा है।' मेरे मित्र लोग बाहर चले गए, लेकिन मैं वहाँ से न हटा। उसी नौकर ने फिर आकर कहा—'आप चलिए, आपको बुला

रहे हैं।' मैंने कहा, मैं नहीं जाऊँगा, कहो उसे यहीं पकड़ लावे। इतना सुनते ही उसने झपटकर मेरे ऊपर वार किया। वार मेरे गाल में लगा। मैं गिर पड़ा। डिक तिजोरी खोलकर रुपया लेकर चल दिया। मैं वेहोश पड़ा रहा। इतने आदमियों के वीच से वह चोरी कर ले गया। जो आदमी इस तरह चोरी कर सकता है, आप सहज ही उसके साहस का अंदाज़ा लगा सकते हैं।"

मित्र—"आपकी जान वच गई, यही ख़ैर हुई।"

तालमाँ—"हाँ, यही वड़ी वात है। उस चोरी के वाद मेरा दिवाला ही निकलनेवाला था, लेकिन कहो, वच गया।"

मिस्टर टैगार्ट वड़े ध्यान से तालमाँ की कहानी सुन रहे थे। वह अधिक ध्यान से तालमाँ की ओर देखने लगे।

तालमाँ—"आप लोग नाच में भाग लें, अव शुरू ही होनेवाला है। मैं ज़रा देख आऊँ कि खाने का क्या प्रवंध है।"

तालमाँ के चले जाने के वाद मिस्टर टैगार्ट से उनके मित्र ने कहा—"तुम पूरे गँवार हो।"

टैगार्ट—"क्यों, गँवार कैसे हूँ?"

मित्र—"तुम उनके चेहरे की ओर कैसी वेअदवी से घूर रहे थे। मालूम होता था कि खा जाओगे। तभी तो कहता हूँ कि पुलिस-वाले क़ायदा व तमीज़ नहीं जानते।"

टैगार्ट—"तालमाँ की वातों पर मेरा विश्वास नहीं होता। मुझे तो वह एक वड़े धूर्त व्यक्ति दिखलाई पड़ते हैं।"

मित्र—"हाँ, संसार-भर तुम्हारी दृष्टि में धूर्त है।"

इसी समय मिस एलिस डेंटन मिस स्मिथ के साथ नाच-घर में आई। मिस्टर टैगार्ट को देखकर वह उन्हीं की ओर आई। मिस डेंटन के पिता और मिस्टर टैगार्ट में वड़ी मित्रता थी।

मिस एलिस डेंटन—"मिस्टर टैगार्ट, आप कव आए?"

टैगार्ट—"कल शाम को आया हूँ, और सब कुशल है ?"

मिस डेंटन—"हाँ, सब कृपा है। मिस्टर तालमाँ से आप मिले ?"

टैगार्ट—"हाँ, मिला।"

मिस डेंटन—"आपकी धारणा क्या है ?"

मित्र—"वह तो इनकी राय में धूर्त हैं ?"

मिस डेंटन—"आप मज़ाक़ करते हैं।"

टैगार्ट—"नहीं, मेरा यही ख़याल है। यह बहुत मुमकिन है कि मेरा ख़याल ग़लत हो सकता है, लेकिन मैं उन्हें यही समझता हूँ।"

मिस डेंटन—"मिस्टर तालमाँ बड़े सज्जन हैं, आप उन्हें धूर्त कहकर उनका अपमान करते हैं।"

मित्र—(मिस स्मिथ की तरफ़ देखकर) "मिस डेंटन, आपका परिचय दीजिए।"

मिस डेंटन—"मेरी बाल्य सखी हैं। लंदन में हम दोनो साथ-साथ पढ़ी हैं।"

इसी समय मिस्टर तालमाँ नाच-घर में आते दिखाई दिए। मिस एलिस डेंटन ने मिस स्मिथ से कहा—"केट, यही मिस्टर तालमाँ हैं।"

केट जीन तालमाँ को देखकर चौंकी। बड़े ध्यान से उनकी ओर देखने लगी।

मिस्टर तालमाँ एलिस को देखकर उससे मिलने के लिये आगे बढ़े। एलिस ने भी उनसे कर-मर्दन किया। तालमाँ मिस स्मिथ की ओर बढ़े ही थे कि वह चौंके, और पीछे हट गए। मिस स्मिथ का शरीर काँप रहा था। मिस्टर टैगार्ट दोनो की ओर ध्यान-पूर्वक देख रहे थे।

मिस डेंटन ने पूछा—"क्या हुआ केट ? तबीयत तो अच्छी है ?"

मिस स्मिथ ने मिस्टर टैगार्ट की ओर देखकर कहा—"मिस्टर टैगार्ट, आप इलाहाबाद के ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट मिस्टर देवदत्त वर्मा की हत्या के अभियोग में जीन तालमाँ नामधारी विलसन को गिरफ़्तार कीजिए। मैं क़ानून की दुहाई देती हूँ। यही जीन तालमाँ ही मिस्टर वर्मा का हत्याकारी है।"

जीन तालमाँ अपनी पिस्तौल निकाल रहा था, लेकिन उसके पहले ही मिस्टर टैगार्ट ने उसका हाथ पकड़कर कहा—"जान डिक, मैं तुमको हत्या और डकैती के अपराध में गिरफ़्तार करता हूँ।"

क्षण-मात्र में ही जीन तालमाँ के हाथों में हथकड़ियाँ पड़ गईं। नाच बंद हो गया। चारो तरफ़ एक हलकंप-सा मच गया। कोई-कोई रमणी तो मूर्च्छित होने का उपक्रम करने लगी। मिस्टर टैगार्ट के चारो ओर भीड़ लग गई। जीन तालमाँ नामधारी जॉन डिक का मुख नीचे था।

बूढ़ी मार्था ने तेज़ी से कहा—"टैगार्ट, यह क्या दुस्साहस कर रहे हो?"

टैगार्ट ने गंभीरता से कहा—"दुस्साहस नहीं है मैडेम, यह जीन तालमाँ इँगलैंड का मशहूर डाकू जान डिक है। और अपराधों के अतिरिक्त दो अपराध विशेष हैं, एक पूने की डकैती, और दूसरी मिस्टर वर्मा की हत्या।"

सब लोगों की दृष्टि जीन तालमाँ पर पड़ गई। अभी तक जो रमणियों का पूज्य बना हुआ था, वह क्षण-मात्र में घृणा का पात्र हो गया।

मिसेज़ कूपर—"अरे, हम लोगों ने डाकू का पैसा खाया है, कितना बड़ा पाप किया है!"

मार्था—"यहाँ से चलो, नहीं तो मैं बेहोश हो जाऊँगी।"

मिस डेंटन—"चलो केट, तुमने ख़ूब पहचाना। मैं तुमको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।"

एक-एक करके सब रमणियाँ लीन तालमाँ की ओर घृणा से देखती हुई चली गईं।

मिस्टर टैगार्ट ने अपने मित्र से कहा—"कहो, अब तो मैं संसार-भ्रमण कर सकूँगा।"

मित्र—"मुझे अब भी विश्वास नहीं होता।"

मिस्टर टैगार्ट—"अब विश्वास तुम्हें क़यामत में होगा।"

(६)

आजकल चपला सदैव दुखित रहती थी, मुख पर हँसी की जगह गंभीरता, नेत्रों में उल्लासता की जगह चिंता विराजती थी। बड़े-बड़े नेत्र आँसुओं से डबडबाए रहते। न खाने की चिंता, और न सोने की। पूर्ण उदासीन रहती थी। गांभीर्य उदासीनता का लक्षण है। चपला संसार से उदासीन हो गई। उदासीनता अपार कष्टों की परा काष्ठा है।

आजकल चपला निर्मल के कमरे में जाती ही न थी। यदि उनके कमरे के सामने से जाने का काम पड़ता, उस समय वह चपला से भी अधिक क्षिप्र गति से चलकर अपने को छिपा लेती थी। निर्मल को भी साहस न पड़ता था कि वह चपला को बुलावें। वह दो-तीन दिन से उससे मिलने के लिये उत्कंठित थे।

चपला आज उनके कमरे के सामने से जा रही थी। निर्मल अकेले ही थे। वह अब भी निःशक्त थे। चपला के पैरों का शब्द सुनकर उन्होंने कंपित स्वर में पुकारा—"चपला!"

चपला के पैरों में बेड़ी पड़ गई, मानो किसी जादूगर ने अपने मंत्र से चपला को स्तंभित कर दिया हो। चपला काँपती हुई खड़ी रही।

निर्मल ने फिर पुकारा—"चपला, यहाँ आओ।"

उनके स्वर में कंपन था, आवेग था।

इस आह्वान ने चपला का निजत्व भुलवा दिया। उसकी प्रतिज्ञा टूट गई। वह पूर्ण रूप से अपने को भूल गई।

निर्मल ने फिर पुकारा—"चपला, यहाँ न आओगी क्या ?"

चपला अब अपने को न रोक सकी। वह डगमगाते पैरों से धीरे-धीरे आकर नत-मस्तक से उनके पर्यंक के समीप खड़ी हो गई।

निर्मल ने उसकी ओर स्तब्ध-दृष्टि से देखते हुए कहा—"चपला, क्या तुम मुझे बिलकुल ही भूल गई ?"

शर्म से चपला का बुरा हाल था। उसकी आँखें उनकी ओर उठती ही न थीं। उसका कंठ अवरुद्ध था।

निर्मल ने एक कुर्सी की ओर इशारा करके कहा—"चपला, बैठ जाओ, आज तुमसे कुछ विशेष बातें करनी हैं।"

चपला मंत्र-मुग्ध थी। वह बैठ गई। उसके मुख से ठंडी निःश्वास निकल गई, मानो बैठने से उसके हृदय का बोझ कुछ हलका हो गया।

निर्मल ने उसका सौंदर्य पान करते हुए कहा—"चपला, आज चार दिन से मेरे पास नहीं आई, क्या तुम भी मुझसे नाराज़ थीं। तुम्हारा दोष नहीं, मेरा ही दोष है, मेरे भाग्य का दोष है।"

शर्म से चपला का नत-मस्तक और नत हो गया। उसकी जिह्वा भी मंत्र-मुग्ध थी।

निर्मल—"चपला, बोलो, मेरा क्या अपराध था ?"

चपला के नेत्रों में दो बड़े-बड़े आँसू छलक आए।

निर्मल—"तुम बोलती नहीं हो, तब मेरा ही अपराध था। चपला, उस रात्रि की क्षणिक कमज़ोरी माफ़ करो। मैं उस समय अंधा था। मेरी विचार-बुद्धि सब लोप हो गई थी। चपला, मुझे माफ़ करो।"

प्रेम-संसार में क्षमा माँगना अपराध है। जिससे क्षमा माँगी जाती है, उसके हृदय में प्रेमी के एक-एक क्षमा-वाक्य तीर के समान हृदय पर असर करते हैं। चपला के नेत्रों से अविराम अश्रु-धारा बह चली।

निर्मल—"चपला, तुम मुझे माफ़ न करोगी ?"

इस बार निर्मल के स्वर में तीव्र कंपन था। वह बड़ी दीनता से चपला की ओर देख रहे थे।

चपला इस बार रो पड़ी। उठकर खड़ी हो गई, और कहा—"आप ऐसी बातें न करिए, मैं आपसे विनय करती हूँ, हाथ जोड़कर कहती हूँ। आप मुझे और अधिक लज्जित न करें।"

चपला ने सारी के अंचल से अपना मुख छिपा लिया। उसमें इतनी ताब न थी कि वह अपना मुख दिखा सके। निर्मल घबरा गए। रमणी के आँसू न-जाने क्यों इतने प्रभावशाली होते हैं! रमणी के आँसुओं ने संसार के धीर-से-धीर पुरुषों के हृदय हिला दिए हैं। चपला के आँसू देखकर निर्मल के हृदय में बड़ी चोट पहुँची। उन्हें अपनी दशा का ध्यान न रहा। वह आवेग से उठ खड़े हुए, और कराहकर उसी क्षण फिर गिर पड़े। सिर की चोट में तकियों का धक्का लगा। वह उस धक्के को भी सहन न कर सकते थे। गिरते ही बेहोश हो गए। क्षत स्थान से रक्त का स्रोत उमड़ पड़ा। तकिया लाल हो गई।

चपला ने सिर उठाकर देखा। निर्मल की आँखें बंद थी, और रक्त से बिछौना-भर लाल हुआ जा रहा था। वह घबरा गई, और स्वयं चिल्ला पड़ी। उसकी आँखें उस बहते हुए रक्त की ओर गड़ गईं।

चपला का चीत्कार सुनकर मिस्टर माथुर दौड़ आए। शांता और राजेश्वरी भी दौड़ती हुई आ पहुँचीं।

मिस्टर माथुर ने कमरे में घुसते ही पूछा—"क्यों चपला, क्या है ?"

भय से चपला की घिग्घी बँध गई थी। वह स्थिर दृष्टि से उस रक्त की ओर देख रही थी।

मिस्टर माथुर ने रक्त देखकर चपला से पूछा—"यह क्या हुआ चपला।"

चपला ने कोई उत्तर न दिया। चपला को कुछ ज्ञान न था। वह केवल निर्मल का मुख और उनके सिर का रक्त देख रही थी।

मिस्टर माथुर ने निर्मल को पुकारा—"मिस्टर सिनहा!"

मिस्टर सिनहा बेहोश थे। उत्तर कौन दे। रक्त अविराम गति से बह रहा था!

मिस्टर माथुर ने टेलीफ़ोन उठाकर डॉक्टर गुरहा को बुलाकर कहा—"शीघ्र आइए। एक भयंकर दुर्घटना हो गई है। किसी तरह मिस्टर सिनहा का घाव फूट गया है। ख़ून जारी है।"

शांता तो देखते ही घबरा गई और अचेत के समान कुर्सी पर गिर पड़ी। मिस्टर माथुर निर्मल का उपचार कर रहे थे। रक्त-स्रोत बंद तो नहीं हुआ था, लेकिन गति कम पड़ गई थी। निर्मल को अब भी चेत नहीं हुआ था।

डॉक्टर गुरहा आ गए। सिर पर की पट्टी खोल डाली। दूसरी दवा लगाकर पट्टी बाँध दी। दवा लगते ही रक्त बंद हो गया। रक्त बंद हो जाने के बाद डॉक्टर गुरहा ने पूछा—"यह दुर्घटना कैसे हुई?"

मिस्टर माथुर—"मुझे कुछ मालूम नहीं। चपला और मिस्टर सिनहा बातें कर रहे थे। मैं दूसरे कमरे में बैठा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था। उसी समय चपला का चीत्कार सुनकर मैं दौड़ा आया। चपला जैसे इस समय खड़ी है, वैसी ही खड़ी थी। मैंने पूछा भी, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया। अब आप ही पूछिए।"

डॉक्टर गुरहा ने चपला की ओर देखा। चपला स्तब्ध खड़ी थी।

डॉक्टर गुरहा—"मिस माथुर, कहिए, किस तरह यह दुर्घटना हुई ? क्योंकि यह बेहोशी बड़ी ख़राब है।"

चपला की निद्रा टूटी। उसने आँखें फाड़कर चारो ओर देखा। डॉक्टर ने पुनः प्रश्न किया।

चपला ने डॉक्टर की ओर देखकर कहा—"मैं कुछ नहीं जानती।"

डॉक्टर गुरहा—"आपने क्या इन्हें बेहोश देखा था ?"

चपला ने अपने बिखरे हुए विचारों को एकत्र किया और कहा—"हाँ, जब मैं आई थी, तब वह बेहोश नहीं थे। मुझसे कुछ कह रहे थे, मुझे याद नहीं कि क्या कह रहे थे। शायद उसी बीच में वह उठे। कमज़ोर होने के कारण गिर पड़े। रक्त देखकर मैं चीख़ उठी।"

डॉक्टर गुरहा—"मिस्टर माथुर, देखिए, कमज़ोरी इतनी है कि इतना हल्का धका बरदाश्त नहीं हो सका। अब तो और ज़्यादा कमज़ोर हो गए हैं। देखिए, बेहोशी कब दूर होती है।"

डॉक्टर गुरहा निर्मल को होश में लाने के प्रयत्न करने लगे। शांता और चपला स्थिर दृष्टि से देख रही थीं। आध घंटे प्रयत्न करने के बाद निर्मल की मूर्च्छा भंग हुई। उन्होंने चारो ओर देखा, और बोलने का यत्न किया, लेकिन उनके मुख से बोल न फूटा। उन्होंने इशारे से पूछा—"यह क्या हुआ ?"

डॉक्टर गुरहा ने उन्हें चुप रहने का संकेत किया।

डॉक्टर गुरहा—"मिस्टर माथुर, धुले हुए कपड़े मँगवाइए। अब कोई डर नहीं। दो-तीन रोज़ में यह कमज़ोरी भी दूर हो जायगी। लेकिन सावधानी की अब बड़ी आवश्यकता है। यदि ऐसी दुर्घटना एक और हो जायगी, तो स्थिति बड़ी भयंकर हो उठेगी।"

मिस्टर माथुर—"सावधान तो हम लोग बहुत रहते थे, लेकिन न-जाने यह दुर्घटना कैसे हो गई।"

धुले हुए कपड़े आ गए। डॉक्टर और मिस्टर माथुर ने निर्मल के कपड़े बदले। चपला ने बिछौना बिछा दिया। निर्मल फिर लिटा दिए गए।

डॉक्टर गुरहा ने जाते समय कहा—"मिस्टर माथुर, मैं जाकर दूसरी दवा भेजता हूँ। उसे दो-दो घंटे में पिला दीजिएगा। देखिए, सावधान रहिएगा। फिर कहीं ऐसी दुर्घटना न हो जाय।"

डॉक्टर गुरहा चले गए।

डॉक्टर के जाने के बाद शांता ने पूछा—"अब कैसी तबियत है?"

निर्मल ने बहुत ही धीमे स्वर में उत्तर दिया—"अब अच्छी है। घबराओ नहीं।"

शांता—"कैसे गिर पड़े थे?"

निर्मल—"मैं उठ रहा था, लेकिन कमज़ोरी के सबब से गिर पड़ा।" निर्मल ने चपला की ओर देखा। चपला अपराधिनी की भाँति खड़ी थी।

शांता—"दूध पिओगे, ले आऊँ?"

कमरे में शांता और चपला के अतिरिक्त और कोई न था। मिस्टर माथुर दवा का प्रबंध करने गए थे, और राजेश्वरी दूध गर्म कर रही थी।

निर्मल ने सिर हिलाकर कहा—"हाँ, ले आओ।"

शांता चली गई।

निर्मल ने चपला की ओर देखकर कहा—"चपला, मुझे माफ़ न करोगी?"

चपला सब कुछ भूल गई थी। वह उनके पर्यंक पर बैठ गई।

निर्मल ने फिर पूछा—"चपला, क्या मेरा अपराध माफ़ न करोगी?"

चपला ने उमड़ते हुए आवेग को रोककर कहा—"क्यों आप मुझे दुखी करते हैं और अपने को भी। मैं आपसे विनय करती, ऐसी बातें न करिए।"

निर्मल—"चपला, मैंने अपराध किया है, मुझे । वह तो मुझे
तक तुम क्षमा न करोगी, मैं शांति से मर न सकूँगा ।' प्रेम था ।
चपला ने व्यथित नेत्रों से निर्मल की ओर देखा । आँखें उसकी
से डबडबाई थीं । के

निर्मल—"चपला, मुझे मालूम हो रहा है कि मैं अब नहीं बचूँगा । संसार में मेरे लिये सुख है ही नहीं । विधाता ने भाग्य में लिखा ही नहीं । चपला, तुम मुझे माफ़ करो, नहीं तो मैं शांति से मर भी न सकूँगा ।"

निर्मल के एक-एक शब्द चपला के हृदय में बर्छी का काम कर रहे थे । उसने आहत दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा—"तुम क्या कह रहे हो ? ईश्वर के लिये ऐसा न कहो । मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अगर तुम्हें कुछ हो गया, तो मैं ही जीकर क्या करूँगी ? तब मेरा संसार में रहेगा ही क्या ?"

निर्मल को विश्वास न हुआ कि यह स्वप्न है या सत्य । निराशा-वस्था की आशा भ्रमोत्पादक है ।

चपला—"क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ? तुम इस लोक के तो नहीं, परलोक के स्वामी हो । मेरे जीवन-सर्वस्व हो ।"

निर्मल—"चपला ।"

उनके स्वर में प्रेम का संसार छिपा था । आवेग और कंपन से पूर्ण था ।

चपला—"मैं जानती हूँ, इस जीवन में मैं तुम्हें नहीं पा सकती, और न पाने का यत्न करूँगी । क्योंकि तब मेरा प्रेम स्वार्थमय हो जायगा । प्रेम में स्वार्थ पाप का चिह्न है ।"

निर्मल ने सप्रेम चपला का हाथ पकड़ लिया । चपला ने अपना हाथ छुड़ाया नहीं, और ढीला कर दिया । चपला अपने को भूल गई थी । प्रेम-राज्य में मनुष्य अपने को भूल जाता है ।

निर्मल ने चपला के मुलायम हाथों को दबाते हुए कहा—"चपला, मैं इस जन्म में तुम्हें प्राप्त करूँगा। मैं तुमसे विवाह करूँगा।"

चपला—"मुझे अधिक लोभ न दो। मैं अबला हूँ। फिसल जाऊँगी। मुझे कुमारी-जीवन व्यतीत करने दो। मैं किसी दूसरे का अधिकार न छीनूँगी, क्योंकि ऐसा करने से हमारे-तुम्हारे प्रेम में स्वार्थ आ जाता है। निष्काम प्रेम भक्ति है। मैं आपकी भक्ति करती हूँ। जिस भक्ति से पुजारी अपने भगवान् की पूजा करता है, उसी भक्ति से, बल्कि उससे भी अधिक भक्ति से मैं तुम्हारी पूजा करती हूँ। पुजारी मूर्ति को नहीं पूजता, भगवान् की शक्ति को पूजता है। मुझे तुम्हारे शरीर से प्रेम नहीं, मैं तो तुम्हारी पूजा करती हूँ। मेरा हृदय तुम्हारे हृदय का दास है। यह प्रेम दो आत्माओं का प्रेम है, दो शरीर का नहीं। फिर क्यों मैं आपको आपके उच्चादर्श से गिराकर पतित करूँ?"

निर्मल चपला की ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहे थे।

निर्मल—"चपला, तुम्हारे मिलन की आशा ही मुझे जिला सकती है।"

चपला—"मैं तुमसे जुदा कब हूँ? क्या तुम अपने हृदय में मेरा अस्तित्व अनुभव नहीं करते। मैं तुम्हारी हूँ, और सदैव बनी रहूँगी। मेरा प्रेम तुम्हारी रक्षा करेगा। जब सावित्री ने अपने मृत पति को जिला लिया था, तब क्या मैं तुम्हें जीवित नहीं रख सकती। निस्स्वार्थ प्रेम ईश्वर है। जिसकी ईश्वर रक्षा करेगा, उसका मृत्यु क्या कर सकती है। मैं सदैव तुम्हारी हूँ, और रहूँगी।"

निर्मल—"चपला, मैं तुमसे विवाह करूँगा। विवाह करके तुम्हें सदैव के लिये अपने कर लूँगा।"

चपला के शरीर में विद्युत्प्रवाह दौड़ गया। वह बेसुध हो गई। उसके विचार, उसके उच्चादर्श काफ़ूर हो गए।

निर्मल ने चपला को अपनी ओर खींचकर कहा—"चपला, इस

संसार में मा को छोड़कर और मेरा कोई न था। वह तो मुझे छोड़कर चली ही गई। कभी उसके प्रति मेरा अगाध प्रेम था। उसके जाने के बाद जो मुझे मनोवेदना थी, वह अकथ्य है। उसकी मूर्ति सदैव मेरी आँखों के सामने रहती थी। उसको भुलाने के लिये मैं प्रवासी बना। प्रवास में तुमको पाया। तुमको पाकर मैं उसे भूल गया। तुम्हें पाकर मुझे शांति मिली। यहाँ आने के बाद जिस दिन मा ने तुमसे हँसी में कहा था कि अगर नन्हे का विवाह न हो गया होता, तो मैं तुम्हें अपनी बहू बनाती। उस दिन से मेरे मन में एक नया भाव पैदा हुआ। मालूम हुआ, मा तुम्हें पाकर प्रसन्न हो जायगी। उसी दिन से मेरे हृदय ने अपना रूप बदलना आरंभ किया। जितना मैं तुम्हें देखता, उतना ही मेरा प्रेम तुम्हारी ओर उमड़ता। उस दिन रात्रि को मैं अपने को भूल ही गया था। मैंने उस रात्रि को अनुभव किया कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैंने दूसरे दिन मा से कहा कि मैं विवाह करूँगा। मा ने सम्मति दे दी। चपला, यही बात कहने के लिये आज चार रोज़ से तड़प रहा हूँ। चपला, प्राणेश्वरी, क्या······?"

चपला बिलकुल अपने को भूल गई। समय, दशा, स्थान, सब कुछ भूल गई। जिसको प्यार करो, उसके प्रेम-वाक्य मदिरा से भी अधिक मस्त कर देते हैं। प्रेम का नशा अपनी पूरी लहर में होता है। चपला नशे से झूम रही थी। उसने अपना मस्तक निर्मल के वक्षःस्थल में छिपा लिया। उसके आलुलायित केश-दाम निर्मल के वक्षःस्थल पर क्रीड़ा करनेलगे। निर्मल और चपला, दोनो के शरीर में एक तड़ित्प्रवाह दौड़ रहा था, रोमांच हो रहा था, और एक अपूर्व आनंद उन्हें मिल रहा था। प्रेम-शिकारी अपने शिकार को खिला रहा था।

चपला के नेत्र बंद थे। निर्मल के मुख पर चपला के बालों की

लटें बिखरी हुई थीं। निर्मल ने धीरे-धीरे उसके मस्तक को चूम लिया। चपला के शरीर में तड़िःप्रवाह ने ज़ोर पकड़ा। नशे का झोंका और वेगमय हो गया। चपला झूमने लगी। उसने भी सिर उठाया, और निर्मल के शुष्क अधरों को चूम लिया। सुधा-प्याला छलकने लगा, और उसकी बूँदें गिरने लगीं। चपला और निर्मल दोनो वेहोश थे। प्रेम वेहोश करके मज़ा देखता है! तभी प्रेम को लोग कोसते हैं।

निर्मल ने धीमे स्वर में पूछा—"चपला, मेरे साथ विवाह करोगी ?"

चपला ने भी धीमे कंठ में उत्तर दिया—"हाँ।"

सहसा किसी के दौड़ते हुए पगों ने दोनो को चौंका दिया। चपला और निर्मल, दोनो की दृष्टि द्वार पर चली गई। द्वार पर स्तंभित कुमुदिनी खड़ी थी। चपला उठ खड़ी हुई। प्रेम का नशा उतर गया। वह नीचे मस्तक किए खड़ी रही। निर्मल भी चुप थे। कमरे में निस्तब्धता छाई थी। कुमुदिनी धीरे-धीरे दृढ़ पदों से निर्मल के पर्यंक की ओर बढ़ी। उसने भक्ति-पूर्वक स्वामी के चरणों में प्रणाम किया। रज लेकर मस्तक में धारण की, और धीरे-धीरे कमरे के बाहर हो गई।

किसी में साहस न हुआ कि कुमुदिनी को रोके। चपला अपराधिनी की भाँति खड़ी रही।

चपला जाने लगी। निर्मल ने कहा—"चपला, जाओ नहीं, मेरे पास बैठो।"

चपला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह ठहरी नहीं।

निर्मल—"कहाँ जाती हो चपला!"

चपला ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसको अपने से घृणा हो रही थी। कुमुदिनी ने उसे क्या समझा होगा, यही एक चिंता थी।

चपला चली गई। निर्मल के मुख से एक ठंडी साँस निकल गई।

(१०)

जीन तालमाँ नामधारी डिक की गिरफ़्तारी का समाचार विद्यु-द्वेग से फैल गया। अध-गोरे पत्रों में बड़ी चर्चा होने लगी। चित्र-पर-चित्र निकलने लगे, और अपने पत्रों के कालमों में पुलिस की बड़ी-बड़ी स्तुतियाँ प्रकाशित होने लगीं। मिस स्मिथ और टैगार्ट की प्रशंसा से भारत गूँज उठा। इँगलैंड और भारत-सरकार ने अपने घोषित पुरस्कार दिए। दत्त-ख़ानदान और सेठ माणिकलाल ने भी उनकी पूजा की। कलकत्ते के मदन-थिएटर्स के अध्यक्ष-गण उनके 'फ़िल्म' लेने लगे। जॉन डिक की गिरफ़्तारी एक महत्त्व-पूर्ण घटना थी।

जॉन डिक की गिरफ़्तारी के बाद क्या केट ट्रैंसम को शांति मिली? नहीं, उसके हृदय की ज्वाला शांत नहीं हुई। वैसी ही रही। प्रतिशोध से हृदयाग्नि शांत नहीं होती, वरन् और उग्र रूप धारण करती है। प्रतिशोध पानी-जैसा है, पर पानी मिट्टी के तेल की आग बुझा नहीं सकता, वरन् और बढ़ाता है। उसी प्रकार प्रतिशोध हृदयाग्नि बुझाता नहीं। क्षमा और विस्मृति ही घाव पर मरहम का काम करते हैं।

केट पहाड़ी दृश्य देखती हुई घूम रही थी। लेकिन उसके हृदय में शांति नहीं थी। भविष्य की चिंता उसे व्याकुल किए हुए थी। उसका भविष्य कर्महीन-सा देख पड़ता था। वह विचार-सागर में मग्न थी। वह सोच रही थी—"अब मेरा क्या कर्तव्य है? संसार में अब तो मेरा कोई दूसरा काम नहीं। भविष्य अकर्मण्य दिखाई पड़ता है। डिक गिरफ़्तार हो गया। पर क्या मेरे हृदय को शांति मिली? मिस्टर वर्मा की हत्या की गई थी, पर क्या मुझे शांति मिली थी। एक तीव्र ज्वाला से मेरा हृदय जला जाता है। इसका उपाय क्या है? इस अग्नि को कैसे शांत करूँ?

"अब भारत में मेरा क्या काम है। सब काम समाप्त हो गया! हाय, किस साध से, किस उमंग से, किस आशा से, किस उत्साह से मातृभूमि छोड़ी और विदेशिनी बनी थी, लेकिन वह सब नष्ट-भ्रष्ट हो गया। न-मालूम किसने एक ही फुफकार में सब भस्म कर दिया। जिस मनुष्य का विश्वास करके मैंने अपना सर्वस्व उत्सर्ग किया था, उसी ने मेरे साथ विश्वासघात किया। प्रतिशोध लेने का दृढ़ विचार हुआ, लेकिन उसका मलीन मुख देखकर मेरी खूनी इच्छाएँ काफ़ूर हो गईं। मैं बदला लेना भूल गई। पुराने प्रेम ने जोश मारा, और अपनी धार में सब कुछ बहा ले गया। लेकिन डिक ने उनकी हत्या कर ही डाली। उसका कथन था कि उसने मेरे लिये उनका ख़ून किया। यह असंभव है। वह घोर स्वार्थी था। स्वार्थी निस्स्वार्थी नहीं हो सकता। मिस्टर वर्मा की मृत्यु के बाद यह मेरा ध्येय हो गया कि मैं उसको पकड़वाऊँगी। हाय, वह भी हो गया! आज डिक भारत-सरकार का मेहमान है!

"अब संसार में मेरा कौन काम है? यदि स्वदेश जाती हूँ, तो लोग हँसेंगे। मित्र क़हक़हा मारेंगे। मैंने उनका कहना न माना था। उनका सदैव तिरस्कार किया था। बड़े-बड़े धनियों के प्रस्तावों को ठुकराकर मैंने इनके साथ विवाह किया था। किसी की भी बात न मानकर यहाँ आई थी। अब वहाँ कौन मुँह लेकर जाऊँ। सब लोग हँसेंगे, और खुल्लमखुल्ला मेरा अपमान करेंगे। तब फिर क्या करूँ?

"आत्महत्या! कैसा भयंकर शब्द है! पर एक संसार-उदासीन के लिये नहीं। आत्महत्या ही शायद मेरा अंतिम अवलंब होगा। हँसते-हँसते क्यों न मर जाऊँ! एक ही बार में सब क्यों न समाप्त कर दूँ। चिंता, राग, विराग, आशा, उमंग, उत्साह, शोक, दुख, हिंसा, जलन, हँसी, विषाद, सबसे छुटकारा मिल जाय। असीम शांति, अखंड विराम और अनंत स्थिरता में लीन हो जाऊँगी। उस अपरि-

चित संसार में जाऊँगी, जहाँ प्रेम-नदी कभी सूखती नहीं, शांति-लता मुरझाती नहीं, प्रकृति सौंदर्य के नित्य नूतन साज सजती है। जो अनंत विस्मृति का घर है। क्षमा का मंदिर है। अनुराग और सुहाग दो नर्तकी जहाँ निरंतर नाचा करती हैं। जहाँ संगीत की मधुर ध्वनि उत्तेजना और नशा नहीं पैदा करती, वरन् शांति और विस्मृति का संदेश देती है। आत्महत्या के बाद वही स्थान है। तब क्या आत्महत्या ही मेरा अंतिम अवलंब होगा?

"पर आत्महत्या के नाम से मन सिहर उठता है। हृदय में एक तीव्र कंपन होता है। जीवन और मृत्यु में युद्ध होता है, और हृदय रण-भूमि बनता है। लहलहाते जीवन में अचानक मृत्यु का तुषार-पात करना पड़ेगा। बस, यही सोचकर मन काँप उठता है। लेकिन मेरा जीवन लहलहाता हुआ कहाँ, वह तो मुरझाया हुआ है—अर्द्ध-मृत है। पर क्या अर्द्ध-मृत को मारना पाप नहीं? आत्महत्या भीरुता का एक लक्षण है। मैं क्या भीरु हूँ? नहीं, जिसने इँगलैंड में जन्म लिया है, जो वीर-प्रसू जननी की बालिका है, वह भीरु कभी नहीं हो सकती। मा की सुयश-चादर में कलंक का धब्बा लगाकर मैं खराब न करूँगी। क्या मा के इतने बड़े आँचल में मेरे लिये स्थान न होगा। मा क्या कभी अपनी संतान को ठुकराती है, बल्कि प्रवासी और दुखी संतान का स्वागत बड़े प्रेम से करती है। अपने वक्षःस्थल से लगाकर उसे शांति देती है। स्वदेश की धूलि में विहार करना स्वर्ग-सुख से भी बढ़कर है। मा अपनी मातृहारा बालिका को बुला रही है, मैं उसी की गोद में अपना मुख छिपाऊँगी। एक समय था, जब मैंने मा का कातर आह्वान नहीं सुना था, लेकिन इस समय, जब मेरा सुहाग नष्ट हो गया है, तब भी क्या मैं उनके आदर-आह्वान की अवहेलना कर सकती हूँ? नहीं।

"भविष्य कोई नहीं जानता। मनुष्य का ज्ञान सीमाबद्ध है। उसे नहीं मालूम कि दूसरे क्षण क्या होगा? अगर मैं जानती कि जिसे मैं प्यार करती हूँ, वही मेरा प्राण-ग्राहक हो जायगा, मेरे साथ विश्वासघात करेगा, मेरा स्वप्न-संसार नष्ट हो जायगा, एक-एक टुकड़े को मारी-मारी फिरूँगी, तब क्या मैं कभी इँगलैंड छोड़ती! मनुष्य का ज्ञान इतना सीमाबद्ध क्यों है? इसलिये, क्योंकि वह अनंत को छोड़कर सीमाबद्ध वस्तुओं में फँस जाता है। संसार के मोह-बंधन में, मिथ्या सुख-कल्पना में, क्षण-भंगुर वस्तुओं में अपने को निमज्जित कर देता है—तब क्यों उसका ज्ञान सीमाबद्ध न हो। जो संसार के मोह-पाश से अपने को विच्छिन्न करके अनंत की ओर जाते हैं, उनका ज्ञान कभी सीमाबद्ध नहीं रहता। उनके सामने भविष्य वैसा ही साफ़ रहता है, जैसा वर्तमान। भगवान् का ज्ञान सीमाबद्ध नहीं है, तभी तो उसे अनंत कहा है। अनंत में लीन हो जाने से मनुष्य स्वयं अनंत हो जाता है। तब भूत, भविष्य, वर्तमान, तीनों काल एक-से हो जाते हैं।

"संसार में अब मेरा कुछ नहीं। हर तरफ़ से निराश हो चुकी हूँ। कहाँ जाऊँ? कहीं भी स्थान नहीं! नहीं, अब भी एक स्थान है—परमपिता ईश्वर की गोद! मैं भी क्यों न उस अनंत की ओर प्रस्थान करूँ। क्या भगवान् मुझे ग्रहण न करेंगे? जिसे संसार छोड़ देता है, उसे भगवान् तो नहीं छोड़ते, वरन् उसे और आदर तथा सम्मान से रखते हैं। महात्मा ईसा का कथन है—'पिता को दुखी बच्चे सुखी बच्चों से अधिक प्यारे होते हैं। संतप्त संतान को वह बड़े प्रेम से रखते हैं।' तब पिता की गोद ही ठीक है। संसार से उन्मुक्त होकर पिता की क्रोड़ में अपना मुख छिपा लूँगी। किसी एकांत-स्थल में अपनी आत्मा पिता को समर्पित कर दूँगी।

"इस पवित्र विचार से मन तो नहीं काँपता, वरन् एक अपूर्व, अचिंत्य हर्ष उत्पन्न होता है। कंपन होता है, पर इस कंपन में गुद-गुदी है, आशा और सुख की छाया है; रोमांच होता है, पर हृदय पुलकित होने से रोमांच होता है। इसमें आत्महत्या का ज्वलित ताप नहीं, भय का-कंपन नहीं, सिहर उठने का रोमांच नहीं, वरन् प्रेम और भविष्य-मिलन की आशा की पुलक है, अनंत सुख की गुदगुदी है। इसके बाद भी तो वही कल्पना का स्वर्ग है, जो आत्म-हत्या के बाद था। लेकिन इसमें आत्महत्या की टीस और जलन नहीं, बल्कि आदि से ही शांति और प्रेम है, जो अंत तक स्थिर रहेगा, और शायद मृत्यु के बाद भी।

"तब यही पथ मेरे लिये श्रेयस्कर है। मैं संसार त्यागकर अनंत की ओर जाऊँगी—क्षणिक प्रेम को छोड़ अनंत प्रेम को प्राप्त करूँगी। क्षण-भंगुर आनंद को त्यागकर अखंड ब्रह्मानंद में लीन हो जाऊँगी। यह जो अगाध संपत्ति मिली है, उसे लुटा दूँगी। धन मोह का प्रधान सहचर है। मैं अब मोह-जाल में न फँसूँगी। यह भारत का धन है, इसे भारत ही में छोड़ जाऊँगी। थोड़े-से धन के लिये मैं विदेश की ऋणी नहीं बनूँगी। अभी तक यहाँ का जल-वायु, अन्न ग्रहण किया था, केवल इसलिये कि मेरा यहाँ अधि-कार था। मैं यहाँ के एक संतान की स्त्री थी। स्त्री की हैसियत से मेरा अधिकार अवश्य था—मैंने अपना अधिकार-भर ग्रहण किया है। यहाँ का धन यहीं छोड़ जाऊँगी। किसको दे जाऊँ? किसी एक व्यक्ति के हाथ में देने से इसका अपव्यय होगा। किसी संस्था में लगा दूँ? नहीं, अपने प्रियतम की स्मृति में सब लगा दूँगी। अपने देवदत्त की स्मृति चिरस्थायी कर जाऊँगी। क्या इस समय भी मैं अपने देवदत्त को भूल सकती हूँ?"

केट अपने विचारों में इतनी तन्मय हो गई थी कि उसे इतना ज्ञान

न था कि समय और स्थान जान सके। वह घूमती हुई उस पहाड़ी के निकट जा पहुँची, जहाँ से निर्मल गिरे थे। उसी के पास एक शिला-खंड पर बैठी हुई चपला अपने विचार-सागर में निमग्न थी। केट आकर उसी शिला-खंड की दूसरी ओर बैठ गई। किसी ने एक दूसरे को नहीं पहचाना। एक ने दूसरे को अपरिचित ही समझा। चपला को तो इतना भी ज्ञान न था कि कोई उसके पीछे बैठा है। चिंता-समाधि ही आत्मविस्मृति है।

चपला अस्फुट स्वर से कह रही थी—"मैं उन्हें प्यार करती हूँ। अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ। मेरे जीवन की साध, उमंग, आशा, उत्साह, सोहाग, प्रेम सब कुछ वह हैं। मेरे अंधकारमय जीवन के अलोक हैं, मैं किस तरह उन्हें पाऊँ। मैं उनको तो इस जीवन में पा नहीं सकती। तब फिर यह निष्फल प्रयत्न क्यों? इसके अतिरिक्त मैं तो उन्हें उनके उच्च आदर्श से पतित नहीं कर-वाऊँगी। मैं उन्हें प्यार करती हूँ केवल इसलिये कि वह इतने महान् हैं, इतने उच्च हैं। उच्च वस्तु लाभ करने में ही तो गौरव है, जीवन का आनंद है। उच्च वस्तु के लाभ के प्रयत्न में मर जाना भी सफल जीवन है। भगवान् की पूजा करते-करते मर जाना श्रेष्ठतम मृत्यु है! प्रेम भगवान् है, और भगवान् प्रेम है। भगवान् किसी एक विशेष वस्तु में नहीं। वह सब जगह वर्तमान है। यदि मूर्ति में है, तो प्रेम में भी है। मूर्ति-पूजा अनंत प्रेम की द्योतक है। यदि मैं अपने प्रेम-भगवान् की पूजा करते-करते मर जाऊँ, तो क्या मेरा जीवन असफल जीवन होगा?

"मनुष्य-जाति की सेवा—यह भी एक उच्च आदर्श है। अपने स्त्री-समाज को निस्स्वार्थ प्रेम का पाठ पढ़ाना—यह भी एक महान् आदर्श है। भविष्य में अब मेरा यही लक्ष्य रहेगा। निस्स्वार्थ प्रेम का पाठ पढ़ाऊँगी, निस्स्वार्थ प्रेम करूँगी, और निस्स्वार्थ प्रेम से भगवान् की

पूजा करूँगी। बस, यही मेरे जीवन का कर्तव्य होगा। यही तीन बातें मेरे जीवन के 'प्रोग्राम' में होंगी। भविष्य दुरूह तो अवश्य है! दुरूह कैसे? दुरुह का विचार करने से ही मैं अपने महान् आदर्श से गिर जाऊँगी। ये उच्च आदर्श, जो मैं अपने कल्पना-स्तंभ पर बना रही हूँ, एकदम से ढह जायँगे। मैं फिर अपनी नज़रों में आप घृण्य हो जाऊँगी। जब मनुष्य अपने से घृणा करने लगता है, तब उसका जीवन उसी के लिये भार हो जाता है। वह पग-पग पर असफल होता है, और असफलता अपमृत्यु की द्योतक है। मैं अप-मृत्यु नहीं चाहती। शांति से कल्पना का सुख-स्वप्न देखती हुई मरना चाहती हूँ। अपनी मृत्यु पर संसार के आँसू गिरवाना चाहती हूँ। हाय! फिर वही स्वार्थ! यह भावना कि कोई मुझ पर आँसू बहाए, स्वार्थ है। जीवन के पग-पग पर स्वार्थ का जाल फैला है। इससे बचकर निकलना हँसी नहीं है, लड़कों का खेल नहीं। निस्स्वार्थ भाव से कर्तव्य पालन करना यही तो सफल जीवन है। भगवान् को प्राप्त करने के लिये कठिन तपस्या करनी पड़ती है। मुझे अपने भगवान् पाने के लिये निस्स्वार्थ प्रेम की तपस्या करनी पड़ेगी। मैंने दीक्षा ले ली है। तब फिर भय किस बात का। भगवान् अपने भक्तों की सहायता करता है, तो मेरी सहायता और रक्षा मेरा देवता प्रेम करेगा। साँस रोककर जल में छोड़ देने से आदमी डूबता नहीं, उतराता है। मैं भी वासना, इच्छा, लालसा, सबको छोड़कर प्रेम-सागर में अपने को छोड़ दूँगी। मेरी मृत्यु न होगी! मैं उतराऊँगी। प्रेम में डूब जाना स्वार्थ है, प्रेम में उतराना स्वार्थ नहीं।

"हाय! किस कुघड़ी में उस दिन उनके कमरे में गई थी। उनके सामने जाने से ही मैं बिलकुल निःशक्त हो गई थी। मेरी सब प्रतिज्ञा, मेरे सब विचार काफ़ूर हो गए। मैं अपना अस्तित्व भूल गई। उनकी बहती हुई प्रेम-धारा में डूब गई। समय, स्थान का

कुछ भी ज्ञान न रहा। मैं उनके प्रेम-पाश में स्वयं लिपट गई। हाय! उस दिन हृदय को कैसी शांति मिली थी, मानो किसी ने धधकती ज्वाला में पानी छोड़ दिया हो, बुख़ार में बर्फ़ के पानी से नहला दिया हो। बुख़ार में नहाने से सरसाम हो जाता है। सरसाम से मृत्यु हो जाती है। उस शीतल धारा में स्नान करने से यह पश्चात्ताप और वृश्चिक-दंशन का दुख भोगना पड़ा। और, कुमुद मृत्यु-रूप में आई। उनके लिये मैं अब मृत हूँ। सखी का खिलौना माँगकर खेला था। माँगी हुई वस्तु से इच्छा पूर्ण नहीं होती, वरन् और बढ़ती है। ओस चाटने से कहीं प्यास बुझती है!

"कुमुदिनी ने क्या समझा होगा? उसके मुख पर उस समय घृणा का कितना ज़बरदस्त भाव था! मारे घृणा के मेरी ओर देखा तक नहीं। न कोई प्रश्न किया, और न बोली। वही कुमुद, जो मुझे देखती ही हँसती हुई मेरा स्वागत करती थी, उसी ने उस दिन घृणा से मुँह फिरा लिया। कुमुद के आने के बाद उनके स्वर में भी विरोधाभास था। हाय, अब तो मैं सबकी नज़रों से गिरी जाती हूँ।

"अगर मैं यहाँ रहूँगी, तो वह मुझसे विवाह अवश्य करेंगे। मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। एक दफ़े जो कहा है, वह करेंगे। वह मुझे दुखी कदापि नहीं करेंगे। उस दिन रात्रि को जब मैं उनका चुंबन करने के लिये झुकी थी, तब उनकी आँखें खुल गईं। शायद उसी दिन उन्हें मेरे प्रेम का पता लगा, और उसी दिन मेरे साथ विवाह करने का निश्चय किया। अपने ऊपर बलात्कार किया, अपने आदर्श का ख़ून कर डाला। वह दूसरा विवाह करने के लिये तैयार हो गए। माजी कहते-कहते हार गई थीं कि दूसरा विवाह करो, लेकिन उन्होंने नहीं किया, लेकिन मेरा पागल प्रेम, मतवाला अनुराग देखकर अपने आदर्श की हत्या करने तक पर सन्नद्ध हो गए। कितना उच्च हृदय है। मैं जानती

हूँ कि कुमुदिनी को वह अपने प्राणों के समान प्यार करते हैं। यदि किसी की चिंता उन्हें सदैव रहती है, तो कुमुद की, लेकिन इतना होते हुए भी मेरे लिये उसी स्थान में जगह दे दी, जहाँ अकेले कुमुदिनी विराजती थी। ऐसे महान् पुरुष के लिये क्या मैं योग्य स्त्री हो सकती हूँ? नहीं, उनका-सा होने के लिये मुझे तपस्या करनी पड़ेगी। बग़ैर उनके समान हुए क्या मैं उनकी अर्धांगिनी होने योग्य हूँ। मणि और काँच एक साथ शोभा नहीं देते हैं। यदि काँच मणि की बराबरी भी करना चाहे, तो उसको अपना शरीर कटवाना-छटवाना पड़ता है। उसमें मणि की-सी चमक तो नहीं आती, लेकिन उसमें रूप जाता है।

"मैं स्वदेश त्यागकर प्रवासिनी बनूँगी। किसी एकांत स्थान में जाकर तपस्या करूँगी। परंतु एकांत में तो अपने स्त्री-समाज की सेवा न कर सकूँगी। कर्म-हीन होकर एकांत की तपस्या तो स्वार्थ है। समाज और देश की सेवा करते हुए प्रेम-तपस्या शायद स्वार्थ नहीं है। जल में रहकर जल न लगने देना यही तो तपस्या है। संसार से अलग, एक निर्मल स्थान में तपस्या करना एक साधारण बात है, स्वार्थ-द्योतक है। तपस्या जो किसी स्वार्थ-साधन के लिये की जाती है, निष्फल होती है। मैं तपस्या करूँगी उनको पाने के लक्ष्य से नहीं। मेरी तपस्या के प्रभाव से वह तो आप-से-आप मिल जायँगे। मोती की खोज में सीप आप-से-आप मिल जाती है। उसके लिये कोई प्रयास नहीं करता। मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह मेरे हैं, और मुझे पर-जन्म में मिलेंगे। मेरी तपस्या उन्हें अपने आप घसीट लावेगी।

"अपने लिये माता और पिता को दुखित न करूँगी। मेरे विवाह न करने से पिता को थोड़ा कष्ट होगा, लेकिन जहाँ उन्हें मेरे विचारों का पता लगा, वह पुण्यमय कार्य के करने से कभी न

रोकेंगे। मा रोएँगी, लेकिन पिता उन्हें समझा-बुझाकर शांत कर देंगे। मेरे विवाह न करने से वह दुखी क्यों होंगी। उन्हीं की गोद में तो मैं रहूँगी। उन्हीं की सदैव बनी रहूँगी। इससे उनको प्रसन्न होना चाहिए, दुखी नहीं। शायद दुखी इस लिये हों कि मैं अपने चरित्र पर दृढ़ रह सकूँगी या नहीं। उनके वंश में कहीं कलंक का टीका न लगा दूँ। लेकिन चपला से उनको यह भय न होना चाहिए। मैं अपने चरित्र से पतित नहीं हो सकती। जो संसार से उदासीन रहता हो, उसे संसार के आकर्षण भला किस तरह खींचेंगे। जिसके हृदय में उनका चित्र खिंचा है, उनके सदुपदेश भरे हैं, जो निस्स्वार्थ प्रेम की भिखारिणी है, उसका संसार का तीव्र-से-तीव्र आकर्षण कुछ बिगाड़ नहीं सकता। आकर्षण तो उसके लिये है, जिसकी कोई साध बाक़ी हो। जो एक महान् आदर्श की ओर जाता हो, उसकी राह क्या रास्ते के छोटे-छोटे रोड़े रोक सकते हैं। एक ज़रा-सी ठोकर से तो वे भूमि से आ मिलेंगे। मुझे अपने चरित्र पर विश्वास है, अपने मन पर पूर्ण आधिपत्य है। मैं चरित्र-हीन नहीं हो सकती। चरित्र-हीन होने से मैं अपने महान् आदर्श से गिर जाऊँगी। महान् आदर्श से गिरकर जीवन व्यतीत करना रौरव-यंत्रणा है। माता-पिता को यह भय त्याग देना चाहिए। यदि वे न समझेंगे, तो मैं उन्हें समझाऊँगी कि तुम्हारी चपला हँसते-हँसते प्राणों पर खेल जायगी, लेकिन अपने उच्च आदर्श से पतित न होगी। चपला तुम्हारी सुयश-चादर पर कलंक का टीका न लगावेगी। चपला आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर जाति-सेवा, समाज-सेवा और देश-सेवा में जीवन व्यतीत करेगी। तुम्हारी चपला निस्स्वार्थ प्रेम की जोगिन बनेगी। योगिनी का संसार के आकर्षण कुछ बिगाड़ नहीं सकते।"

केट चुपचाप बैठी हुई चपला की बातें सुन रही थी। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। लेकिन उसे इतना मालूम हो गया था

कि मेरी भाँति यह भी दुखी है। एक दुखी एक दूसरे दुखी को तुरंत पहचान लेता है। न-मालूम क्यों, पर पहचान लेता है। यही तो आश्चर्य है। संसार में कुछ ऐसी बातें हैं, जिन पर आश्चर्य प्रकट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। मनोविज्ञान स्वयं परेशान है।

केट चपला का वारंवार नाम सुनकर उत्सुक हुई। उसने मुँह फिराकर संध्या के श्यामल प्रकाश में चपला के पहचानने का यत्न किया। चपला को पहचानकर उसने धीरे-धीरे कहा—"मिस माथुर!"

चपला चौंक गई। उसने भय से मुँह फिराकर देखा, पीछे मिस स्मिथ बैठी थीं। विषाद-पूर्ण चेहरे पर हँसी का भाव लाना पड़ा। क्या किया जाय, अपरिचित के सामने अपने मनोभावों को दबाना ही पड़ता है। चपला ने एक मलीन हँसी के साथ कहा—"कौन, मिस स्मिथ! आप यहाँ कब से बैठी हैं? आप कब आईं, मैंने आपको नहीं देखा, क्षमा कीजिएगा।"

केट ने भी अपने मुँह पर हँसी का भाव लाकर कहा—"मैं यहाँ बड़ी देर से बैठी हूँ, आपके विचार सुन रही थी, लेकिन कुछ समझ नहीं सकी। आप अपनी भाषा में कह रही थीं। शायद हिंदी बड़ी ही मधुर भाषा है। मैं समझती बिलकुल नहीं, लेकिन इतना मालूम हुआ कि आप बहुत दुखी हैं। आपके शब्दों में करुणा का भाव छिपा हुआ था। मिस माथुर, क्या आप भी वास्तव में दुखी हैं?"

चपला के मुँह से एक ठंडी निःश्वास निकल गई। सहानुभूति से दुख कम नहीं होता।

चपला—"इस प्रश्न से मालूम होता है, आप भी दुखी हैं।"

इस बार केट ने एक निःश्वास ली।

केट—"आपसे छिपाऊँगी नहीं, क्योंकि जिसे मैं अपने भाई के समान मानती हूँ, आप उनकी भगिनी हैं। हाँ, मिस माथुर, मैं दुखी हूँ।"

चपला—"आपको कौन दुख है ?"

केट—"मैं भी तो इसी तरह पूछ सकती हूँ कि आपको कौन दुख है। भद्र, संसार में कोई-न-कोई दुख सभी को होता है।"

चपला—"ठीक है, संसार में सभी का जीवन दुःखमय है। अगर जीवन सुखमय हो, तो अकृतज्ञ मनुष्य ईश्वर को भूल जाय !"

केट—"मिस माथुर, ईश्वर को दोष देना महापाप है।"

चपला—"मैं ईश्वर को दोष नहीं देती। वास्तव में हमीं लोग सुखी होना नहीं जानते। अच्छा, आपको कौन दुख है ? आइए, हम-आप अपना दुःख विनिमय करके अपने हृदय का भार हल्का करें। न-जाने क्यों मेरा मन कहता है कि मैं आपका विश्वास कर सकती हूँ।"

केट—"यह तो साधारण बात है। दुखी दुखी का विश्वास करता है।"

चपला—"आप भी क्या मेरा विश्वास करती हैं ?"

केट—"आज से नहीं, बहुत दिनों से, लेकिन आज न-मालूम क्यों मेरा मन अपनी व्यथा आपसे कहने के लिये उतावला हो रहा है।"

चपला—"मैं भी अपनी कथा आपसे कहूँगी।"

केट—"सुनो मिस माथुर, मेरी कहानी बड़ी दुखमय है। यहाँ भारत से एक मिस्टर देवदत्त वर्मा इँगलैंड में पढ़ने गए थे।"

चपला—"मिस्टर देवदत्त वर्मा कौन, इलाहाबाद के भूतपूर्व ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट !"

केट—"हाँ, वही, आप बात न काटिए। सुनिए ! आश्चर्य की कोई बात नहीं। मिस्टर वर्मा पढ़ने गए थे। वहाँ इनसे मेरा परिचय हुआ। मेरी जीवन-रक्षा की थी। मैं इनके प्रेम में पड़ गई। वह भी मुझे प्यार करने लगे। इन्होंने विवाह का प्रस्ताव किया। मैंने स्वीकार कर लिया, मेरा-इनका विवाह हो गया।"

चपला—(आश्चर्य से) "आप मिस्टर वर्मा की पत्नी हैं ?"

केट—"हाँ, मैं उनकी विवाहिता स्त्री हूँ। आई० सी० एस्० पास

कर लेने के बाद वह भारत की ओर रवाना हुए। मैं भी साथ थी। जहाज़ में एक तूफ़ानवाली रात में मुझे डेग से ढकेल दिया......"

चपला—"किसने, मिस्टर वर्मा ने ?"

केट—"हाँ, उन्होंने ही। गिरते वक्त मैंने उन्हें पहचाना था। क्योंकि उसी समय बिजली चमकी थी, और उस क्षणिक प्रकाश में मैंने सब कुछ देख लिया था। समुद्र में गिरते ही मैं बेहोश हो गई। जब दूसरे दिन होश आया, तो अपने को दूसरे जहाज़ में पाया। सुबह मुझे समुद्र-वक्ष पर तैरते देखकर एक दूसरे जहाज़ ने मेरी प्राण-रक्षा की थी। बांबे आते-आते मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गई। मेरे पास एक पैसा भी न था। जीविका की तलाश में घूमती-फिरती थी। अंत में पुरी के मिस्टर उड से भेंट हुई। इनको एक नर्स की आवश्यकता थी। मैंने वह पद स्वीकार किया। मिस माथुर, उस दिन से मेरा यह ध्येय हुआ कि मैं मिस्टर वर्मा से बदला लूँगी। उनको फाँसी पर लटकते देखकर मेरा जी शांत होगा। छ महीने मैं रुपया जमा करती रही, और मिस्टर वर्मा का पता लगाती रही, लेकिन कहीं पता लगता न दिखाई दिया। भाग्य-वश मिस्टर सिनहा से परिचय हुआ। शायद तुमको मालूम नहीं, मिस्टर सिनहा ने जहाँ मैं नौकर थी यानी मिस्टर उड के पुत्र को डूबते बचाया था, वह परिवार उनका बड़ा आभारी है, और मैं भी अब तक। मिस्टर सिनहा ने मेरे साथ सहोदर भाई का-सा व्यवहार किया। इन्हीं के द्वारा मालूम हुआ कि मिस्टर वर्मा इलाहाबाद में ज्वाइंट मैजिस्ट्रेट हैं। मैंने इनसे अपना मनोभाव प्रकट तो नहीं किया, लेकिन यह प्रतिज्ञा करवा ली कि मेरा पता उन्हें दें नहीं। मिस्टर सिनहा ने अपना वचन दिया। लड़के पढ़ने के लिये बांबे जानेवाले थे। उनके जाने के बाद मुझे छुट्टी मिल गई। एक दिन शाम को मैं समुद्र के किनारे घूम रही थी कि एक अँगरेज़ ने आकर मेरे असली नाम

से पुकारा। न-मालूम उसे कैसे मेरा असली नाम मालूम हुआ। यही नहीं, उसे मेरा पूरा हाल मालूम था। वह मिस्टर वर्मा को भी जानता था, उनसे मिल भी गया था। मैं आश्चर्य से उसका मुँह देखने लगी। उसने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की और बदला लेने के लिये उत्साहित किया। उसने कहा कि तुम मिस्टर वर्मा से धन ख़ूब लो, और आराम से जीवन व्यतीत करो। उस समय तो मेरे हृदय में प्रतिशोध की अग्नि धधक रही थी, मैंने घृणा से उसका प्रस्ताव ठुकरा दिया। अब मुझे मालूम हुआ कि उसका अभिप्राय क्या था। वह इँगलैंड का मशहूर डाकू 'जान डिक' था, जो यहाँ छद्म वेष और नाम से चला आया था, और यहाँ अपना व्यापार जमाना चाहता था। वह शायद मिस्टर वर्मा से मिल चुका था, और कुछ रुपया भी ऐंठ चुका था। अच्छा, दूसरे दिन मैंने उड-परिवार से विदा ली, और इलाहाबाद को रवाना हुई। डिक भी मेरे साथ था। इलाहाबाद में मिस्टर वर्मा को एक रोज़ देखा। उनमें बड़ा अंतर पाया। वह मुझे बड़े दुखी मालूम हुए। उनको देखते ही मेरे प्रतिशोध के विचार हवा हो गए। पुराने प्रेम ने जोश मारा। मैं सब कुछ भूल गई। मैं उनसे मिलने के लिये आतुर हो उठी। मैंने अपने मन में प्रतिज्ञा कर ली थी कि उन्हें क्षमा कर दूँगी, और फिर उनकी पत्नी बनकर प्रेम से जीवन व्यतीत करूँगी। यही सोचकर डिक को साथ लेकर उनके बँगले गई। मैं बाहर रही, और डिक को उनको सूचित करने के लिये भेजा। थोड़ी देर में पिस्तौलों का शब्द हुआ, और भागते हुए डिक ने आकर कहा—'केट, मैं वर्मा को मार आया।' मिस माथुर, उस समय मेरे ऊपर वज्रपात हुआ। मैंने डिक को भाग जाने दिया, और उसी रात को अपने स्वामी के शव के ऊपर शपथ खाई कि उनके हत्याकारी को पुलिस में दूँगी। तब से मैं उसकी खोज में थी। डिक लापता था।

यहाँ भी उसने कई डाके मारे, और खूब धन इकट्ठा किया। भाग्य-वश यहीं आकर उसने फ्रांसीसी धनी का वेष धारण कर रुपए की सद्गति शुरू की। यहाँ जीन तालमाँ हो गया। फ़ैशन-नरेश की उपाधि मिली। मैं भी एक दिन निमंत्रित होकर उसके यहाँ गई। देखते ही पहचान गई। पुलिस-कमिश्नर मिस्टर टैगार्ट भी मौजूद थे। वह भी उसे पहचान गए थे, लेकिन एकाएक गिरफ़्तार करने से डरते थे। मैंने सबके सामने जीन तालमाँ का भेद खोला। वह गिरफ़्तार हो गया। कल उसे फाँसी मिलनेवाली है। मिस माथुर, मेरा काम समाप्त हो गया। अब संसार में मेरा मन नहीं लगता। किसी एकांत स्थान में जीवन व्यतीत करने का इरादा है। यही मेरी कहानी है।"

चपला आश्चर्य से केट की ओर देख रही थी।

चपला ने एक निःश्वास लेकर कहा—"बहन, तुम्हारा जीवन बड़ा दुःखमय बीता।"

केट—"दुखों का यहीं अंत नहीं है। यह जीवन दुःख में ही बीतेगा।"

चपला—"विवाह न करोगी?"

केट हँस पड़ी। हँसी में दुःख था।

केट—"विवाह अब न करूँगी। देवदत्त को मैं प्राणों से भी अधिक प्यार करती हूँ। अभी तक उसे नहीं भूली। फिर भला अब कब भूलूँगी। मिस माथुर, मैं अब विवाह नहीं करूँगी।"

चपला—"बहन, तुममें अपूर्व आत्मत्याग की झलक है। जिसने तुम्हें मार डालने में कुछ उठा न रक्खा था, उसी की याद में जीवन-भर तड़पोगी?"

केट—"प्रेम में प्रतिशोध नहीं है, वह तो एक क्षणिक आवेश था। अगर उन्होंने मेरी जान लेने की कोशिश की थी, तो जीवन-

रक्षा भी तो की थी। जो बचाया, वही ले लिया, लेकिन मैं मरी तो नहीं। फिर उन्हें क्यों दोष दूँ। मैं उन्हें प्यार करती थी, और जीवन के अंत तक करती रहूँगी।"

चपला—"बहन, प्रेम का यह नमूना संसार में शायद ही मिले!"

केट—"यह तो साधारण बात है। मैं किसी इच्छा से प्रेम न करती थी। मेरा हृदय उनसे प्रेम करता था। हृदय का प्रेम अमिट है। अपनी कहानी तो कहो। याद है, हम लोगों का दुःख विनिमय है।"

चपला—"मेरी कहानी साधारण है। दो शब्दों में कही जा सकती है। मैं जिनसे प्रेम करती हूँ, उनका विवाह हो गया है। मैं विवाह नहीं कर सकती। वह करने के लिये तैयार हैं, लेकिन मैं उनको उच्च स्थान से गिराऊँगी नहीं। मैं अपना जीवन समाज-सेवा और देश में लगा देना चाहती हूँ। बस, यही कथा है।"

केट—"तुम मिस्टर सिनहा से प्रेम करती हो क्या?"

चपला—"हाँ, उन्होंने विवाह का प्रस्ताव किया था, लेकिन मैंने अस्वीकार कर दिया। वह मेरी एक सखी के स्वामी हैं। मैंने उनको बुलवाया था। वह आ गई हैं। मैं भी कुछ दिनों के लिये स्वदेश छोड़ना चाहती हूँ। मेरा प्रेम निस्स्वार्थ है। उसकी संपत्ति अपहरण करना नहीं चाहती।"

केट—"तब मेरे साथ चलो। दोनो संसार-भ्रमण करेंगी। ईश्वर की कृपा से मेरे पास इस समय बहुत रुपया है। सोचा था कि इससे देवदत्त की स्मृति चिरस्थायी कर जाऊँगी, लेकिन अब हम दोनो दुखिया इसका उससे अधिक सद्व्यय करेंगी।"

चपला—"नहीं बहन, क्षमा करो, तुम उस धन से मिस्टर वर्मा का स्मृति-मंदिर बनवाओ। ईश्वर की कृपा से मुझे धन की कमी

नहीं है। पिताजी मेरे मार्ग के कंटक नहीं होंगे। उनको उसी में सुख मिलेगा, जिससे मैं सुखी हो सकती हूँ।"

केट—"मिस्टर सिनहा कहाँ हैं?"

चपला—"इसी पहाड़ी से वह फिसल पड़े थे। सिर में बड़ी गहरी चोट लगी है, जीवन की आशा न थी। अब तो अच्छे हैं।"

केट—"तुमने मुझे ख़बर नहीं दी। आओ, चलो उन्हें देख आवें।"

चपला—"चलिए।"

दोनो अभागिनी रात्रि के कृष्ण अंधकार में छिप गईं।

(११)

कुमुदिनी के जाने से माधव बाबू के हृदय में एक बड़ा धक्का लगा। उन्हें नहीं, उनके आत्माभिमान को धक्का पहुँचा। वह क्रोध से अपने तक को भूल गए। कुमुदिनी के प्रति जो प्रेम था, वह एक ही क्षण में कपूर की भाँति उड़ गया। उनकी दशा उस सर्प की भाँति हो गई, जो आहत होने पर क्रोध से पागल हो जाता है, और आहतकारी को काटना चाहता है, लेकिन वह उसे मिलता नहीं। फुफकार से ही अपना क्रोध प्रकट करके रह जाता है।

मुरारी और कुमुदिनी को गए तीन दिन हो गए। अभी तक न मुरारी ही लौटे, और न कुमुदिनी। इन तीन दिनों में माधव बाबू की क्या दशा रही, यह वही जानें। भोजन, आहार-व्यवहार सबसे अरुचि हो गई थी। एकांत में पड़े सोचा करते थे।

अपराह्न-काल था। लू के झोंके समग्र संसार को जला रहे थे, लेकिन माधव बाबू के पास फटकने से डरते थे। जहाँ अग्नि की लपटें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ उसका धूम तो अवश्य पहुँचता है। यदि लू के थपेड़े उनके पास न पहुँच पाते थे, तो कम-से-कम उनकी गर्मी तो पहुँचती थी। उस दिन असह्य गर्मी थी। ख़स की टट्टियों

के भीतर बैठे हुए माधव बाबू पसीने से नहाए हुए थे। बाहर और भीतर की जलन मनुष्य को पागल कर देती है। माधव बाबू इस समय पागल-से थे। वह सोच रहे थे—"सर माधवचंद्र की कन्या बिना बुलाए उस गँवार के यहाँ चली गई। इसमें उसका अपमान नहीं हुआ, बल्कि मेरा अपमान हुआ। मेरी 'सर' की शान में बट्टा लग गया। मैं आजन्म उसे माफ़ नहीं करूँगा। जो मेरी इज़्ज़त में बट्टा लगा सकता है, वह मेरा पुत्र तथा पुत्री होने के कब योग्य है! मैं उसे अपना पुत्र स्वीकार नहीं कर सकता, पुत्री कहकर परिचय नहीं दे सकता। परिचय देते समय शर्म से गर्दन नीची हो जायगी। आत्मगौरव-हीन मनुष्य को मैं स्वीकार ही नहीं करता। मैं उसे पशु समझता हूँ, बल्कि उससे भी अधम!

"मुरारी ही का यह सब काम है। उसी का यह षड्यंत्र है। मैंने अपना विचार उससे प्रकट किया था। उसी का यह परिणाम है। मुरारी ने बाप की गर्दन पर छुरी चलाई है। मुरारी पितृहत्याकारी है, मैं उसका मुख नहीं देख सकता। इस घर में अब मुरारी के लिये जगह नहीं। मैं इसका प्रतिशोध लूँगा। प्रतिशोध घोर होगा। ऐसा घोर होगा कि संसार भय से मेरी ओर देखेगा, और सिहरकर पीछे हट जायगा। जो पिता अपनी पुत्री को उसके पति के रक्त में स्नान करावेगा, उसे अनंत वैधव्य के गहरे गड्ढे में डुबो देगा, उसके सामने उसके पति के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करेगा, और छोटी-छोटी बोटियाँ करके चील-कौओं को खिला देगा, क्या संसार उसको देखकर भय न खावेगा—क्या संसार में हलकंप न फैल जायगा? संसार थर्रा उठेगा। मेरी ओर देखने का साहस न होगा। आत्मगौरव के इतिहास में मेरा नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित रहेगा। जब लोग मेरा नाम लेंगे, तब भय से काँप उठेंगे।

"यदि कोई आज आकर कहता कि रानी मर गई, तो मैं उसका मुँह मोतियों से भर देता। इतना प्रसन्न होता कि संसार का साम्राज्य पाने से भी शायद इतना प्रसन्न न हुआ होता। जिसको पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, जिसके लिये मैंने अपना विवाह नहीं किया, वह मेरे साथ यह व्यवहार करे, मेरे उजले नाम में कालिमा लगावे! मैंने रात को रात नहीं समझा, दिन को दिन नहीं, मातृहारा बालिका को हृदय से, कलेजे से लगाकर इतना बड़ा किया, जिसकी कोई साध अपूर्ण नहीं रक्खी, अपने कलेजे की भाँति सुरक्षित रक्खा, उसी ने यह बदला दिया! जिसकी नसों में मेरा रक्त दौड़ रहा है, उसी ख़ून ने मुझे बेइज़्ज़त किया। मैं अपने हाथों से अपना हृत्पिंड निकाल डालूँगा। अपने हाथों से अपने कलेजे की बोटियाँ-बोटियाँ कर दूँगा, लेकिन सर माधवचंद्र अपमानित होकर चुप नहीं बैठ सकते!"

पसीने से माधव बाबू नहा उठे। वह उठकर टहलने लगे। टहलते-टहलते आकर अपनी स्त्री के चित्र के सामने खड़े हो गए। चित्र में उनकी स्त्री कुर्सी पर बैठी थीं। मुख पर बड़ा करुण भाव था। जिस फ़ोटो से यह चित्र बनाया गया था, वह उनकी रुग्णावस्था का था। वह उस समय सदैव चिंतित रहती थीं। ज्यों-ज्यों मृत्यु की घड़ी समीप आती थी, विषाद-कालिमा भी गाढ़ होती जाती थी। चित्र में कुर्सी के पास ही कुमुदिनी और मुरारी खड़े थे। दोनो मा की ओर देख रहे थे। उस समय माधव बाबू ने बहुत यत्न किया था कि दोनो का मुँह सामने हो। लेकिन वे दोनो अबोध बालक माने नहीं। उन्होंने अपनी मा की ओर अश्रु-पूर्ण नेत्रों से देखा, और मा के हृदय ने उन पर कोई जब्र न होने दिया। उस समय उनके मन में यह विचार आया था कि मेरे बाद कौन उनकी ज़िद रक्खेगा। शायद इसीलिये मुख का भाव और विषादमय हो गया था।

आज माधव बाबू उस चित्र की ओर देखने लगे। चित्र में एक विशेष आकर्षण था। चित्र देखते ही अतीत काल सामने आ गया। स्मृति जाग्रत् हो गई। जिस तरह जल के बाहर मछली तड़पती और फिर शांत हो जाती है, लेकिन जल के एक ही छींटे से फिर तड़पने लगती है, वैसे ही माधव बाबू स्मृति के इस ताज़े छींटे से तड़पने लगे। अपनी स्त्री का करुण-कातर मुख दिखाई देने लगा। उसके अंतिम शब्द कान में गूँजने लगे—"मैं अपनी इन दो आँखों को तुम्हें सौंपे जाती हूँ।" जो माधव बाबू ने उत्तर दिया था, वह भी याद आया—"आज से ये तुम्हारी आँखें नहीं, मेरी आँखें हैं।" वह उल्लास-हास्य भी, जो उनकी पत्नी के मुख पर दौड़ गया था, याद आ गया। माधव बाबू विह्वल हो गए, सब भूल गए। कुमुदिनी और मुरारी के प्रति जो कठिन प्रतिज्ञा अभी-अभी की थी, भूल गए। पुराने प्रेम ने जोश मारा। वात्सल्य ने अपना आधिपत्य जमाना आरंभ कर दिया। दूध उफन गया था। अग्नि शांत हो रही थी, दूध पर मलाई पड़ गई थी। क्रोध दूर हो गया था। वात्सल्य और क्रोध, ये दो विकट शत्रु हैं। जहाँ एक रहता है, वहाँ दूसरा नहीं रहता। लेकिन जीत अंत में होती है वात्सल्य की!

माधव बाबू अब की शांत स्वर से कहने लगे—"रानी ने अच्छा ही किया। उसका स्वामी के पास जाना ही ठीक था। उसकी मा भी कुछ कम अभिमानिनी न थी। लेकिन मेरे ऊपर उसका अभिमान बहुत दिनों तक न रहता था। एक दिन एक कड़ी बात कह दी थी, उसी दिन वह अपने मायके चली गई थी। छ महीने नहीं आई थी। मैं भी बुलाने नहीं गया था, वह आपसे आई थी। आते ही क्षमा माँगी थी। क्या मैंने उसे क्षमा करके अपने हृदय से नहीं लगाया था! प्रेम में विवाद तो होता ही रहता है। रानी अपने मन से आई थी, अपने मन से गई। लेकिन उसने मेरे विचारों पर पानी

फेर दिया। मैं संसार के सामने एक नई मिसाल रखना चाहता था, वह मैं न कर सका; बस इसी का अफ़सोस है। शायद अभी उसके लिये समय नहीं हुआ। जब समय आवेगा, तब तलाक़ की प्रथा आप-से-आप समाज में व्यवहृत होने लगेगी। मैं उस गौरव से वंचित रह गया।

"मुरारी का क्या अपराध था। रानी ने ज़िद की होगी। वह तो पहले से ही मुझ पर नाराज़ था, उसे यहाँ से टालना चाहता था। उसे ले गया। अपराध का दंड किसे दूँ। अपने कलेजे के टुकड़ों को। मनुष्य आत्महत्या करने से हिचकता है, क्या मैं आत्म हत्या करूँगा। पुत्र-हत्या आत्महत्या ही है। यदि रानी आकर कहती कि मैं जाऊँगी, तो क्या मैं रोकता। क्या मैं उसका सुहाग नष्ट कर सकता था। मैं उसे सहर्ष जाने की आज्ञा देता। लेकिन उसने आकर मुझसे पूछा क्यों नहीं। यही उसका अपराध है। कम-से-कम इसके लिये मैं उसे क्षमा नहीं कर सकता। संसार की नज़रों में शायद यह अपराध कम हो, लेकिन पिता की दृष्टि में नहीं। पिता का हृदय बड़ा स्वार्थी होता है। रानी का यह अपराध बड़ा भारी था। इसकी क्षमा नहीं। मुरारी का भी यही अपराध है। इसके लिये मैं मुरारी को भी क्षमा न करूँगा।"

इसी समय नौकर ने कुछ चिट्ठियाँ लाकर माधव बाबू के सामने रख दीं। माधव बाबू ने उनमें से एक पत्र पहचानकर पढ़ना शुरू किया। पत्र कुमुदिनी का था—

मंसूरी

श्रीपूज्य पिताजी के श्रीचरणों में

प्रणाम

पिताजी, मैं आपसे पहले ही क्षमा माँगती हूँ, मैं अपराधिनी हूँ। पिताजी, क्षमा कीजिए। अभागिनी को क्षमा कीजिए। मुझे

आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि आप क्षमा करेंगे। अभागिनी और अबोध कन्या को क्षमा करेंगे।

पिताजी, आप आश्चर्य करते होंगे कि मैं एकाएक कैसे चली गई। जाने का कारण भी कहती हूँ। मेरे पास मेरी सखी चपला के दो पत्र आए थे। उनमें मेरे आने के लिये बहुत अनुरोध किया था। लेकिन मैंने उन पर कर्ण-पात नहीं किया। एक पत्र में उसने लिखा था कि वह बहुत बीमार हैं, मरणासन्न हैं। अब भला आप ही बताइए कि कौन हिंदू स्त्री अपने स्वामी को इस दशा में देखना न चाहेगी। क्या राग और अभिमान इस समय के लिये होते हैं। पिताजी, क्षमा कीजिएगा। मैं यह पत्र पढ़कर अपने को न रोक सकी। माना, यह मेरी कमज़ोरी थी, लेकिन हिंदू रमणी का हृदय कमज़ोर ही होता है। ऐसे समय तो वह कच्चे धागे में बँध जाता है। पिताजी, मैं चलने की तैयारी करने लगी। इसी समय सासजी का भी एक पत्र आया। उससे मालूम हुआ कि अब वह अच्छे हैं, लेकिन उन्हें खो देने का भय है। कोई उन्हें चुरा लेने की घात में है, अगर मैं न पहुँचूँगी, तो वह हाथ से बेहाथ हो जायँगे। अब पिताजी, आप ही कहिए, क्या वह समय क्रोध और अभिमान करने का था। अभी तक मुझे विश्वास था कि मैं उन्हें खोऊँगी नहीं, इसीलिये अभिमान किए वहाँ बैठी रही। लेकिन जब चोरों का भय हुआ, तब मैं अपने धन की रक्षा करने के लिये चली गई। इसके अतिरिक्त उनका जीवन भी अभी ख़तरे में था, मैं अब न रुक सकी। चली आई, क्षमा कीजिए।

भैया का इसमें कोई दोष नहीं। वह मेरे साथ आने को राज़ी न होते थे। मैंने बड़ी कठिनता से उन्हें राज़ी किया था। अब भी वह डर रहे हैं। यदि पिताजी, दंड दीजिएगा, तो मुझे, भैया को नहीं। अपराधिनी मैं हूँ, भैया नहीं। आप मुझे पत्र लिखिएगा, मैं

हाज़िर होऊँगी, और उस समय मैं नत मस्तक से अपने पिता के समक्ष खड़ी होऊँगी, और मौन होकर आपके विचार की प्रतीक्षा करूँगी। मैं जानती हूँ, आपका विचार क्या होगा। यदि आप तलवार लेकर मेरा सिर काटने के लिये उद्यत होंगे, तो मैं प्रसन्नता से अपना मस्तक नत कर दूँगी। लेकिन आपकी तलवार उठेगी नहीं। आप तलवार फेंक देंगे, और आपकी आँखों में वात्सल्य के आँसू भर आएँगे। आपका गला भर जायगा, शरीर काँपने लगेगा। मुझे उठाकर अपने हृदय से लगा लेंगे, और अभागिनी बालिका का अपराध क्षमा करेंगे। पिताजी अपनी रानी के प्रति इतने कठोर कदापि नहीं हो सकते। कोई पिता अपनी संतान के प्रति क०। होता, आप कहाँ से हो सकते हैं। आप मेरे परोक्ष में क्रोध लेकिन मुझे देखते ही पानी-पानी हो जायँगे। पिताजी, पिता हृदय ही ऐसा होता है।

भैया कल चलेंगे और शायद परसों तक पहुँच जायँगे। उनके पहुँचने के पहले यह पत्र आपको मिल जायगा। पिताजी, आपसे फिर मेरी विनीत प्रार्थना है, हाथ जोड़कर विनती करती हूँ, भैया को कुछ दंड न दीजिएगा। मैं अपनी स्वर्ग-गता जननी की याद दिलाकर कहती हूँ कि उन्हें मेरे अपराध का दंड न दीजिएगा। भाभी को भी कुछ दंड न दीजिएगा, वह तो सर्वथा निर्दोष हैं। बाबूजी, क्या आप अपनी रानी की यह कातर प्रार्थना न सुनिएगा। आज तक तो आपने मेरी सब बातें मानीं, क्या इस थोड़ी-सी भीख को मेरे आँचल में न दीजिएगा।

पिताजी, संतान अपराध करती ही है, यदि पिता-माता उन्हें क्षमा न करें, तो वे अपने उच्च स्थान से गिर जायँगे। इसीलिये घोर-से-घोर अपराध भी पिता की नज़रों में अपराध नहीं होता। वह उसे साधारण अपराध करके जानता है। पिता क्या संतान के अपराध

...न में रखता है? ... बाबूजी, मुझे क्षमा कीजिए। उनकी तबियत बड़ी ख़राब थी, लेकिन अब अच्छी हैं। पहाड़ी से फिसल पड़े थे। सिर में घाव हो गया था। अभी तक भरा नहीं। आशा है, शीघ्र ही अच्छे हो जायँगे। उनके अच्छे हो जाने पर हम दोनों पिता के पवित्र चरणों की रज ग्रहण करने आवेंगे, और क्षमा की भीख माँगेंगे। क्या तब भी तुम ठुकरा दोगे? पिता, आशीर्वाद दो कि मेरा सुहाग अचल रहे। यही प्रार्थना है।

आपकी अभागिनी कन्या,

रानी

पत्र पढ़कर माधव बाबू ने एक ठंडी निःश्वास ली। उनकी आँखों में आँसू डबडबा आए। वह बोले—वास्तव में पिता का हृदय बड़ा कोमल होता है। ईश्वर ने जाने कहाँ का स्नेह और ममत्व भर दिया है। क्या यह पत्र पढ़कर भी मैं रानी को क्षमा न कर सकूँगा। मुरारी को दंड दूँगा! रानी मूर्ख है। पिता का हृदय अब भी नहीं जानती। अभी अधिक ज्ञान नहीं है, जब मा होगी, तब पता लगेगा। मुरारी की कितनी सिफ़ारिश की है। रानी मिस्टर सिनह के साथ क्षमा माँगने आवेगी। क्या मैं दंपति को क्षमा न कर सकूँगा? इस विचार से ही मेरा हृदय पानी-पानी हुआ जा रहा है, और जब उन्हें अपने सामने देखूँगा, तब क्या मैं क्रोध से मुँह फेर लूँगा? रानी अपने सुहाग की अचलता का आशीर्वाद चाहती है। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि रानी, तुम्हारा सुहाग तब तक अचल रहे, जब तक समुद्र में एक कण भी जल रहे। हाय, [illegible] भी हृदय बड़ा कमज़ोर होता है। मुझे विश्वास था कि यह उन्नत मस्तक किसी के सामने नत नहीं हो सकता, लेकिन वात्सल्य के आगे आप-से-आप झुक गया। बस, एक बात की मुझे [illegible] ख़ुशी है कि